प्रथमावृत्ति—१०००
(संवत्—२००६)
मूल्य ४॥)

दो शब्द

लखनऊ
२८-६-५३

जब मैं लखनऊ विश्वविद्यालय का वाइस-चाँसलर था तब एम० ए० क्लास के हिन्दी के विद्यार्थियों को प्राकृत भाषा पढ़ाया करता था। विषय के अध्ययन में विद्यार्थियों को बड़ी असुविधा होती थी क्योंकि कोई अच्छी पाठ्य-पुस्तक न थी। डाक्टर उलनर की अंग्रेजी पुस्तक An Introduction to Prakrit अप्राप्य हो चुकी थी। उसका भाषानुवाद भी नहीं मिलता था। अतः हिन्दी विभाग के प्राध्यापक डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल के सन्मुख मैंने यह सुझाव रखा कि वह इस विषय पर एक पुस्तक लिखें। उन्होंने मेरे प्रस्ताव को बहुत पसन्द किया और यह आशा दिलाई कि वह इस काम को हाथ में लेंगे। मुझे यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि उन्होंने इस कमी को पूरा कर दिया है और उनकी पुस्तक विश्वविद्यालय की ओर से प्रकाशित हो गई है।

डॉ० अग्रवाल ने बड़े परिश्रम से इस ग्रन्थ की रचना की है। वह बधाई के पात्र हैं क्योंकि उन्होंने एक बड़ी कमी को पूरा किया है। यत्र-तत्र अशुद्धियां रह गई हैं। आशा है कि दूसरे संस्करण में यह ठीक कर ली जायेंगी।

श्री आचार्य नरेन्द्र देव,
एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, डी० लिट्०
उपकुलपति, काशी विश्वविद्यालय



नरेन्द्र देव

वक्तव्य

लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग द्वारा किये जाने वाले साहित्यिक और सांस्कृतिक अनुसंधान-कार्य को 'लखनऊ विश्वविद्यालय-प्रकाशन' के रूप में हम "सेठ भोलाराम सेक्सरिया स्मारक ग्रंथमाला" के अन्तर्गत प्रस्तुत कर रहे हैं। इसमें कई उच्चकोटि के गवेषणापूर्ण बृहदाकार ग्रंथों का प्रकाशन हो चुका है, जो कि पी-एच्० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हैं। इन खोज ग्रंथों के अतिरिक्त महत्वपूर्ण एवं विद्यार्थियों के लिए आवश्यक ग्रंथों का प्रकाशन हमारे विभाग के अध्यापक समय-समय पर करते रहते हैं जिन्हें हम 'सेठ केशवदेव सेक्सरिया-स्मारक ग्रंथमाला' के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं।

इन समस्त ग्रंथों को प्रकाशित करने के लिए हम श्री शुभकरण जी सेक्सरिया के परम आभारी हैं जिन्होंने अपने स्वर्गीय पिता और लघुभ्राता का चिरस्थायी स्मारक बनाने के हेतु ग्रंथमालाओं के लिए आवश्यक निधि प्रदान की है। उनका यह कार्य अनुकरणीय है। प्रस्तुत पुस्तक 'सेठ केशवदेव सेक्सरिया-स्मारक-ग्रंथमाला' का प्रथम पुष्प है।

भाषा-विकास की शृंखला में उत्तर भारतवर्ष की प्राकृत भाषाएं संस्कृत और आधुनिक आर्य भाषाओं के बीच की कड़ी हैं। हिन्दी तथा अन्य आधुनिक भाषाओं के पारस्परिक सम्बन्ध और भाषा-विज्ञान की दृष्टि से उनकी जानकारी के लिये विविध प्राकृतों का अध्ययन अत्यावश्यक है।

विश्वविद्यालयों में हिन्दी के साथ पालि, प्राकृत, तथा अपभ्रंश का भी अध्ययन आरम्भ हो गया है। परन्तु हिन्दी में अभी प्राकृत-भाषा के व्याकरण और उसके इतिहास सम्बन्धी ग्रंथों की बहुत कमी है। पालि और अपभ्रंश पर तो कुछ पुस्तकें प्रकाशित भी हुई हैं परन्तु प्रधान प्राकृतों—शौरसेनी, महाराष्ट्री, अर्ध-मागधी, पैशाची आदि, और उनके साथ पालि, शिलालेखी-प्राकृत आदि के तुलनात्मक अध्ययन के रूप में कोई गम्भीर हिन्दी-ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध नहीं है।

हर्ष का विषय है कि हमारे विभाग के प्राध्यापक डॉ० सरयू प्रसाद अग्रवाल ने इस अभाव का अनुभव कर उसकी पूर्ति का प्रयास किया है। प्रस्तुत ग्रंथ, 'प्राकृत-विमर्श,' डॉ० अग्रवाल के विस्तृत अध्ययन का परिणाम है। बी० ए० और एम० ए० के विद्यार्थियों को भाषा-विज्ञान, पालि तथा प्राकृत के अध्यापन से उन्हें इस विषय में जो अनुभव प्राप्त हुए हैं उनका इसमें पूरा पूरा उपयोग हुआ है, यह मेरा विश्वास है।

आशा है कि यह पुस्तक विद्यार्थियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करेगी और उनमें प्राकृत भाषाओं के अध्ययन की रुचि उत्पन्न करेगी।

डॉ० दीनदयालु गुप्त,
एम० ए०, डी० लिट्०
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय

दीनदयालु गुप्त

प्राक्कथन

आधुनिक आर्यभाषाओं के महत्व के बढ़ने के साथ विविध प्राकृत भाषाओं का मूल्यांकन स्वाभाविक ही है क्योंकि अनेक उत्तरकालीन प्राकृतों का आधार लेकर ही आधुनिक आर्य भाषाओं-हिन्दी, बँगला, राजस्थानी, मराठी, गुजराती, पंजाबी आदि का विकास हुआ है। आधुनिक पद्धति पर प्राकृत भाषाओं का विवेचन और उनके अनेक ग्रंथों का संपादन सर्वप्रथम पाश्चात्य विद्वानों द्वारा जर्मन, फ्रेंच, अंग्रेजी आदि भाषाओं में मिलता है। परन्तु भारतीय प्राचीन वय्याकरणों ने भी संस्कृत भाषा में विविध प्राकृतों का विवेचन व्याकरण-ग्रंथों के रूप में प्रस्तुत किया है।

राष्ट्र-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित होने पर हिन्दी का काफी महत्व बढ़ गया है और साथ-साथ उसका उत्तरदायित्व भी। इसके अतिरिक्त प्राकृत भाषाओं के अध्ययन की ओर विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों एवं सामान्य लोगों की रुचि बढ़ रही है परन्तु प्राकृत भाषाओं का हिन्दी में परिचय केवल डॉ० ए० सी० वूल्नर की अँग्रेजी पुस्तक 'इन्ट्रोडक्शन टु प्राकृत' के रूपान्तर 'प्राकृत-प्रवेशिका' के द्वारा मिलता है किन्तु कई वर्षों से वह ग्रन्थ भी अनुपलब्ध है। इस अभाव का अनुभव कर विद्वद्वर आचार्य नरेन्द्रदेव जी ने उक्त विषय पर लेखक को एक ग्रन्थ लिखने का आदेश दिया। अपने विभाग के सहयोगी-मित्रों के प्रोत्साहन और आचार्यवर की प्रेरणा से पुस्तक तो समाप्त हो गई है परन्तु लेखक कार्य की गुरुता और अपनी सीमाओं से अच्छी तरह परिचित है। इसलिये पुस्तक में जो अभाव एवं त्रुटियाँ

रह गई हों उनके निदर्शन और सत्परामर्श की लेखक विद्वत्समाज से प्रार्थना करता है।

पिशेल की प्राकृत-व्याकरण, तथा अन्य पाश्चात्य एवं भारतीय आधुनिक विद्वानों की रचनाओं से प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रणयन में बड़ी सहायता मिली है। भारतीय प्राचीन वय्याकरणों की कृतियों का भी यथास्थान उपयोग किया गया है। प्राकृत-व्याकरण के विविध रूप प्राकृत-प्रकाश और हेमचन्द्र रचित शब्दानुशासन (प्राकृत-अंश) के आधार पर दिये गये हैं। लेखक उक्त सभी रचयिताओं का आभारी है।

प्राकृत भाषाओं का संक्षिप्त परिचय देना ही अभीष्ट था इसीलिये अनेक स्थलों पर विवादग्रस्त प्रश्नों का प्राय: निराकरण किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक में मुख्य प्राकृतों के अतिरिक्त प्रारम्भिक प्राकृत—पालि, शिलालेखी प्राकृत और उत्तरकालीन प्राकृत-अपभ्रंश का भी संक्षिप्त परिचय दे दिया गया है, क्योंकि उनसे मुख्य प्राकृतों के पूर्व और बाद की अवस्थाओं का थोड़ा ज्ञान हो जाता है। इस ग्रन्थ के लिखने में लेखक को अपने सहयोगी मित्र डॉ० केसरीनारायण शुक्ल, एम्० ए०, डी० लिट०, से समय-समय पर बहुमूल्य सुझाव और प्रोत्साहन मिलता रहा है। लेखक इसके लिये उनका कृतज्ञ है। यहाँ पर यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि आचार्य नरेन्द्र देव जी का विचार था कि जर्मन विद्वान पिशेल की प्राकृत व्याकरण की भूमिका का पूरा-पूरा उपयोग नवप्रणीत ग्रन्थ में किया जाय। डॉ० एच० वी० गुएन्थर ने पिशेल के जर्मन ग्रंथ (भूमिका-अंश) का अंग्रेजी रूपान्तर प्रस्तुत कर लेखक पर बड़ी कृपा की। संस्कृत विभाग के प्राध्यापक पं० गयाप्रसाद दीक्षित जी ने प्राकृत-उद्धरणों की संस्कृत-छाया प्रस्तुत करने में अनेक कठिनाइयों का समाधान किया। इसके लिये लेखक इन सज्जनों का अत्यधिक आभारी है। संस्कृत विभाग के अध्यक्ष प्रो० के० ए० सुब्रह्मण्य अय्यर का भी अत्यंत कृतज्ञ है जिनके द्वारा भाषा संबंधी अध्ययन की प्रेरणा

बराबर मिलती रहती है। पूज्य गुरुवर डॉ० दीनदयालु गुप्त ने अत्यंत व्यस्त होने पर भी पुस्तक के लिये वक्तव्य और काशी विश्वविद्यालय के उपकुलपति आचार्य नरेन्द्रदेव जी ने अस्वस्थ रहते हुए भी दो शब्द लिखने का अनुग्रह किया। लेखक इसके लिये इन विद्वानों का अत्यन्त कृतज्ञ है।

पुस्तक में मुद्रण की अशुद्धियाँ रह गई हैं। पाठक कृपया शुद्धिपत्र के अनुसार उन्हें पढ़ने का कष्ट करें।

लेखक

विषय-सूची

संकेत-चिह्न

अका०—	अकारान्त	प्रा० प्र०—	प्राकृत प्रकाश
अमा०—	अर्धमागधी	प्रेरणा०—	प्रेरणार्थक
अ० प्रा०—	अशोकी प्राकृत	फुट०—	फुटनोट
आल०—	आलपन (संबोधन)	बहु०—	बहुवचन
इका०—	इकारान्त	म० पु०	मध्यम पुरुष
उका०—	उकारान्त	भविष्य०—	भविष्यकाल
उ० पु०—	उत्तम पुरुष	भूत०—	भूतकाल
उदा०—	उदाहरण	मा०—	मागधी
एक०—	एकवचन	माहा०—	माहाराष्ट्री
का०—	काण्ड	मोगल्ल०—	मोग्गल्लान
च०—	चतुर्थी	ला०—	लाटी
जै०—	जैन	वर्तमान०—	वर्तमान काल
तृ०—	तृतीया	विधि०—	विधिलिङ्ग
द्वि०—	द्वितीया	व्या०—	व्याकरण
नपुं०—	नपुंसकलिंग	शौ०—	शौरसेनी
परि०—	परिच्छेद	ष०—	षष्ठी
पा०—	पाद	स०—	सप्तमी
पं०—	पञ्चमी	सं०—	संबोधन
प्र०—	प्रथमा	स्त्री०—	स्त्रीलिंग
प्र० पु०—	प्रथम पुरुष	पु०—	पुलिंग
प्रा०—	प्राकृत		

पहला अध्याय

'प्राकृत'—व्युत्पत्ति और विवेचन

भारतीय आर्य भाषाओं का प्राचीन रूप संस्कृत, मध्यकालीन रूप प्राकृत और आधुनिक रूप भाषा के नाम से कहा गया है। प्राचीन आर्य भाषा का समय लगभग १६०० ई० पू० से ६०० ई० पू०, मध्यकालीन का लगभग ६०० ई०पू० से १००० ई० और आधुनिक का लगभग १००० ई० के अनंतर से माना जाता है। प्राचीन आर्य भाषा के अंतर्गत संस्कृत व्यापक भाषा रही परन्तु भाषा की दृष्टि से संस्कृत से भी प्राचीनतर रूप वैदिक अथवा छान्दस् का है, जिसमें चारों वेद—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, वैदिक संहिताएँ, उपनिषद, ब्राह्मणग्रंथ आदि रचनाएँ संग्रहीत हैं। वैदिक रचनाओं में भाषासंबंधी पार्थक्य का कुछ आभास मिलता है, जिस आधार पर यह निश्चित होता है कि उस काल में प्रचलित प्राचीन आर्य भाषा की अनेक बोलियाँ—उदीच्य, मध्यदेशीय, प्राच्य आदि थीं और उन्हीं का साहित्यिक रूप वेद-ग्रंथों में प्रयुक्त होने के कारण वैदिक नाम से प्रचलित हुआ। मध्यकालीन आर्य भाषाओं अथवा प्राकृतों का आधार यही विभिन्न बोलियाँ कही जा सकती हैं। छन्दस्-भाषा और कुछ काल बाद विकसित लौकिक भाषा—संस्कृत में बहुत अन्तर नहीं मिलता। छान्दस् के कुछ स्वच्छंद प्रयोगों को 'संस्कृत' के रूप में वय्याकरणों ने निश्चित कर दिया। इसमें पाणिनि का प्रमुख योग माना जाता है और संस्कृत-व्याकरण की सर्वश्रेष्ठ रचना अष्टाध्यायी उसी की कृति है।

इस प्रकार स्वच्छंद प्रयोगों के लोप होने पर आर्य भाषा के लौकिक-मध्यकालीन रूप प्राकृत का विकास होना आरंभ हुआ। परन्तु इन प्राकृतों ने प्राचीन और प्राचीनतर आर्य भाषा की विशेषताओं को ही अपने विकास का मुख्य आधार बनाया। इसीलिये संस्कृत तथा प्राकृत के वय्याकरणों ने 'प्राकृत' के विकास और विश्लेषण में संस्कृत भाषा को ही उसका आधार माना है। पिशेल ने यह स्पष्ट किया है कि कुछ वय्याकरण 'प्राकृत' शब्द के विश्लेषण–प्राक्+कृत–पहले बनी भाषा के आधार पर इसे संस्कृत से भी प्राचीनतर मानते है। रुद्रट कृत काव्यालंकार के आलोचक नमिसाधु ने शिक्षितों की परिमार्जित भाषा संस्कृत को छोड़कर सर्वसाधारण लोगों मे प्रचलित और व्याकरण आदि नियमों से रहित स्वाभाविक वचन-व्यापार को प्राकृत भाषाओं का मूल आधार माना है—"**प्राकृतेति। सकलजगज्जन्तूनां व्याकरणादिभिरनाहितसंस्कारः सहजो वचन-व्यापारः प्रकृतिः तत्र भवः सैव वा प्राकृतम्।**" इस प्रकार 'प्राकृत' स्वाभाविक रूप मे विकसित अपरिमार्जित भाषाओं का एक अलग समूह माना जा सकता है। 'प्रकृति' का आशय यदि स्वाभाविक अथवा नैसर्गिक विकास से लिया जाय तो भी प्राकृत भाषाओं की प्रकृति के मूल मे कोई न कोई भाषा अवश्य होगी जिसका आधार लेकर प्राकृतों का विकास हुआ, वह भाषा संस्कृत मानी गई है। परन्तु अनेक वय्याकरणों का उक्त अर्थ मे संस्कृत से आशय भारतीय प्राचीन आर्य भाषा से ही हो सकता है जिसमे उसका प्राचीनतर साहित्यिक रूप-वैदिक और उसके अनंतर प्रचलित लोक-भाषा रूप भी सम्मिलित है। इस प्रकार संस्कृत भाषा का आधार लेकर विभिन्न कालों और विविध स्थानों की भाषाएँ अनेक प्राकृत-रूपों मे व्यक्त हुई।

प्राकृत का संस्कृत से संबंध-द्योतन कराने के लिये वय्याकरणों ने कई उल्लेख दिये है। 'सिंहदेवगणि' ने 'वाग्भट्टालंकार टीका' मे संस्कृत के स्वाभाविक रूप से प्राकृत का विकास दिया है—

"प्रकृतेः संस्कृतात् आगतम् प्राकृतम् ।" 'प्राकृत—संजीवनी' में संस्कृत को प्राकृत की योनि माना गया है—"प्राकृतस्य तु सर्वमेव संस्कृतं योनिः ।" काव्यादर्श की 'प्रेमचन्द्रतर्कवागीश' कृत टीका में संस्कृत के प्रकृत रूप से प्राकृत को उत्पन्न दिया गया है—"संस्कृत-रूपायाः प्रकृतेः उत्पन्नत्वात् प्राकृतम् ।" 'प्राकृत-चन्द्रिका' के आधार पर पेटर्सन ने संस्कृत को ही प्राकृत का प्रकृत रूप माना है—'प्रकृतिः संस्कृतम्' (तत्र भवत्वात् प्राकृतं स्मृतम्) । 'षड्भाषा-चन्द्रिका' में 'नरसिंह' ने संस्कृत के प्रकृत रूप के विकार से प्राकृत की उत्पत्ति सिद्ध की है—'प्रकृतेः संस्कृतायाः तु विकृतिः 'प्राकृती, मता ।' 'वासुदेव' ने 'प्राकृतसर्वम्' में इसी मत को स्वीकार किया है। प्रसिद्ध वय्याकरण हेमचन्द्र ने भी इसकी पुष्टि—'प्रकृतिः संस्कृतम् तत्रभवम् तत् आगतम् वा प्राकृतम्' कहकर की है। 'मार्कण्डेय' ने 'प्राकृत-सर्वस्व' में संस्कृत को प्रकृति मानकर उसी से प्राकृत का विकास दिया है—'प्रकृतिः संस्कृतम् तत्रभवम् प्राकृतम् उच्यते ।" 'नारायण' ने 'रसिकसर्वस्व' में प्राकृत और अपभ्रंश दोनों को ही संस्कृत के आधार पर विकसित माना है—'संस्कृतात् प्राकृतम् इष्टम् ततोऽपभ्रंशभाषाणम् ।' 'धनिक' ने 'दशरूप' में प्रकृत रूप से प्राकृत का विकास और संस्कृत को उसकी प्रकृति माना है—'प्रकृतेः आगतम् प्राकृतम् प्रकृतिः संस्कृतम् ।" 'शंकर' ने 'शाकुंतलम्' में संस्कृत से विकसित प्राकृत को श्रेष्ठ और फिर उससे, अपभ्रंश का विकास दिया है—'संस्कृतात् प्राकृतम् श्रेष्ठम् ततोऽपभ्रंशभाषणम् ।'

इस प्रकार उक्त मतों से स्पष्ट होता है। कि संस्कृत का ही आधार लेकर प्राकृत भाषाओं का विकास हुआ। पहले कहा ही जा चुका है कि संस्कृत को रूढ़ अर्थ में लेने से प्राकृत की उक्त व्याख्याएँ अप्रामाणिक और असंगत ही होंगी क्योंकि प्राकृत भाषाओं के स्वरूप—गठन को देखने से यह सिद्ध नहीं होता। 'प्रकृति' का आशय स्वभाव अथवा जनसाधारण से भी लिया जाता है। इसीलिये हरिगोविंददास

विक्रमचन्द शेठ ने **'प्राकृत्या स्वभावेन सिद्धं प्राकृतम्'** अथवा **'प्रकृतीनां, साधारणजनानाम् इदं प्राकृतम्'** के द्वारा प्राकृत की व्याख्या की है। महाकवि वाक्पत्तिराज ने अपने 'गउडवहो' नामक महाकाव्य में प्राकृत के विकास के संबंध में व्यक्त किया है कि प्राकृत में ही सब भाषाएँ प्रवेश करती हैं और इसी प्राकृत से ही सब भाषाएँ निकली हैं। जैसे जल समुद्र में प्रवेश करता है और समुद्र से ही (भाप के रूप में) फिर बाहर जाता है।[1] अर्थात् संस्कृत आदि भाषाएँ प्राकृत रूप के आधार पर ही विकसित हुई हैं और मूल भाषा प्राकृत है। संकुचित रूप में प्राकृत शब्द भाषा के अर्थ में और व्यापक अर्थ में रूप की स्वाभाविकता के लिये ग्रहण किया जा सकता है। भाषा के विकास की दृष्टि से भी 'प्राकृत' का संकुचित अर्थ ही लिया जाता है क्योंकि ६०० ई० पू० से लेकर १००० ई० तक की सभी भाषाएं प्राकृत के नाम से कही गई हैं जिन्हें 'आरंभिक प्राकृत', 'मध्यकालीन प्राकृत' और 'उत्तरकालीन प्राकृत' के नाम से विभाजित किया गया है। आरंभिक प्राकृत के अंतर्गत पालि और शिलालेखी प्राकृत अथवा लेण प्राकृत, मध्यकालीन प्राकृत के अंतर्गत 'माहाराष्ट्री', 'शौरसेनी', 'मागधी', 'अर्ध-मागधी', 'पैशाची' आदि और उत्तरकालीन के अन्तर्गत 'नागर', 'उप-नागर', 'व्राचड़' आदि अपभ्रंश भाषाओं की गणना की जाती है। परन्तु और भी अधिक संकुचित रूप में कुछ लोगों ने मध्यकालीन प्राकृतों की ही गणना साहित्यिक प्राकृत भाषाओं के रूप में की है।

संस्कृत भाषा की सर्वव्यापकता प्राचीन काल में तो रही ही परन्तु बाद में भी उसका यथेष्ट प्रभाव बना रहा। परन्तु एक काल ऐसा आया जब कि संस्कृत का व्यवहार सामान्य जनता में नहीं रह गया। सर्व-प्रथम अशोक के शिलालेखों तथा सिक्कों पर संस्कृत से भिन्न प्राकृत-भाषा के कुछ उदाहरण मिलते हैं और साथ ही धार्मिक ग्रंथों की

---

१ सयलाओ इमं वाया विसंति एत्तो य णेंति वायाओ।
एंति समुद्दं चिय णेंति सायराओ च्चिय जलाइं॥

प्राकृतों-(पालि और अर्धमागधी) में भी उस काल का संपन्न साहित्य उपलब्ध होता है। सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथ्यों का जितना परिचय उक्त प्राकृतों से मिल सकता है उतना उस काल में प्रचलित संस्कृत भाषा से नहीं मिलता। उस काल में उक्त प्राकृतें जन-सामान्य की भाषाएँ थीं, संस्कृत जनता की भाषा नहीं रह गई थी। संस्कृत भाषा का परिष्कार प्रातिशाख्यों के समय से लेकर 'अष्टाध्यायी' और 'महाभाष्य' के समय तक बराबर होता रहा और वह जनसाधारण की भाषा न रह कर सीमित समुदाय की भाषा हो गई थी। प्राचीन आर्य भाषा की विविध बोलियाँ—'उदीच्य', 'प्राच्य', 'मध्यदेशी' आदि जो ऋग्वेद-काल से ही प्रचलित थीं वे संस्कृत के विकास के समय में भी विविध क्षेत्रों में प्रचलित थीं और फिर उन्हीं क्षेत्रों में विभिन्न प्राकृत रूपों का विकास हुआ तथा इनका प्रचार तब तक बना रहा जब तक कि आधुनिक आर्य भाषाओं का विकास उनके आधार पर नहीं हो गया।

प्राकृत भाषाओं का वर्गीकरण

प्राकृत भाषाओं का वर्गीकरण अनेक रूपों में किया गया है। धार्मिक प्राकृतों के अंतर्गत बौद्ध ग्रंथों की भाषा 'पालि', प्राचीन जैन-सूत्रों की भाषा 'अर्धमागधी' जिसे 'आर्ष' भी कहते हैं, 'जैन माहाराष्ट्री,' जैन शौरसेनी और 'अपभ्रंश' भाषाओं की गणना की गई है। साहित्यिक प्राकृतों के अन्तर्गत 'माहाराष्ट्री', 'शौरसेनी', मागधी, 'पैशाची' और 'अपभ्रंश' तथा उसके अनेक भेद रखे गये हैं। नाटकीय प्राकृतों के अंतर्गत संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त 'माहाराष्ट्री', शौरसेनी, मागधी तथा उसके अनेक भेद, अश्वघोष के नाटकों में प्रयुक्त 'प्राचीन अर्धमागधी' भाषाएँ रखी गई हैं। वय्याकरणों के द्वारा वर्णित प्राकृतों में माहाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिका-पैशाची, अपभ्रंश और प्राकृत की अनेक विभाषाओं की गणना की गई है। इनमें काव्यशास्त्र तथा संगीत संबंधी रचनाएँ भी सम्मिलित हैं। उदाहरण के लिये 'रुद्रट' के 'काव्या-

लंकार' पर 'नमिसाधु' की टीका, भरत कृत नाट्यशास्त्र अथवा गीतालंकार आदि। भारतेतर प्राकृत के अंतर्गत 'प्राकृत-धम्मपद' की भाषा जिनके कुछ लेख खोतान प्रदेश में खरोष्ठी लिपि में उपलब्ध हुए, मध्यएशिया में उपलब्ध लेखों की 'निया' और 'खोतानी' प्राकृतें रखी गई हैं। शिलालेखी प्राकृत के अंतर्गत ब्राह्मी और खरोष्ठी लिपियों में भारत और सिंहल में उपलब्ध अशोक के समय और उसके बाद की स्तंभों, शिलालेखों आदि की भाषा रखी गई है। इनके अंतर्गत सिक्कों तथा ताँबे की प्लेटों पर उपलब्ध भाषा की गणना भी की जाती है। 'विकृत संस्कृत' (Popular Sanskrit)—हिन्दू, बौद्ध और जैन ग्रंथों में उपलब्ध प्राचीन आर्य भाषा का वह प्राकृत-रूप है जो उस काल में प्रचलित हुआ जब संस्कृत व्याकरणिक नियमों में बिल्कुल जकड़ दी गई थी।

प्राकृत के उपर्युक्त सभी विभाजनों का संक्षिप्त विवरण यहाँ पर अपेक्षित है। परन्तु साहित्यिक प्राकृतों के अतिरिक्त धार्मिक प्राकृतों में पालि, अर्धमागधी, जैन माहाराष्ट्री, जैन शौरसेनी, नाटकीय प्राकृतें, वय्याकरणों के द्वारा वर्णित प्राकृतों आदि की विशेषताओं का ही केवल संक्षिप्त विवरण यहाँ पर दिया जायेगा।

प्राकृत-वय्याकरण

प्राचीनतम प्राकृत-व्याकरण प्राकृत-प्रकाश के रचयिता 'वररुचि' ने माहाराष्ट्री, पैशाची, मागधी और शौरसेनी का उल्लेख किया है। 'हेमचन्द्र' ने इन चारों के अतिरिक्त 'चूलिका पैशाचिक','आर्ष' (अर्ध-मागधी) और अपभ्रंश का भी उल्लेख किया है। 'त्रिविक्रम','लक्ष्मीधर', 'सिंहराज','नरसिंह' आदि ने हेमचन्द्र के विभाजन का अनुसरण किया है। इनमें केवल त्रिविक्रम के अतिरिक्त शेष ने 'आर्ष' को छोड़ दिया है। इन छः भाषाओं—'माहाराष्ट्री', 'शौरसेनी', 'मागधी', 'पैशाची', 'चूलिका पैशाची' और 'अपभ्रंश' को 'षड्भाषा' के नाम से भी कहा

गया है। मार्कण्डेय ने इन छः के स्थान पर सोलह भाषाओं का उल्लेख किया है। उनके अनुसार प्राकृतों को भाषा, विभाषा, अपभ्रंश और पैशाच चार वर्गों में बाँटा गया है। भाषा के अंतर्गत माहाराष्ट्री, शौरसेनी, प्राच्या, आवन्ती, मागधी, दाक्षिणात्य एवं बाह्लीकी विभाषा के अंतर्गत शाकारी, चाण्डाली, शाबरी, आभीरिकी, ढक्की, मुख्य रूप हैं, ओड्री और द्राविड़ी विभाषाएँ नहीं मानी गई हैं, अपभ्रंश के २७ रूपों को नागर, उपनागर और ब्राचड़ में और ११ पैशाची विभाषाओं को 'कैकय', 'शौरसेन' और 'पाञ्चाल' तीन रूपों में गणना की गई है। 'रामतर्कवागीश' और 'पुरुषोत्तम' ने भी मार्कण्डेय के उक्त विभाजन का समर्थन किया है।

समस्त प्राकृत भाषाओं में 'माहाराष्ट्री' प्राकृत को ही सर्वोच्च माना जाता है। आचार्य दण्डी ने 'काव्यादर्श' में इसकी उत्कृष्टता का उल्लेख इस प्रकार किया है—**माहाराष्ट्राश्रयां भाषाम् प्रकृष्टम् प्राकृतम् विदुः** अर्थात् विद्वानों के द्वारा प्राकृतों में माहाराष्ट्री भाषा उच्च मानी गई है। संस्कृत के सन्निकट होने के कारण माहाराष्ट्री को ही सब प्राकृतों का आधार माना जाता रहा है। इसीलिये भारतीय वय्याकरणों ने माहाराष्ट्री प्राकृत को ही सर्वप्रथम स्थान दिया है। 'वररुचि' ने 'प्राकृत-प्रकाश' में माहाराष्ट्री को ही प्रमुख स्थान दिया है। अन्य प्राकृतों की कुछ विशेषताएँ देकर शेष को माहाराष्ट्री के सदृश लिख दिया है—**शेषं माहाराष्ट्रीवत्।**

'वररुचि' ने अपभ्रंश भाषा का उल्लेख प्राकृत-प्रकाश में नहीं किया है। 'लेसेन' (Lassen) के मतानुसार अपभ्रंश वररुचि से पूर्व प्रचलित भाषा थी परन्तु 'पिशेल', 'ब्लाक' आदि विद्वान उक्त मत से सहमत नहीं है। 'नमिसाधु' ने काव्यालंकार में संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश तीनों को भिन्न रूप में दिया है—**"यद् उक्तम् कैचित् यथा प्राकृतम् संस्कृतम् चैतद् अपभ्रंश इति त्रिधा।"** प्रायः लोगों ने तीनों को अलग-अलग ही स्वीकार किया है। 'दण्डी' ने काव्यादर्श में

साहित्यिक और जन-भाषा के अलग-अलग रूप दिये हैं। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश में लिखे हुए अलग-अलग काव्य और इनमें से किसी दो में लिखा काव्य 'मिश्र' रूप के नाम से दिया गया है। दण्डी ने काव्य में व्यवहृत आभीर और धर्म-सूत्रों की भाषा को अपभ्रंश माना है। शास्त्रीय दृष्टि से अपभ्रंश को संस्कृत से भिन्न माना गया है। 'मार्कण्डेय' ने 'आभीरों' की भाषा आभीरिकी की गणना विभाषा और अपभ्रंश के अन्तर्गत की है जिसके २६ प्रकार दिये गये हैं—पांचाल, मालव, गौड़, ओड्र, कलिंग, कर्नाटक; द्राविड़, गुर्जर आदि। अपभ्रंश इस प्रकार आर्य और आर्येतर की जन-भाषा के रूप में भी मानी गई है।

'रामतर्कवागीश' के मतानुसार नाटक में व्यवहृत विभाषा को अपभ्रंश कहना ठीक नहीं है। अपभ्रंश उन्हीं भाषाओं को कहना चाहिये जिनको जनता बोलने में प्रयुक्त करे। मागधी का साहित्यिक रूप भाषा है और मौखिक रूप अपभ्रंश। 'रविकर' ने अपभ्रंश के दो रूप दिये हैं—एक का विकास साहित्यिक प्राकृत के आधार पर हुआ परन्तु विभक्ति, समास, शब्द-विन्यास आदि की दृष्टि से वह भिन्न है और दूसरी देशी भाषा का रूप है। वाग्भट्ट ने 'वाग्भट्टालंकार' में चार भाषाओं का उल्लेख किया है—संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और भूतभाषित (पैशाची) और इनमें अपभ्रंश शुद्ध भाषा मानी गई है—"अपभ्रंशाः तुयच् शुद्धम् तत्तद्धेशेषुभाषितम् ।" अलंकार-तिलक में 'गुर्वतर वाग्भट्ट' (Younger Vagbhatta) ने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और ग्राम्यभाषा की भिन्नता स्पष्ट की है। इस प्रकार संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भिन्न प्रकार की भाषाएँ कही जा सकती हैं। संस्कृत को प्राचीन आर्य भाषा का प्रतिनिधि रूप में मान कर ही प्राकृतों का संबंध उससे जोड़ा गया है अन्यथा लौकिक संस्कृत जिसमें काव्य, नाटक आदि सभी रचनाएँ लिखी गईं और साहित्यिक प्राकृतें दोनों ही वैदिक संस्कृत की उपज हैं। अन्तर केवल

इतना ही है कि लौकिक संस्कृत अकेली भाषा थी जो वैदिक से प्रभावित हुई और प्राकृत के विविध रूप थे जो वैदिक की विशेषताओं को लेकर विकसित हुए परन्तु उनका संबंध वैदिक से उतना ही है जितना संस्कृत का। अतएव लौकिक संस्कृत और प्राकृतों में भाषा-विकास की दृष्टि से बहनवत् संबंध स्थिर किया जा सकता है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि 'प्राकृत-प्रकाश' प्राकृत भाषाओं की प्राचीनतम रचना है। उक्त ग्रंथ पर 'मनोरमा' नाम से 'भामह' की प्राचीनतम टीका है। इसके अतिरिक्त वसन्तराज की टीका 'प्राकृत-संजीविनी', सदानंद की टीका 'प्राकृत-सुबोधिनी' भी प्रसिद्ध हैं। 'प्राकृत-मञ्जरी' नाम की एक पद्यात्मक टीका भी है। नारायण-विद्याविनोद की क्रमदीश्वर रचित संक्षिप्तसार पर लिखी टीका प्राकृतपाद अब 'प्राकृतप्रकाश' पर की हुई टीका मानी जाती है क्योंकि इसमें सन्निविष्ट छः परिच्छेद प्राकृत प्रकाश के सात परिच्छेदों से बिल्कुल मिलते हैं। प्राकृतव्याकरणों में चण्ड कृत 'प्राकृतलक्षण' भी अत्यंत प्राचीन मानी है। इसमें माहाराष्ट्री और जैन प्राकृतों—अर्धमागधी, जैनशौरसेनी, जैन माहाराष्ट्री का उल्लेख किया गया है। हेमचन्द्र रचित 'प्राकृत-व्याकरण'—सिद्ध हेमचन्द्र के नाम से पूर्ण और प्रसिद्ध व्याकरण है। हेमचन्द्र ने स्वयं ही बृहत् और लघु वृत्तियों में अपने व्याकरण की टीका प्रस्तुत की है। लघुवृत्ति 'प्रकाशिका' के नाम से मिलती है। उदयसौभाग्यगणिन् के द्वारा 'प्रकाशिका' पर की हुई एक टीका 'हैम-प्राकृतवृत्तिढुण्ढिका' अथवा 'व्युत्पत्तिवाद' मिलती है। हेमचन्द्र के आठवें परिच्छेद पर नरेन्द्र चन्द्रसूरि रचित प्राकृत-प्रबोध टीका उपलब्ध होती है। हेमचन्द्र की भाँति क्रमदीश्वर ने 'संक्षिप्तसार' नामक संस्कृत-व्याकरण लिखा जिसका आठवाँ परिच्छेद 'प्राकृत-व्याकरण' है। उसने वररुचि का ही प्रायः अनुसरण किया है। उसका काल हेमचन्द्र और वोधदेव के बीच १२ वीं-१३ वीं शताब्दी के बीच माना जाता है। पूर्वी सम्प्रदाय के प्राकृत वय्याकरणों में पुरुषोत्तम, रामशर्मन और

मार्कण्डेय आदि मुख्य माने जाते है। पुरुषोत्तमदेव रचित 'प्राकृतानुशासन' की केवल एक हस्तलिखित प्रति १२६५ ई० की रचित खाटमण्ड, नेपाल के पुस्तकालय मे नेवारी लिपि मे उपलब्ध हुई है। रामशर्मन तर्कवागीश रचित 'प्राकृत-कल्पतरु' की एक हस्तलिखित प्रति १६८८ ई० की मिली है। मार्कण्डेय रचित प्राकृत-सर्वस्व उक्त दोनो रचनाओ की अपेक्षा अधिक ज्ञात है। उसका समय सत्रहवी शताब्दी का उत्तरकाल माना जाता है।

'त्रिविक्रम' का प्राकृत-व्याकरण हेमचन्द्र के व्याकरण के अनुसरण पर रचित है। रचयिता का समय १३वी शताब्दी के लगभग है। पश्चिमी संप्रदाय के प्राकृत वय्याकरणो मे त्रिविक्रम प्रमुख है और सिंहराज, लक्ष्मीधर अन्य प्रतिनिधि है। सिंहराज रचित प्राकृतरूपावतार और लक्ष्मीधर रचित षड्भाषा-चन्द्रिका रचनाएँ है। अप्पयदीक्षित रचित प्राकृत-मणिदीप भी उक्त संप्रदाय की रचना है। इसी के अंतर्गत शुभचन्द्र रचित 'शब्द-चिन्तामणि' भी है। कोई रावण रचित 'प्राकृत-कामधेनु' अथवा 'प्राकृत-लंकेश्वर' और कृष्ण-पण्डित अथवा शेषकृष्ण रचित 'प्राकृतचन्द्रिका' का भी उल्लेख मिलता है। इस प्रकार अनेक प्राकृत वय्याकरणों द्वारा प्राकृत भाषाओं पर यथेष्ट प्रकाश पडता है। यह अवश्य है कि प्रायः सभी वय्याकरणों ने प्राकृतो का संबंध लौकिक संस्कृत से ही स्थिर किया है, वैदिक से नही। यद्यपि प्राकृत भाषाओ का लौकिक संस्कृत की अपेक्षा वैदिक से ही संबंध अधिक स्वाभाविक माना गया है।

प्राकृत-धम्मपद

खोतान मे खरोष्ठी लिपि मे १८९२ ई० में फ्रांसीसी यात्री 'एम्० दुत्रुइल द रा' (M. Dutreiul de Rhine) के द्वारा कुछ महत्वपूर्ण लेख प्राप्त हुए। रूसी विद्वान 'डी० ओल्डेनबर्ग' (*D.* Oldenburg) ने इन लेखों का स्पष्टीकरण किया और फ्रांसीसी

विद्वान 'ई० सेनार्ट' (E. Senart) ने उसे १८९७ ई० में पूर्व संपादित लेखों के अंश के रूप में सिद्ध किया और फिर अंग्रेज तथा भारतीय विद्वानों ने भी इस ओर ध्यान दिया और उसका एक संस्करण कलकत्ता विश्वविद्यालय से 'बी० एम्० वरुआ' और 'एस्० मित्रा' ने सन् १९२१ में 'प्राकृत धम्मपद' के नाम से प्रकाशित किया। इसकी भाषा पश्चिमोत्तर प्रदेश की बोलियों से मिलती है। 'ज्यूल्स् ब्लाक' (Jules Bloch) ने 'खरोष्ठी धम्मपद' की ध्वनि संबंधी तथा अन्य विशेषताओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि इसका मूल भारतवर्ष में ही लिखा गया था। खरोष्ठी अक्षरों में होने के कारण इसका नाम 'खरोष्ठी धम्मपद' पड़ गया। यद्यपि भाषा की दृष्टि से इसका नाम 'प्राकृत-धम्मपद' अधिक उपयुक्त कहा जायेगा। उक्त उपलब्ध ग्रन्थ के बारह वर्गों (परिच्छेद) में २३२ छंदों का संग्रह मिलता है। इसका रचनाकाल २०० ई० के लगभग आँका गया है।

नियां-प्राकृत

'सर ओरेल स्टेइन' (Sir Aurel Stein) ने चीनी तुर्किस्तान में कई खरोष्ठी लेखों का अनुसंधान किया। स्टेइन ने तीन बार की यात्राओं—पहली १९००-१९०१ ई०, दूसरी १९०६-१९०७ और तीसरी १९१३-१९१४, में निया प्रदेश से अनेक लेखों को प्राप्त किया और इनका संपादन ए० एम्० ब्वायर, ई० जे० रैप्सन्, ई० सेनार्ट ने क्रमशः १९२० ई०, १९२७ ई० और ११ २९ ई० में खरोष्ठी शिलालेख (Kharosthi Inscriptions) के नाम से किया। सन् १९३७ ई० में 'टी० बरो' (T. Burro) ने प्रकाशित टिप्पणी में इन लेखों को किसी भारतीय प्राकृत में, जो 'शनशन' प्रदेश की तीसरी शताब्दी में राजकीय भाषा थी, लिखा हुआ बताया। चूँकि अधिकांश सभी लेख निया-प्रदेश से उपलब्ध हुए इसलिये इसे 'निया प्राकृत' के नाम से कहा गया है। इस भाषा का मूल स्थान भारत का पश्चिमोत्तर प्रदेश—संभवत. पेशावर के आसपास माना

गया है। क्योंकि इसकी भाषा का संबंध पूर्व उल्लिखित खरोष्ठी-धम्मपद और अशोक के पश्चिमोत्तर प्रदेश के खरोष्ठी शिलालेखों की भाषा से है। उक्त लेखों में राजा की ओर से ज़िलाधीशों को आदेश, क्रय-विक्रय संबंधी पत्र, निजीपत्र तथा अनेक प्रकार की सूचियाँ उपलब्ध हैं। इसकी भाषा की एक विशेषता यह है कि दीर्घस्वरों, अन्य स्वरों और सघोष ऊष्म ध्वनियों के लिये जिनका प्रयोग भारतीय प्राकृतों में नहीं होता लिपि-चिह्न मिलते है। 'निया प्राकृत' पर ईरानी, तोखारी और मंगोली भाषाओं का पर्याप्त प्रभाव मिलता है। इसका उद्भव-काल तीसरी शताब्दी माना गया है।

शिलालेखी प्राकृत

प्रारंभिक और प्राचीन प्राकृतों में पालि और शिलालेखों की भाषा की गणना होती है। और ३०० ई० पू० के कुछ शिलालेख भी महत्वपूर्ण हैं। इनमें उत्तर बंगाल का महास्थान का शिलालेख (Mahasthan Stone Plaque Inscription), मध्य-भारत का जोगीमार गुफा लेख (Jogimara cave Inscription), पश्चिमोत्तर बिहार का सोहगौरा कॉपर प्लेट लेख (Sohgaura copper plate Inscription), ग्वालियर का वेसनगर स्तंभ लेख (Besnager Pillar Inscription) पश्चिमोत्तर भारत का खरोष्ठी में शिनकोट कॉसकेट लेख (Shinkot casket Inscription) उड़ीसा का हाथीगुम्फा लेख आदि मुख्य हैं। अशोक के अधिकांश शिलालेख ब्राह्मी लिपि में ही मिलते हैं। खरोष्ठी लिपि में शाहाबाजगढ़ी और मानसेहरा के शिलालेख मिलते हैं। अशोक की धर्मलिपियाँ छः रूपों में विभाजित की गई हैं। शिला-लेख के अन्तर्गत खरोष्ठी अक्षरों में शाहाबाजगढ़ी, और मानसेहरा और ब्राह्मी लिपि में गिरिनार, कालसी, धौली, जौगढ़ और सोपार के लेख हैं। लघु शिलालेख (Minor Rock Edicts) के अन्तर्गत रू०-

-नाथ, सहसराम, वैरट, ब्रह्मगिरि, सिद्धापुर, जटिंग रामेश्वर, मस्की, कोपबाल, येर्रगुड़ि के लेख हैं। स्तम्भ-लेख (Pillar Edicts) दिल्ली-तोपरा, दिल्ली, मिरत, इलाहाबाद, कौशाम्बी, रधिया और मथिया और रामपूर्वा के लेख हैं। लघु स्तंभ लेख (Minor Pillar Edicts) सारनाथ, साँची, इलाहाबाद, कौशाम्बी में मिलते हैं। स्तंभ दान लेख (Pillar Dedication) रुम्मिन्देइ और नेपाल के नीगलिव स्थानों में मिले हैं। लेणलेख (Cave Inscriptions) गया ज़िले के बराबार और नागार्जुन गुफाओं में उपलब्ध हुए हैं। इस प्रकार अशोक के शिलालेख भारत के चार भागों का प्रतिनिधित्व करते हैं—पश्चिमोत्तरी समूह (उदीच्य), दक्षिण-पश्चिमी समूह (प्रतीच्य), मध्य-पूर्वी समूह (प्राच्य-मध्य) और पूर्वी समूह (प्राच्य)। पिशेल ने स्पष्ट किया है कि सेनार्ट ने अशोक के धर्मलिपियों की भाषा शिलालेखी प्राकृत (Prakrit Monumental) के नाम से दी है। परंतु यह नाम भ्रामक है क्योंकि इससे भाषा की कृत्रिमता का बोध होता है। चूँकि अधिकांश शिलालेख गुफाओं में मिलते हैं इसलिये पिशेल ने इनको लयन > लेण विभाषा की संज्ञा दी है। इसी प्रकार का एक शब्द लाट (स्तंभ) < लट्ठि < यष्टि भी है, क्योंकि अशोक के लेख अनेक लाटों पर मिलते हैं इसलिये इसे 'लाटविभाषा' भी कहा गया है। इन लेखों की भाषा का संस्कृत के विकास से सीधा सम्बन्ध नहीं है। इनकी विशेषताएँ अधिकांश रूप में प्राकृत से ही मिलती हैं इसलिए इनकी गणना प्राकृत समूह के अन्तर्गत ही की जाती है।

अशोक के अतिरिक्त ब्राह्मी अक्षरों में अन्य शिलालेख भी मिलते हैं जो भारत के विभिन्न भागों और कालों से सम्बन्ध रखते हैं। ये अधिकतर ३०० ई० पू० से ४०० ई० तक के हैं। कुल की संख्या २००० के लगभग होगी। कुछ तो काफी लम्बे हैं और कुछ केवल एक ही पंक्ति के मिलते हैं। 'खारवेल हाथी गुम्फा लेख, उदयगिरि और

खण्डगिरि के शिलालेख', पश्चिमीभारत के आन्ध्रवंश के राजाओं के शिलालेख प्रसिद्ध और बड़े आकार के हैं।

प्राकृत के उपलब्ध शिलालेखों के अन्तर्गत पल्लववंश के राजा शिवस्कंद वर्मन एवं युवराज विजयबुद्धवर्मन के दान-वर्णन, 'कक्कुक' का शिलालेख, सोमदेव कृत 'ललित विग्रहराज' नाटक के कुछ अंश की भी गणना की जाती है। 'बुहलर', 'ल्युमैन', 'पिशेल' ने इनका उल्लेख किया है। इनको 'पल्लव ग्रान्ट' (Pallava Grant) के नाम से कहा गया है। कक्कुक का शिलालेख जैन माहाराष्ट्री प्राकृत में है। ललितविग्रह राजनाटक के अंशों में माहाराष्ट्री शौरसेनी और मागधी तीनों प्राकृतें मिलती हैं परन्तु हेमचन्द्र द्वारा निर्देशित शौरसेनी, मागधी की कुछ विशेषताएँ भिन्न रूप में मिलती हैं। स्टेनकोनो (Stenkonow) ने इसे स्पष्ट किया है। उदा० शौर०-दूण >-ऊण, माहा०-य्येव < ज्जेव ये रूप सोमदेव द्वारा स्वयं ही व्यवहृत किये गये होंगे क्योंकि इनकी पुनरुक्ति बराबर मिलती है और यह उत्कीर्णक की गलती नहीं हो सकती। सिंहलद्वीप के शिलालेख १०० ई० पू० से लेकर ३०० ई० तक के उपलब्ध होते हैं जिनका साम्य मध्यपूर्वी समूह से स्थिर किया गया है। गुफा अथवा प्रस्तर लेख ही इनमें प्रसिद्ध हैं। गुफा एवं शिला लेख संपूर्ण द्वीप में पाये जाते हैं और प्रस्तर लेख तालाबों के पास मिलते हैं और उनमें तालाबों का मन्दिर के लिये दान का वर्णन मिलता है। 'गाइगर' (Geiger) ने इसे 'सिंहाली प्राकृत' का नाम दिया है। खरोष्ठी अक्षरों में अशोक के अतिरिक्त पाये जाने वाले शिलालेख पश्चिमोत्तर प्रदेश के हैं। दो शिलालेख कांगरा के हैं जिनमें खरोष्ठी के साथ ब्राह्मी लिपि का भी प्रयोग किया गया है। मथुरा का एक प्रसिद्ध शिलालेख खरोष्ठी में मिलता है यद्यपि उस प्रदेश की लिपि ब्राह्मी है। इसी प्रकार पटना का एक शिलालेख है। फिर भी पश्चिमोत्तर प्रदेश ही खरोष्ठी के शिलालेखों का उपयुक्त स्थान माना गया है। उक्त शिलालेख विभिन्न प्रकार के पदार्थों पर मिलते हैं। जैसे पत्थर,

चट्टान, सोने, चाँदी, ताँवा के पत्तर, सील, मूर्तियों के आधार, मिट्टी के वर्तन, ईंट आदि। परन्तु इन सभी भारतीय शिलालेखों की अपेक्षा अशोक के लेख काफी बड़े आकार के और महत्वपूर्ण हैं और इनकी गणना दारा के 'प्राचीन-फारसी' के शिलालेखों के सदृश ही की जाती है।

मध्यकालीन आर्य भाषाओं अथवा प्राकृत का उल्लेख भारतीय प्रारंभिक सिक्कों पर भी मलता है। इन सिक्कों में कुछ सिक्के तो लेखपूर्ण (Inscribed) और कुछ सिक्के लेखरहित (uninscribed) हैं। लेखरहित सिक्कों के अन्तर्गत पश्चिमोत्तर भारत के चाँदी और ताँवे के सिक्के हैं और लेखपूर्ण सिक्कों के अन्तर्गत ग्रीक, ब्राह्मी, खरोष्ठी और प्रारंम्भिक नागरी लिपि में प्राप्त सोने, चाँदी और ताँवे के सिक्के हैं। भाषा की दृष्टि से दूसरे प्रकार के लेख ही महत्वपूर्ण हैं और ये भारत के विभिन्न भागों में ३०० ई० के वाद से मिलते हैं। 'धर्मपाल' का लगभग ३०० ई० पू० का प्राचीन भारतीय सिक्का मध्यप्रदेश के सागर ज़िले में एराम (Eram) में उपलब्ध हुआ है। इस पर ब्राह्मी लिपि में 'धमपालस' ('धर्मपालस्य') लिखा मिलता है। खरोष्ठी और ग्रीक में डेमेट्रिअ के ताँवे के सिक्के मिलते हैं। खरोष्ठी में '**महरजस अपरिजितस दिमे**' लिखा मिलता है। इस प्रकार प्राकृतों के ध्वनि-विवेचन की दृष्टि से इन सिक्कों का भी कम महत्व नहीं है।

पहले कहा जा चुका है कि प्राकृत भाषाओं के अन्तर्गत 'गाथा' की भाषा अथवा संस्कृत के विकृत रूप की भी गणना की जाती है। संस्कृत में प्राकृत की विशेषताओं का समावेश होने के कारण शुद्ध भाषा का रूप बदल गया। संस्कृत के इस रूप में बौद्ध, जैन तथा पुराणों की रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। फ्रांसीसी विद्वान 'सेनार्ट' के द्वारा तीन भागों में संपादित महावस्तु के उपलब्ध होने से गाथा की भाषा का अध्ययन सरल हो गया। सद्धर्म पुण्डरीक, ललितविस्तर, जातकमाला, अवदानशतक रचनाएँ

इसी भाषा में है जिनका अध्ययन अमरीका के विद्वान फ्रैंकलिन् एज्-र्टन् (Franklin Edgertan) ने किया है। सुवर्ण—भाषोत्तम-सूत्र भी इसी प्रकार की रचना है। डॉ० ए० एन्० उपाध्ये द्वारा संपादित 'वाराङ्गचरित' और श्री मुल्कराज जैन द्वारा संपादित 'चित्त-सेन पद्मावती चरित' की भूमिका में इस भाषा का उल्लेख किया गया है। सर्वप्रथम अमरीका के ही विद्वान मॉरिस ब्लूमफील्ड ने जैन ग्रंथों में प्रयुक्त इस भाषा की ओर संकेत किया। जैन ग्रंथों की कहानियों तथा अन्य प्रकार की रचनाओं को सर्वसाधारण को संभवतः समझाने के लिये इस भाषा का आश्रय लिया गया है। इसी प्रकार रामायण, महाभारत तथा पुराणों की संस्कृत भाषा में अनेक ऐसे ही प्रयोग मिलते हैं जो प्राकृत भाषा की विशेषताओं से संबंध रखते हैं। प्राकृत के शब्दों और रूपों के प्रयोग शुद्ध संस्कृत के रूप को बदल देते हैं। भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना द्वारा प्रकाशित महाभारत के संस्करण में ग्रंथ की संस्कृत भाषा का वैज्ञानिक ढंग से विवेचन मिलता है और उसी के आधार पर प्राकृत की विशेषताओं के समावेश की भी पर्याप्त जानकारी हो जाती है। अतएव उक्त ग्रंथों द्वारा संस्कृत भाषा पर भी प्राकृत के प्रभाव का यथेष्ट परिचय मिल जाता है।

नाटकीय प्राकृतें

जैसा पहले कहा जा चुका है कि संस्कृत नाटकों में प्राकृतों का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में मिलता है और यह परंपरा अत्यन्त प्राचीन मानी जाती है। नाट्यशास्त्र, दशरूप और साहित्यदर्पण के अनुसार उच्च श्रेणी के पुरुष और महिलाएँ, भिक्षुणी, अग्रमहिषी, राजमंत्रियों की पुत्रियाँ, [illegible] आदि के द्वारा संस्कृत का व्यवहार होता था और अन्य स्त्री-वर्ग, अप्सराओं आदि में प्राकृत का प्रयोग मिलता है। अग्रमहिषी भी प्राकृत का प्रयोग करती है। गणिका की भाषा के संबंध में निम्न-

लिखित उल्लेख मिलता है—**"गणिया चउसट्ठि कला पण्डिया चउसट्ठि गणिया गुणोववेया अठारह संदेसी भाषाविसारया।"** नायाधम्मकहा, विवागसूत्र, कुमार-संभाव, सरस्वती में दो भाषाओं का प्रयोग हुआ है। शिव का कथन संस्कृत और पार्वती का प्राकृत में मिलता है। राजशेखर की कर्पूरमंजरी में भी संस्कृत और प्राकृत दोनों का प्रयोग हुआ है। मृच्छकटिक में विदूषक कहता है कि दो वस्तुएँ हास्य को उत्पन्न करती हैं। एक तो किसी स्त्री के द्वारा संस्कृत भाषा का प्रयोग और दूसरे किसी पुरुष के द्वारा धीमे स्वर में गान। सूत्रधार बाद में जो विदूषक का भी कार्य करता है, संस्कृत का व्यवहार करता है परन्तु ज्यों ही वह स्त्रियों को सम्बोधित करता है तो वह प्राकृत का प्रयोग करने लगता है। पृथ्वीधर ने स्त्रियों की भाषा प्राकृत स्वीकार नहीं की है—**"स्त्रीषु न प्राकृतम् वदेत।"** परन्तु तथ्य यह है कि स्त्रियों की भाषा प्राकृत है। इसे प्रायः सभी वय्याकरणों ने स्वीकार किया है। परन्तु वे संस्कृत भी बोलती हैं और समझती हैं। पिशेल के अनुसार विद्धशालभञ्जिका में विचक्षणा, मालती-माधव में मालती, प्रसन्नराघव में लवंगिका और सीता संस्कृत भाषा में गीतों का गान करती हैं। अनर्घराघव में कलहंसिका, मल्लिकामारुतम् में सुभद्रा, मल्लिका, नवमालिका, सारसिका, कालिन्दी संस्कृत भाषा में वार्तालाप और गान दोनों करती हैं।

पुरुष भी वार्तालाप में तो प्राकृत का प्रयोग करते हैं, परन्तु गीत संस्कृत में गाते हैं। कंसवध में द्वारपाल, धरण्य में नापित आदि। जीवानंदन में धारणा प्राकृत का प्रयोग करती है परन्तु तपस्विनी के रूप में वह संस्कृत में वार्तालाप करती है। इसी प्रकार मुद्राराक्षस में राक्षस राजमंत्री से संस्कृत में वार्तालाप करता है। सर्वप्रथम अश्वघोष के नाटकों में जिसका रचनाकाल १०० ई० माना जाता है और जो मध्यएशिया से उपलब्ध और जर्मनविद्वान 'ल्युडर्स' (Luders) द्वारा संपादित हुआ, प्राकृत भाषाओं का

प्रयोग मिलता है। नाटक की भाषा अर्वाचीन नाटकों की अपेक्षा अत्यंत प्राचीन है। ‘ल्युडर्स’ ने नाटक में प्रयुक्त प्राकृतों के तीन रूप दिये हैं — दुष्ट की भाषा प्राचीन मागधी, गणिका और विदूषक की भाषा प्राचीन शौरसेनी और गोभम-तापस की भाषा को प्राचीन अर्ध-मागधी। इनकी भाषा का रूप अशोकी प्राकृत से भी मिलता है। दुष्ट की भाषा प्राचीन मागधी में र > ल, ष, स > श,–अः > -ए, अहं > अहकं, षष्ठी एक०–हो भाषा संबंधी विशेषताएँ मिलती हैं। गणिका और विदूषक की भाषा प्राचीन और शौरसेनी में–अः > -ओ ‘न्य्,-ज्ञ् > ञ्ञ्, ऋ > इ, व्य > व्व्, त्व् > च्च्, कृत्वा > करिय, ‘भवान् > भवाम्’ आदि उदाहरण शौरसेनी भाषा के हैं। गोभम तापस की भाषा मध्यपूर्वीसमूह अथवा प्राचीन अर्ध-मागधी में ‘र > ल,–अः > –ओ, श का अभाव–‘क,–आक,–इक प्रत्ययों’ का व्यापक प्रयोग मिलता है। अश्वघोष के अनंतर भास के नाटकों में प्रयुक्त प्राकृत प्रारंभिक रूप में मानी जाती है। इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ अधिकतर दक्षिण भारत में मिली हैं। इसीलिये दक्षिण की लिपियों में प्राकृत भाषा अत्यंत प्राचीन नहीं लगती है। परन्तु प्राकृतों के अध्ययन के लिये मृच्छकटिक नाटक का अधिक महत्व है, जिसके लेखक शूद्रक माने गये हैं।

संस्कृत नाटकों में प्राकृतों के प्रयोग की परंपरा ११०० ई० तक तो बिल्कुल स्वाभाविक रूप में मिलती है क्योंकि तब तक प्राकृतों का व्यापक प्रयोग जनसाधारण में प्रचलित था परन्तु ११ वीं शताब्दी के अनंतर रचे हुए नाटकों में भी यहाँ की १७ वीं शताब्दी के नाटकों में भी संस्कृत नाटकों में प्राकृतों का प्रयोग काव्यशास्त्रियों और वैयाकरणों द्वारा निर्देशित नियमों के अनुसार ही कहा जायगा। अश्वघोष, भास, शूद्रक, कालिदास आदि ने तो अपने नाटकों में लौकिक व्यवहार के कारण ही विविध पात्रों के अनुसार प्राकृत भाषा का प्रयोग किया होगा परन्तु बाद में यही नाटकों की भाषा का एक निश्चित रूप बन गया। नाटकों में प्रयुक्त शौरसेनी के

दो प्रधान रूप प्राच्या और आवन्ती, दाक्षिणात्य निश्चित किये गये हैं। मृच्छकटिक में पृथ्वीधर के अनुसार विदूषक प्राच्या का प्रयोग करता है। वीरक आवन्ती का व्यवहार करता है। पिशेल के अनुसार दक्षिण-निवासी चंन्दनक दाक्षिणात्य का प्रयोग करता है। इसी में राजा का साला शाकार, स्थावरक कुंभीलक, वर्धमानक, चाण्डाल आदि मागधी का प्रयोग करते हैं शाकार मागधी की एक विभाषा शाकारी का प्रयोग करता है, माथुर ढक्की का और चांडाल चांडाली का। शकुन्तला में मछुए, पुलिस कर्मचारी, सर्वदमन मागधी का प्रयोग करते हैं। मागधी का प्रयोग प्राय: निम्नश्रेणी के व्यक्तियों तथा बौने, विदेशी, जैन-भिक्षु आदि के द्वारा मिलता है। इसी प्रकार शौरसेनी संस्कृत नाटकों में महिलाओं, शिशुओं, नपुंसकों, ज्योतिषियों, विक्षिप्त, अस्वस्थ आदि लोगों की भाषा है। माहाराष्ट्री का उपयोग गीतों के लिये किया गया है। परन्तु विविध पात्रों के द्वारा गद्य की भाषा मागधी और शौरसेनी के प्रयोग में वय्याकरणों तथा विद्वानों में पर्याप्त मत-भेद मिलता है। भरत और साहित्य-दर्पणकार के अनुसार जो व्यक्ति हरम से सम्बद्ध होते हैं उनकी भाषा मागधी होती है। जैसे नपुंसक, किरात, म्लेच्छ, आभीर, शाकार आदि। दशरूप तथा सरस्वती-कंठाभरण के अनुसार मागधी का प्रयोग पिशाच तथा निम्नकोटि और निम्न पेशे के व्यक्ति करते हैं। मृच्छकटिक में चारुदत्त के शिशु और शाकुंतलम् में शकुंतला के पुत्र की भाषा वय्याकरणों के अनुसार निर्देशित शौरसेनी न होकर मागधी है।

परन्तु प्रबोधचंद्रोदय में चार्वाक के पुरुष, उड़ीसा के दूत, दिगंबर-जैन, मुद्राराक्षस में अनुचर, जैनभिक्षु, दूत समिद्धार्थक, चांडाल की भाषा वय्याकरणों के द्वारा निर्देशित मागधी ही है। यद्यपि अन्य वेष में उनमें से कुछ पात्र शौरसेनी का भी प्रयोग करते हैं। ललित-विग्रहराज नाटक में भाट, गुप्तचर मागधी के अतिरिक्त शौरसेनी में भी वार्तालाप करते हैं। वेणीसंहार में राक्षस और राक्षसी, मल्लिकामोद में

महावत, नागानंद, चैतन्य चन्द्रोदय में अनुचर, चण्डकौशिक में चांडाल, धूर्त-समागम में नाई, हास्यार्णव में चारुहिंसक, कंसवध में कुबड़ा, अमृतोदय में जैनभिक्षु मागधी भाषा का ही प्रयोग करते हैं। इस प्रकार संस्कृत के प्रायः सभी नाटकों में एक-दो को छोड़ कर सभी पात्र वय्याकरणों द्वारा निर्देशित प्राकृत भाषा का ही प्रयोग करते हैं। जो कुछ कहीं पर भेद मिलता भी है वह शौरसेनी के प्रभाव के कारण अथवा ग्रंथों में पाठ-भेद के कारण माना गया है।

मृच्छकटिक नाटक में प्रयुक्त शाकारी को पृथ्वीधर ने अपभ्रंश का रूप माना है परन्तु क्रमदीश्वर, रामतर्कवागीश, मार्कण्डेय, साहित्य-दर्पणकार, भरत, लेसेन (Lassen) आदि ने उसे मागधी की एक विभाषा निश्चित की है। मार्कण्डेय ने स्पष्ट रूप से कहा है—**मागध्याः शाकारी। (साध्यतीति शेषः)** । पृथ्वीधर के अनुसार इस विभाषा में तालव्य व्यंजनों के पूर्व—य् का बहुत सी ह्रस्व उच्चारण सम्मिलित रहता है और यह विशेषता मागधी और ब्राचड़ अपभ्रंश दोनों की है। षष्ठी एक० में—आह, सप्तमी एक०—अहि, संबोधन बहु०—आहो रूप भी अपभ्रंश में मिलते हैं। अतएव पृथ्वीधर का वर्गीकरण बिल्कुल निराधार नहीं है। इसी प्रकार चांडाली को मागधी और शौरसेनी दोनों से संबंधित किया जाता है परन्तु लेसेन के अनुसार यह मागधी का ही एक रूप है। मार्कण्डेय ने चांडाली से शाकारी का विकास माना है और उसे ही शौरसेनी और मागधी से भी संबंधित किया है। मार्कण्डेय के अनुसार बाह्लीकी भी मागधी का ही एक रूप है अन्य लोगों ने उसे पिशाच देश की भाषा से संबंधित किया है। वस्तुतः यह कहा जा सकता है कि मागधी कोई एक भाषा नहीं थी वरन् वह अनेक विभाषा रूपों में प्रचलित भाषा थी। मृच्छकटिक में गणिका के संरक्षक तथा उसके साथियों की भाषा ढक्की है। यह ढक्की विभाषा पूर्वी बंगाल के ढाका प्रदेश की विभाषा मानी गई है। पृथ्वी-धर ने ढक्की को शाकारी, चांडाली, शाबरी के सदृश ही अपभ्रंश से

संबद्ध किया है। कुछ लोगों के मतानुसार यह मागधी और अपभ्रंश के बीच की स्थिति की सान्ध्य भाषा है। पृथ्वीधर के अनुसार यह लकार और शकार युक्त विभाषा थी—'**लकारस्य ढक्क विभाषा संस्कृत प्रायत्वे दन्त्य तालव्य शकारद्वय युक्ता।**' उदा०–र>ल, स, ष>श। हस्तलिखित प्रतियों में ये शुद्ध रूप मिलते हैं–'रुद्ध>लुद्धु', 'कुरुकुरु>कुलुकुलु', 'धारयति>धालेदि', 'पुरुष:>पुलिशे'। अतएव ध्वनियों के ये रूप इसका संबंध मागधी से स्थापित करते हैं। इसके पद-विकास में–अ:>उ रूप का प्रयोग अपभ्रंश के सदृश हुआ है। कुछ प्रतियों में वद्धे, माथुलु शब्दों के स्थान पर वद्धो, माथुरु मिलते हैं। ये विशेषताएँ ढक्की के प्रतिकूल हैं। परन्तु अधिक प्रामाणिक रचनाओं के अभाव में उक्त विभाषा का कोई निश्चित रूप स्थिर करना संभव नहीं है।

शौरसेनी की एक विभाषा 'अवन्तिका' का प्रयोग मृच्छकटिक में जैसा कि पहले कहा जा चुका है, पुलिस पदाधिकारी वीरक, चन्दक आदि करते हैं। इसमें 'र,' 'स' ध्वनियों तथा लोकोक्ति आदि का बाहुल्य मिलता है। पृथ्वीधर ने उसे इस प्रकार स्पष्ट किया है—'**शौरसेनी अवन्तिजा प्राच्य एतासु दन्त्य सकारता। तत्रावन्तिजा रेफवती लोकोक्ति बहुला।**' लेसेन के अनुसार अवन्तिका मथुरा की भाषा थी। मार्कण्डेय और क्रमदीश्वर के अनुसार यह माहाराष्ट्री और शौरसेनी का मिश्रित रूप था, जिसे इस प्रकार दिया गया है—"**आवन्ती स्यात् माहाराष्ट्री शौरसेन्याः तु संस्कृतात्। अन्ययोः संस्काराद् आवन्ती भाषा सिद्धास्यात्। संस्कारश्च केचस्मिन् एव वाक्ये बोद्धव्य:।**" परन्तु चन्दनक की भाषा को अवन्तिका के नाम से नहीं कहा जा सकता जैसा कि उसके एक कथन से स्पष्ट होता है— "**वअम दक्खिनत्ता अव्वत्त भासिणो म्लेच्छजातीनाम् अनेक देशभाषा विज्ञायथेष्टम् मन्त्रयामः**"। उसके उक्त कथन से किसी दक्षिण भाषा का निर्देश होता है, अतएव वह भाषा अवन्तिका से भिन्न है। इसे दाक्षिणात्य भी कहा गया है। लेसेन ने मृच्छकटिक के अज्ञात पात्र खिलाड़ी की भाषा दाक्षिणात्य और शाकुंतलम् में पुलिस पदाधिकारी की भाषा

में दाक्षिणात्य की विशेषताएँ मानी हैं। परन्तु खिलाड़ी की भाषा ढक्की है और शाकुंतलम् में पुलिस पदाधिकारी की भाषा साधारण शौरसेनी है। हस्तलिखित प्रतियों में महाप्राण व्यंजनों के द्वित्व रूप को देखकर पिशेल ने भी पहले इसे दाक्षिणात्य की विशेषता स्वीकार की थी परन्तु बाद में उसने इसे लिपिदोष का कारण माना। अतएव यह कहा जा सकता है कि अवन्तिका और दाक्षिणात्य का मुख्य आधार शौरसेनी प्राकृत है, कोई अन्य प्राकृत नहीं।

प्रारंभिक प्राकृत में पालि और शिलालेखी प्राकृत भाषाएँ मुख्य मानी गई हैं। शिलालेखी प्राकृत के विविध रूपों की गणना, जिनका परिचय पहले दिया जा चुका है, साहित्यिक प्राकृत के अंतर्गत नहीं की जाती परन्तु पालि साहित्यिक भाषा मानी गई है और उसका साहित्य प्राय: बौद्ध-धर्म संबंधी साहित्य ही है। परन्तु संकुचित अर्थ में प्राकृत-साहित्य के अंतर्गत पालि-साहित्य नहीं रखा गया है।

पालि

'पालि' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग धार्मिक ग्रन्थ अथवा 'बुद्ध-वचन' की 'पंक्ति' के अर्थ में मिलता है और बाद में 'पालि' का अर्थ बदल कर भाषा विशेष के लिये हो गया। 'तिपिटक' क पंक्तियों में 'परियाय' शब्द का उल्लेख 'रेखा' के अर्थ में हुआ है और अशोक के शिलालेखों में यही 'पलियाय' सामान्य प्रयोग से 'पालियाय' और तदनंतर इसी का लघु-रूप 'पालि' भाषा के लिये प्रचलित हो गया। इस प्रकार पालि शब्द प्रारंभिक अवस्था में भाषा के लिये प्रयुक्त न होकर धार्मिक ग्रंथ अथवा बुद्धवचन की पंक्ति के लिये होता था। पालि भाषा में संग्रहीत तिपिटक साहित्य की भाषा का मूल क्षेत्र कहाँ था और किस मूलभाषा के आधार पर उसका विकास हुआ, इस पर पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण प्रस्तुत किये हैं। प्राचीन भारतीय बौद्ध धर्मावलम्बियों के मतानुसार पालि मागधी

भाषा ही है और यही मूलभाषा है। परन्तु पालि में मागधी के श, ल, प्रथमा एक वचन–ए आदि के रूपों की व्यापकता नहीं मिलती इसलिये पालि मागधी का पर्याय रूप नहीं माना जाता। वेस्टरगार्ड (Westergaard), ई० कुह्न (E. Kuhn) ने और आर० ओ० फ्रैंक (R. O. Franke) ने पालि को उज्जयिनी की विभाषा इसलिये माना है क्योंकि वह अशोकी गिरिनार (गुजरात) के शिलालेख के सदृश है। ओल्डेनबर्ग (Oldenburg) ने 'पालि' को खण्डगिरि के शिलालेख के आधार पर कलिंग प्रदेश की भाषा स्वीकार की है। विन्डिश (Windish), गाइगर (Geiger), रिस्डेविड्स् (Rhysdavids) आदि विद्वानों ने पालि को मागधी का एक रूप माना है। रिसडेविडस् (Rhysdavids) ने उसे कोशल प्रदेश की भाषा माना है। क्योंकि बुद्ध ने अपने को कौशल-खत्तिय कहा है। उसी रूप में बुद्ध ने अपने उपदेश दिये थे और वह रूप यद्यपि जन-भाषा का रूप नहीं था परन्तु वह अनेक विभाषाओं का मिश्रित रूप था और भिन्न-भिन्न स्थानों के लोग उसका प्रयोग अपनी स्थानीय विशेषताओं के साथ करते थे। ल्युडर्स (Luders) ने उस रूप का मूल आधार पुरानी अर्धमागधी माना है और इसी मत को अधिक प्रश्रय दिया गया है। चूँकि गौतम बुद्ध के उपदेश अनेक वर्षों के उपरान्त लिपिबद्ध किये गये और यह कार्य राजगृह में ४८५ ई० पूर्व के लगभग प्रथम बुद्ध महासम्मेलन के अवसर पर मोग्गल्लान के द्वारा किया गया जो बनारस संस्कृत बहुला क्षेत्र का निवासी था इसलिए बुद्धवचन की मूलभाषा संस्कृत-निष्ठ और कुछ परिवर्तित रूप में हो गई। इसीलिये पालि भाषा को मिश्रित भाषा (Kuntsprache) का रूप माना जाता है।

'बुद्ध-वचन' का संग्रह 'तिपिटक' (त्रिपिटक) 'सुत्तपिटक', 'विनय-पिटक', 'अभिधम्मपिटक' के नाम से उपलब्ध होता है। कहा जाता है कि ४८५ ई० पू० में गौतमबुद्ध के निर्वाण के कुछ सप्ताह बाद ही 'प्रथम

महासम्मेलन' में 'सुत्तपिटक' और दूसरे पिटक का अधिकांश रूप संग्रहीत किया गया। 'दूसरा महासम्मेलन' वैशाली में १०० वर्ष के उपरांत और 'तीसरा महासम्मेलन' अशोक की संरक्षा में पाटलिपुत्र में हुआ और अनुमान किया जाता है कि इस महासम्मेलन तक संपूर्ण 'बुद्धवचन' का संग्रह कर लिया गया था। 'सुत्तपिटक' में बुद्ध-धर्म की विशेषताएँ अनेक ग्रन्थों में अधिकतर संवाद के रूप में मिलती हैं। इनका विभाजन पाँच निकायों के रूप में मिलता है। विनयपिटक में संघ के नियमों का अनुशासन संबंधी वृत्तांत, भिक्षु और भिक्षुणियों के दैनिक जीवन संबंधी आदेश आदि का संग्रह किया गया है। अभिधम्म-पिटक में बौद्ध धर्म के सिद्धांतों का गंभीर विवेचन उपलब्ध होता है। बुद्ध-वचन अथवा तिपिटक का विभाजन ९ अङ्गों में भी मिलता है— 'सुत्त', 'गेय्य', 'वेय्याकरण', 'गाथा', 'उदान', 'इतिवुत्तक', 'जातक', 'अब्भुत्तधम्म','वेदल्ल'। 'तिपिटक' के विविध ग्रन्थों का विभाजन उक्त विषय केअनुसार सार्थक सिद्ध होता है। उक्त विभाजन में 'सुत्त' से आशय गौतम बुद्ध के संवादों और 'सुत्तनिपात' के कुछ अंशों से है। गद्य और पद्य का मिश्रित रूप 'गेय्य' कहलाता है। 'वेय्याकरण' में 'अभिधम्म' और कुछ अन्य रचनाओं का संग्रह है। गाथा में पूर्ण पद्यात्मक अंश के रूप हैं और उदान में गौतम बुद्ध की गंभीर विवेचना छंदों में है। 'इतिवुत्तक' में गौतमबुद्ध द्वारा कथित कथाओं का संग्रह है, जातक में गौतम बुद्ध की पूर्व जन्म कथाओं का विवरण मिलता है। 'अब्भुतधम्म' में अलौकिक शक्तियों का उल्लेख है और वेदल्ल में प्रश्नोत्तर के रूप में बुद्ध के उपदेशों का संग्रह है।

'विनयपिटक' में बुद्धसंघ के अनुशासन संबंधी नियमों का विस्तार मिलता है। इसके अन्तर्गत सुत्तविभंग (महाविभंग, भिक्खुणीविभंग), खन्धक (महावग्ग, चुल्लवग्ग), परिवार अथवा परिवारपाठ मुख्य रचनाएँ हैं। विनयपिटक का मुख्य आधार प्राचीन रचना 'पाटि-मोक्ख' है जिसमें नियमों के उल्लंघन आदि और उसके फलस्वरूप संघ

से वहिष्कार का विवरण दिया गया है और सुत्तविभंग उक्त रचना के टीका-रूप में ही मानी जाती है। महाविभंग में वौद्ध भिक्षुओं का आठ परिच्छेदों में आठ प्रकार के उल्लंघनों का विस्तार से और भिक्खुणी-विभंग में संक्षेप में वौद्ध भिक्षुणियों के उल्लंघन का वर्णन मिलता है। खन्धक सुत्त-विभंग रचना का पूरक माना गया है। इसमें जीवन के नित्य आवश्यक नियमों के पालन आदि का विवरण दिया गया है। महावग्ग के दस विभागों में सम्वोधिकाल से वनारस में प्रथमसंघ के स्थापन, संघ में प्रवेश, उपोसथ, उत्सव, आवश्यक नियम आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। चुल्लवग्ग महावग्ग का पूरक है। चुल्लवग्ग के अंत में ११-१२ खंधकों में प्रथम दो वौद्ध महा-सम्मेलन का विवरण मिलता है। विनयपिटक के अंतर्गत परिवार सिंहलद्वीप की एक सिंहाली भिक्षु की रचना मानी जाती है। उसके १९ विभागों में अभिधम्म-पिटक के सदृश ही प्रश्नोत्तर रूप में विनय-पिटक के उक्त ग्रन्थों में उल्लिखित विषय की तालिका दी गई है।

'सुत्तपिटक' में वौद्ध धर्म के सिद्धांतों और बुद्ध के प्रारंभिक शिष्यों का वर्णन मिलता है। 'सुत्तपिटक' के अंतर्गत पाँच निकाय (संग्रहग्रंथ) 'दीघनिकाय', 'मज्झिमनिकाय', 'संयुत्तनिकाय', 'अंगुत्तरनिकाय', 'खुद्दक-निकाय' दिये गये हैं। 'दीघनिकाय' में ३४ दीर्घ सूत्रों का संग्रह है जिसमें प्रत्येक सूत्र किसी न किसी सिद्धांत का विवेचन एक स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में हुआ है। 'दीघनिकाय' का विभाजन तीन पुस्तकों के रूप में मिलता है। पहली पुस्तक के संपूर्ण, दूसरी और तीसरी पुस्तकों के भी अनेक सूत्र गद्य में ही हैं और दूसरी-तीसरी पुस्तकों के अधिकांश सूत्र गद्य-पद्य मिश्रित हैं। पहली पुस्तक में 'सील' (शील) 'समाधि', 'पञ्ञा' (प्रज्ञा) रूपों का वर्णन है। इसे 'सीलखन्धवग्ग' के नाम से भी दिया गया है जिसमें १-१३ सूत्रों का संग्रह है। दूसरी पुस्तक 'महावग्ग' में १४-२३ सूत्र और तीसरी पुस्तक 'पाटिकवग्ग' में २४-३४ सूत्र हैं। 'महा-

वग्ग' में ही बौद्धधर्म का ब्राह्मण-धर्म से संबंध तथा बौद्धधर्म की विशेषताओं, निर्वाण आदि विस्तार से वर्णन मिलता है।

'मज्झिमनिकाय' में मध्यम आकार के विविध विषयक सूत्रों का संग्रह है। इसमें बुद्ध के १५२ संभाषणों और संवादों का सूत्र रूप में संग्रह है। पहले समूह मूलपण्णास में १-५०, दूसरे समूह मज्झिम पण्णास में ५१-१०० और तीसरे समूह उपरिपण्णास में १०१-१५२ सूत्रों का संग्रह किया गया है। 'संयुत्त-निकाय' में सभी विषय संबंधी सूत्रों का संग्रह है। इसीलिये इसे 'संयुत्त' नाम से कहा गया है। देवता-संयुत्त में अनेक देवताओं के संबंध की उक्तियाँ हैं, मार-संयुत्त में कामदेव के संबंध के २५ सूत्र हैं। प्रत्येक में किस प्रकार कामदेव सिद्धार्थ अथवा उनके शिष्यों को मोहित करने का प्रयत्न करता है उसका विवरण है। इसी प्रकार भिक्खुणी-संयुत्त के दस सूत्रों में भिक्षुणियों को कामदेव द्वारा मोहित किये जाने का वर्णन है। इसी प्रकार 'कस्ससंयुत्त', सारिपुत्त-संयुत्त, निदानसंयुत्त, समाधिसंयुत्त, मोग्गल्लान-संयुत्त, सक्क-संयुत्त, सच्च-संयुत्त आदि का संग्रह मिलता है। सच्च-संयुत्त में ही प्रसिद्ध उपदेश 'धम्मचक्कप्पवत्तन सुत्त' का उल्लेख है। कुल संयुत्तों की संख्या ५६ और उनमें वर्णित सूत्रों की संख्या २८८९ है। इनका विभाजन पाँच विभागों (वग्ग) में भी मिलता है। 'अगुंत्तर निकाय' के प्राय: २३०८ सूत्रों को ११ विभागों (निपात) में विभाजित किया गया है। विभाजन की विशेषता यह है कि एक विभाग में एक ही संख्या से संबंधित विषय का उल्लेख, दूसरे विभाग में दो से संबंधित विषय का उल्लेख मिलता है। उदाहरण के लिये सुन्दर और असुन्दर दो प्रकार की वस्तुएँ, वन में रहने के दो कारण विशेष, दो प्रकार के बुद्ध विशेष आदि, इसी प्रकार तीसरे विभाग में तीन की संख्या से संबंधित विषय का वर्णन हुआ है। उदाहरण के लिये कर्म, वचन और विचार, ईश्वर के तीन दूत-वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु, तीन प्रकार की वस्तुएँ जो स्त्रियों को नर्क में ले जाती हैं आदि। ११ विभागों को अनेक खंडों

(वग्ग) में बाँटा गया है और एक खण्ड में अधिक से अधिक २६२ और कम से कम ७ सूत्रों का संग्रह मिलता है। प्रत्येक विभाग में अलग-अलग विषय के अनुसार खण्ड रूप में सूत्रों का संग्रह किया गया है। उदाहरण के लिये एक निपात के पहले खण्ड में १० सूत्र पति-पत्नी के संबंध पर दिये गये हैं, इसी प्रकार एक निपात के १४ वें खण्ड में ८० सूत्रों में प्रसिद्ध भिक्षु और भिक्षुणियों का वर्णन हुआ है।

'खुद्दक' (क्षुद्रक) निकाय में संक्षिप्त सूत्रों का संग्रह मिलता है। खुद्दक निकाय के अन्तर्गत-खुद्दकपाठ, धम्मपद, उदान, इतिवुत्तक, सुत्त-निपात, विमानवत्थु, पेतवत्थु, थेरगाथा, थेरीगाथा, जातक, निद्देस, पटिसंभिदामग्ग, अपादान, बुद्धवंश, चरियापिटक नामक १५ ग्रंथों का संग्रह दिया गया है। 'खुद्दक-पाठ' में ६ संक्षिप्त सूत्रों का संग्रह है जो प्रार्थना-पुस्तक के रूप में नित्य-पाठ के हेतु मानी गई है। इनमें धार्मिक विश्वास, आज्ञा, शरीर के ३२ अंगों, मंगल आदि विषयों के अतिरिक्त मृतों की आत्माओं तथा सिंहल, स्याम प्रदेशों में शवदाह के अवसर पर गान संबंधी सूत्रों का भी संग्रह मिलता है। 'धम्मपद' में बौद्ध-धर्म के सिद्धांतों का विस्तृत उल्लेख ४२३ छंदों में विषय के अनुसार २६ विभागों (वग्ग) में हुआ है। प्रत्येकवर्ग में १० से लेकर २० छंदों का संग्रह मिलता है। धम्मपद के अधिकांश छन्दों का उल्लेख अन्य बौद्धिक ग्रंथों में भी हुआ है और यह अनुमान किया जाता है कि संग्रहकर्ता ने विविध बौद्ध ग्रंथों एवं तत्कालीन उपलब्ध भारतीय साहित्य-महाभारत, पंचतन्त्र, जैन-ग्रंथ आदि से धम्मपद के छंदों का संग्रह किया होगा। 'उदान' में छंदों के साथ कथाओं का उल्लेख मिलता है। ८२ कथाओं को ८ वर्गों में, प्रत्येक में लगभग-१० सूत्र के अनुसार, विभाजित किया गया है। गौतम बुद्ध के द्वारा ही संपूर्ण कथाओं को भी कहा गया यह प्रामाणिक नहीं माना जाता। क्योंकि उनमें अनेक कथाएँ असंभव और असंगत सी जान पड़ती

हैं। इतिवुत्तक में भी गद्य और पद्य का प्रयोग मिलता है। एक ही विषय का विवेचन गद्य और पद्य दोनों में किया गया है अथवा उसी विषय को पहले पद्य में फिर गद्य में दिया गया है। इस प्रकार पूर्ण ग्रंथ में ११२ कथाओं का संग्रह हुआ है। उक्त ग्रंथ में गौतम बुद्ध द्वारा नैतिक विषय पर कहे गये कथन मिलते हैं। सुत्तनिपात में गौतमबुद्ध के कुछ मूल उपदेश विभागों के रूप में संग्रहीत है। इसलिये प्राचीनता की दृष्टि से इस ग्रंथ का महत्व है। उक्त ग्रंथ का विभाजन ५ विभागों में हुआ है। पहले चार विभागों-उरगवग्ग, चूलवग्ग, महावग्ग, अट्ठकवग्ग में ५४ कविताओं का संग्रह है और पाचवें विभाग पारायणवग्ग में एक लम्बी कविता १८ खण्डों में विभाजित मिलती है। अट्ठवग्ग और पारायणवग्ग का उल्लेख अन्य बौद्धिक ग्रंथों में भी किया गया है। 'धम्मपद' के अनंतर 'सुत्तनिपात' ही बौद्ध-धर्म की अनेक लोगों के द्वारा उल्लिखित प्रसिद्ध रचना है। 'विमान-वत्थु' और 'पेतवत्थु' प्राचीन रचनाएँ नहीं मानी जातीं। इनका संग्रह तीसरे बौद्ध महासम्मेलन के कुछ समय पूर्व ही माना जाता है। 'विमान-वत्थु' में देवताओं के विशद महलों का वर्णन है जिनमें वे अपने पूर्व जीवन में अच्छे कर्मों के करने के फलस्वरूप ही पहुँच सके हैं। उक्त ग्रंथ में ८३ कथाओं को ७ विभागों में बाँटा गया है। 'पेतवत्थु' में अविकल प्राणियों का अपने जीवन-काल में किये हुए पापों का फल दिखाया गया है। ग्रंथ में ५१ कथाओं को चार विभागों में दिया गया है।

'थेर-गाथा' और 'थेरी-गाथा' रचनाएँ छन्दों में संग्रहीत मिलती हैं। इनमें भिक्षु और भिक्षुणियों के प्रशंसात्मक उल्लेख दिये गये हैं। थेरगाथा के १२७९ छंदों को १०७ कविताओं और थेरीगाथा के ५२२ छंदों को ७३ कविताओं में विभाजित किया गया है। इनका रचनाकाल ५०० ई० के लगभग माना जाता है। उक्त ग्रंथों में कविताओं के अतिरिक्त जो कथाओं का संग्रह मिलता है वह अप्रामाणिक माना जाता है।

'जातक' बोधिसत्व के पूर्व जन्मों की अनेक कथाओं का संग्रह है। इन कथाओं में गौतमबुद्ध नायक, प्रतिनायक और दर्शक के रूप में भाग लेते हैं। कथित जातकों के विविध अवसरों का उल्लेख 'पच्चुप्पन्नवत्थु', गद्य में पूर्व बुद्धजन्म संबंधित कहानी 'अतीतवत्थु', छंदों के उल्लेख जो प्रायः 'अतीतवत्थु' पर ही आश्रित होते हैं गाथा, प्रत्येक गाथा की संक्षिप्त शाब्दिक व्याख्या 'वेय्याकरण', बुद्ध के द्वारा अतीत कहानी में प्रयुक्त पात्रों का अपने काल के पात्रों से संबंध-निर्धारण' 'समोधान' के नाम से कहे गये हैं। प्रत्येक जातक प्रायः उक्त ५ भागों में विभाजित मिलता है। परन्तु जातकों का केवल 'गाथा' अंश ही प्रामाणिक माना जाता है। जातक का कहानी-अंश लोक-प्रचलित अथवा साहित्यिक कथाओं से लिया हुआ माना गया है। कुछ जातकों की कथाओं का उल्लेख ३०८ ई० पूर्व के लगभग भरहुत और साँची के स्तूपों की पत्थर की चहारदीवारी पर हुआ है।

कतिपय लोगों के कथनानुसार जातक कथाएँ इससे भी प्राचीन हैं और इसलिये उनके द्वारा बुद्धकालीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। अधिकतर लोगों का यह विश्वास है कि जातक महाभारत के सदृश किसी एक व्यक्ति और एक काल की रचना नहीं है। इसलिये उससे किसी विशेष समय की सभ्यता का मूल्यांकन करना संभव नहीं। जातकों की संख्या ५५० के लगभग दी गई है। इन सभी जातकों में रीति, नीति, भक्ति आदि के विषय तथा साधारण और विशद प्रेम-कथाओं आदि का विवरण मिलता है और अधिकांश में बौद्ध धर्म संबंधी सिद्धांत का कोई प्रतिपादन नहीं मिलता। भारतीय प्राचीन तन्त्राख्यायिका, पंच-तंत्र, पुराण आदि, पाश्चात्य 'ईसप की कहानियाँ' आदि के आधार पर जातक-कथाओं की रचना की गई है। जातक कथाएँ केवल साहित्यिक दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं हैं वरन् उनका ऐतिहासिक महत्व भी है। उनसे बौद्धकालीन सभ्यता पर प्रकाश भले ही न पड़े परन्तु कुछ जातकों से ३०० ई०

हैऔर चूंकि पुस्तक आकार में बड़ी है इसीलिये इसे 'महापट्ठान' नाम से भी दिया गया है। संपूर्ण ग्रंथ में शारीरिक और आत्मिक २४ प्रकार के संबंधों का अनुसंधानपूर्ण ढंग से वर्णन किया गया है। इसमें कर्ता और कर्म, शासक और शासित रूप में उक्त संबंध निर्वाह को दिया गया है। श्रीमती रिस्डेविड्स् भी,जिन्होंने 'अभिधम्मपिटक' का अनेक वर्षों तक गहन अध्ययन किया था अंत में उक्त ग्रंथों की क्लिष्टता का उल्लेख करते हुए कहती है कि पाश्चात्य मष्तिष्क के लिये ये ग्रंथ अत्यंत कठिन ही हैं और वे उन ग्रंथों की समस्याओं को ठीक से सुलझा सकी हैं इसका वे पूरा दावा नहीं करतीं। विद्वद्वर आचार्य नरेन्द्र देव द्वारा रचित 'अभिधम्मकोष' का प्रकाशन इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण होगा।

बौद्ध धार्मिक ग्रंथ के अन्तर्गत एक अन्य पुस्तक 'परित्त' अथवा 'महापरित्त' के नाम से भी दी गई है जिसमें प्रचलित तांत्रिक आदि प्रयोगों का संग्रह है। सिंहल द्वीप और ब्रह्मा में इसका अब भी समादर होता है। इनका प्रयोग नवगृहनिर्माण, मृत्यु, अस्वस्थता आदि के अवसरों पर किया जाता है। पुस्तक में २८ विभाग हैं, जिनमें से सात 'खुद्दकपाठ' से लिये गये हैं। इसका रचना-काल संदिग्ध है। 'मिलिन्द-पञ्ह' के एक उल्लेख से पता चलता है कि गौतमबुद्ध ने स्वयं 'परित्त' का शिक्षण किया था।

'पालि' साहित्य के अन्तर्गत अनेक टीकाएँ भी 'अट्ठकथाओं' के रूप में मिलती हैं। ये अट्ठकथाएँ सिंहल द्वीप में ही प्रायः लिखी गई। केवल एक ग्रंथ 'मिलिन्द-पञ्ह' की रचना पश्चिमोत्तर प्रदेश में मानी जाती है। इसमें राजा मिलिन्द (King Menander) के प्रश्नों और 'नागसेन' नामक बौद्धभिक्षु के द्वारा उनके उत्तर का संग्रह है। संवाद के रूप में बौद्धधर्म के सिद्धांतों की सुन्दर व्याख्या उक्त ग्रंथ में मिलती है।

बौद्ध ग्रंथों के सब से बड़े टीकाकार बुद्धघोष माने जाते हैं और

बुद्धघोष के पूर्व रचित 'नेत्तिप्पकरण', 'पेटकोपदेश', 'सुत्तसंघ' आदि ग्रंथ टीका-रूप में न होकर ब्रह्मा प्रदेश में मूल बौद्ध-ग्रंथ के रूप में माने जाते हैं। परन्तु बुद्धघोष के पूर्व रचित 'द्वीपवंश', सुत्तपिटक की टीका 'महाअट्ठकथा', अभिधम्म की 'महापच्चरी', विनय की 'कुरुन्दी' का उल्लेख मिलता है। टीका-ग्रंथ का यह पहला काल माना जाता है। ५वीं ई० में बुद्धघोष के ही टीका ग्रंथों से लेकर ११वीं, ई० तक दूसरा काल और १२वीं ई० से आधुनिक काल के टीका ग्रंथों का तीसरा काल माना जाता है। दूसरे काल में बुद्धघोष ने 'विनय-पिटक' पर 'समन्तपासादिका', 'पातिमोक्ख' पर 'कङ्खावितरणी', 'सुत्तपिटक' के 'दीघनिकाय' पर 'सुमंगलविलासिनी', 'मज्झिम निकाय' पर 'पपञ्च सूदनी', 'संयुत्त-निकाय' पर 'सारत्थपकासिनी', 'अंगुत्तरनिकाय' पर 'मनोरथपूरणी', 'खुद्दकनिकाय' संख्या १–५ पर 'परमत्थजोतिका', 'अभिधम्मपिटक' के 'धम्मसंगणि' पर 'अत्थसालिनी', 'विभंग' पर 'संमोहविनोदिनी' और अन्य संख्या ३,४,५,६,७ नामक ग्रंथों पर 'पञ्चप्पकरणट्ठकथा' टीका ग्रंथों की रचना की। 'जातकों' पर रचित टीका जातकट्ठवण्णना और धम्मपद पर धम्मपदट्ठकथा की रचनाएँ भी बुद्धघोष ने लिखीं यह निश्चित नहीं है।

बुद्धघोष के ही समकालीन 'बुद्धदत्त' ने बुद्धवंश की टीका 'मधुरत्थ-विलासिनी', 'विनय' पर 'विनयविनिच्चय' आदि के रचयिता माने जाते हैं। 'अभिधम्म' पर प्राचीनतम टीका आनंद कृत अभिधम्म मूल टीका मानी जाती है। धम्मपाल विशुद्धभाग, नेत्ति आदि के अतिरिक्त खुद्दक-निकाय के उन ग्रंथों के भी टीकाकार माने जाते हैं जिन पर बुद्धघोष ने टीकाएँ नहीं लिखी थीं और उनका टीका-ग्रंथ परमत्थदीपनी है। प्राचीन टीकाकारों ने 'सच्चसंखेप' के रचयिता 'चुल्ल धम्मपाल','निद्देस' की टीका 'सद्धम्मपजोतिका' के रचयिता 'उपसेन','पटिसंभिदामग्ग' की टीका 'सद्धम्मप्पकासिनी' के रचयिता 'महानाम', महाविच्छेदनी, विमति-छेदनी के रचयिता 'कस्सप', समन्तपासादिका की टीका 'वजिरबुद्धि' के रचयिता 'वजिरबुद्धि', 'अभिधम्मट्ठसंघ परमत्थविनिच्चय' आदि

के रचयिता 'अनुरुद्ध' आदि टीकाकारों का भी उल्लेख मिलता है। महानामकृत महावंस सिंहलद्वीप की बौद्धपरंपरा का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

तीसरे काल में १२वीं शताब्दी के लगभग सिंहलद्वीप के 'परक्कम-बाहु (प्रथम)' के शासन काल में कहा जाता है कि 'थेरमहाकस्सप' ने बुद्ध-घोष की अट्ठकथाओं का मागधभाषा में टीकाग्रंथ के रचना-हेतु एक सभा (Council) आमंत्रित की और 'समन्तपासादिका' पर 'सारत्थदीपनी', 'सुमंगलविलासिनी' पर 'पठमसारत्थमंजूसा', 'पपञ्चसूदनी' पर 'दुतिय-सारत्थमंजूसा', 'सारत्थपकासिनी' पर 'ततिय सारत्थमंजूसा', 'मनोरथ-पूरणी' पर 'चतुत्थ सारत्थमंजूसा', अट्ठसालिनी पर 'पठम परमत्थपका-सिनी', संमोहविनोदिनी पर 'दुतिय परमत्थपकासिनी', पंचप्पकरणट्ठ-कथा पर 'ततिय परमत्थपकासिनी' टीकाएँ लिखी गई। उक्त टीकाओं में सारिपुत्त की सारत्थदीपनी टीका सुरक्षित मिलती है। सारिपुत्त के शिष्यों में 'खुद्दसिक्खा टीका' के रचयिता 'संघरक्खित', कंखावितरणी की टीका विनयत्थमंजूसा के रचयिता 'बुद्धनाग', 'मूलसिक्ख' अभिनव-टीका आदि १८ ग्रंथों के रचयिता 'वाचिस्सर', अभिधम्मत्थविभावनी टीका के रचयिता सुमंगल आदि का भी उल्लेख मिलता है। इनके अतिरिक्त सारिपुत्त की शिष्य-मंडली में 'सद्धम्मजोतिपाल' का उल्लेख मिलता है जिन्होंने विनयपिटक पर विनयसमुत्थान-दीपनी, पाटिमोक्ख-विसोधनी, विनयगूढत्थदीपनी, 'अभिधम्म' पर प्रसिद्ध रचना 'अभि-धम्मत्थसंग्रसंखेप' टीका आदि ग्रन्थ लिखे। धम्मकित्ति का धातुवंश (१३ वीं शताब्दी) 'वाचिस्सर' का निदानकथा, समन्तपासादिका, महावंश के आधार पर रचित 'थूपवंश' टीका (१३वीं शताब्दी) 'बुद्ध-रक्खित' का 'जिनलंकार' (१७ वीं शताब्दी) रचनाएँ भी प्रसिद्ध हैं। सिंहल-द्वीप की बौद्ध-धर्म परंपरा की पूर्ण जानकारी के लिये 'महावंश' पर रचित टीका 'वंसत्थपकासिनी' का विशेष महत्व है। इसका रचना काल १२वीं शताब्दी माना जाता है परन्तु रचयिता का कुछ पता नहीं चलता।

'महावंश' की कथा का विस्तार 'चूलवंश' में मिलता है जिसमें सिंहलद्वीप के बाद का भी पूर्ण इतिहास संकलित किया गया है और इसके रचयिता 'थेर धम्मकित्ति' माने जाते हैं। १८ वीं शताब्दी के उत्तरकाल में, राजा कित्तिसिरि ने महावंश के तीसरे भाग में अपने समय तक की बौद्धिक परंपरा का उल्लेख कराया और महावंश के इसी भाग के अंत में सिंहलद्वीप में अंग्रेजों के आगमन का उल्लेख भी मिलता है।

१३ वीं और १४ वीं शताब्दी में सिद्धत्थ रचित सारसंघ, धम्मकित्ति 'महासामिन रचित' सद्धम्मसंघ, मेधंकर-कृत लोकप्पदीपसार, 'महामंगल' रचित बुद्धघोसुप्पत्ति आदि प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। १५ वीं शताब्दी और उसके अनंतर के ब्रह्मी भिक्षुओं की अभिधम्म पर लिखी रचनाएँ प्रमुख रूप में मिलती हैं। 'अरियवंश' रचित मणिसारमंजूसा, मणिदीप, ज़ातकविसोधन, 'सद्धम्मपालसिरि' रचित नेत्ति-भावनी, सीलवंस रचित बुद्धालंकार आदि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। १६ वीं शताब्दी में 'सद्धम्मालंकार' रचित पट्ठानदीपनी, 'महानाम' कृत मूल टीका पर रचित मधुसारत्थ दीपनी आदि १७ वीं शताब्दी में 'तिपिटकालंकार' रचित वीसतिवण्णना, यसवड्ढनवत्थु, विनयलंकार, 'तिलोकगुरु' रचित धातुकथाटीकवण्णना, धातुकथा अनुटीकावण्णना, यमकवण्णना, पट्ठानवण्णना, 'महाकस्सप' रचित अभिधम्मत्थगण्ठिपद आदि, १८ वीं शताब्दी में 'ञाणाभिवंस कृत' नेत्ति पर रचित टीका पेटकालंकार, राजाधिराज विलासिनी आदि रचनाएँ प्रसिद्ध हैं।

१८ वीं शताब्दी की रचनाओं में नलाटधातुवंस, छकेसधातुवंस, संदेसकथा, सीमाविवादविनिच्चयकथा, गंधवंस जिसमें ब्रह्मा की बौद्धिक रचनाओं और रचनाकारों, तीनों बौद्ध महासम्मेलनों में महाकच्चायन के अतिरिक्त बुद्धवचन के संग्रहकर्ताओं आदि का उल्लेख दिया गया है, पञ्ञसामी कृत सासनवंस जिसमें भारत तथा अन्य देशों में बौद्धधर्म के प्रचार और विस्तार का वर्णन है, आदि रचनाएँ महत्त्वपूर्ण हैं।

पालि का व्याकरण-साहित्य भी संपन्न है। व्याकरणिक रचनाओं को तीन समूह में बांटा गया है। पहले समूह के 'कच्चायन-शाखा' की कच्चायन-व्याकरण और उसकी टीका वालावतार, रूपसिद्धि आदि, दूसरे समूह में 'मोग्गल्लान व्याकरण', पयोगसिद्धि, पद-साधना आदि, तीसरे समूह में 'सद्दनीति', चुल्लसद्दनीति आदि रचनाएँ मुख्य हैं। 'कच्चायन शाखा' के ग्रंथों में न्यास-टीका, सुत्तनिद्देस-टीका, वाक्य-रचना पर लिखित संबंधचिन्ता ग्रंथ 'सद्धम्मसिरि' कृत सदत्थभेद-चिन्ता, संधिकप्प, कच्चायनवण्णना आदि रचनाओं का उल्लेख मिलता है। 'मोग्गल्लान शाखा' में उक्त रचनाओं के अतिरिक्त मोग्गल्लान-पंचिकापदीप जो मोग्गल्लान की पंचिका की टीका है, प्रसिद्ध रचना है। कच्चायन शाखा की अपेक्षा इस शाखा का अधिक महत्व माना गया है। तीसरी शाखा सद्दनीति के रचयिता 'अग्गवंस' की रचना सिंहल-द्वीप का महत्वपूर्ण व्याकरण-ग्रंथ माना जाता है। आर० ओ० फ्रैंक ने स्पष्ट किया है कि उक्त रचना कच्चायन-शाखा से संबंधित है। सद्दनीति का प्रथम अठारह अध्याय महासद्दनीति और १९ से २७ अध्याय चुल्ल-सद्दनीति कहलाता है। उक्त रचना मोग्गल्लान-शाखा के पूर्व की मानी गई है।

संस्कृत-अमरकोष के सदृश पालि शब्द-कोषों की प्राचीन रचना प्रसिद्ध वय्याकरण से भिन्न मोग्गल्लान कृत अभिधम्मपदीपिका है। आचार्य नरेन्द्रदेव कृत अभिधम्मकोष का पहले उल्लेख किया ही जा चुका है। शब्द-धातु संबंधी रचनाओं में धातु-मंजूसा, धातुपाठ, धात्वत्थदीपनी आदि मुख्य हैं। पालि काव्य-शास्त्र सम्बंधी रचनाओं में अलंकार पर 'संघरक्खित' कृत सुबोधालंकार, छंद पर 'वुत्तोदय' आदि प्रसिद्ध ग्रंथ हैं।

साहित्यिक प्राकृतें—माहाराष्ट्री प्राकृत

साहित्यिक प्राकृतों के अन्तर्गत माहाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी,

अर्धमागधी, पैशाची की गणना की जाती है। माहाराष्ट्री 'स्टैंडर्ड' प्राकृत मानी जाती है। ध्वनिपरिवर्तन की दृष्टि से माहाराष्ट्री सब से बढ़कर है। इसका मूल विस्तार माहाराष्ट्र प्रदेश में हुआ और बाद में इसका प्रयोग। अन्य क्षेत्रों में भी होने लगा। प्राकृत वय्याकरणों ने माहाराष्ट्री को ही मूल मान कर उसका विस्तार से वर्णन किया है और अन्य प्राकृतों को उसी-प्राकृत के सदृश बताकर कुछ भिन्न विशेषताएँ अलग-अलग दे दी हैं। माहाराष्ट्री प्राकृत में स्वरमध्यवर्ती व्यंजन का लोप अत्यधिक हुआ है। इसीलिये शब्दों में संयुक्त स्वर के व्यापक प्रयोग मिलते हैं और स्वरों की इसी अधिकता के कारण माहाराष्ट्री का प्रयोग गीत-काव्य के लिये व्यापक हो गया।

पहले कहा जा चुका है कि संस्कृत नाटकों के गीत माहाराष्ट्री प्राकृत में मिलते हैं और प्राकृत-गद्य शौरसेनी एवं मागधी और उनकी विभाषाओं में मिलता है। माहाराष्ट्री के गीतिकाव्य के ग्रंथों में 'हाल' रचित 'गाहा-सत्तसई' सब से प्रसिद्ध रचना है। गाहासत्तसई किसी एक कवि की रचना न होकर अनेक कवियों के गीतों का संग्रहीत रूप माना जाता है। सत्तसई पर लिखी टीकाओं में उन कवियों के नामों के उल्लेख भी मिलते हैं। टीकाकारों ने ११२ नामों से लेकर ३८४ नाम तक दिये हैं और प्रत्येक कवि के द्वारा रचित गीतों में भी पर्याप्त मतभेद मिलता है। इनका रचनाकाल ३०० ई० से लेकर ७०० ई० तक माना गया है। सत्तसई का अंग्रेजी में १—३७० छंदों का प्रथम प्रकाशन वेबर के द्वारा १८७० ई० में 'सप्तशतकम्' के नाम से किया गया इसके अनंतर १८८१ ई० में उसका अनुवाद जर्मन-भाषा में हुआ। वेबर ने अंग्रेजी के प्रकाशन में भुवनपाल की टीका का उल्लेख किया है। तदनन्तर दुर्गाप्रसाद, काशिनाथ पांडुरंग द्वारा गाथा-सप्तशती तथा उस पर गंगाधर भट्ट की टीका १८८६ ई० में प्रकाशित हुई। वेबर ने इसका प्रारंभिक संग्रह-काल ३०० ई० दिया है परन्तु उसे ७०० ई० के पूर्व माना है। यह अनुमान किया जाता है कि सत्तसई के प्रत्येक छंद में कवि के नाम की छाप थी जिसका कालान्तर में लोप हो गया।

पिशेल ने इसके रचयिता को हाल अथवा सातवाहन माना है। राजशेखर की कर्पूरमंजरी में हरिउढ्ढ (हरिवृद्ध), पोट्टिस आदि कवियों का उल्लेख आया है। इसके अतिरिक्त नंदिउढ्ढ (नंदिवृद्ध), हाल, पालित्तअ, चम्पअराअ, मलअसेहर (मलयशेखर) का भी उल्लेख मिलता है। भुवनपाल ने इनमें से 'पालित्तअ' को दस छंदों का रचयिता लिखा है। यह 'पालित्तअ' वेबर द्वारा उल्लिखित 'पादलिप्ताचार्य हैं जिनको हेमचन्द्र ने एक देशी-शास्त्र का रचयिता माना है। भुवनपाल के अनुसार सत्तसई के २२०-३६९ छंदों के रचयिता देवराज हैं जिसका उल्लेख हेमचंद्र के 'देशी-नाममाला' में हुआ है। सत्तसई के कुछ छंदों का रचयिता अभिमान चिन्ह को भी बताया जाता है।

माहाराष्ट्री प्राकृत का दूसरा महत्वपूर्ण संग्रह-ग्रंथ 'जयवल्लभ' रचित 'वज्जालग्गं' है। वज्जलग्गं के एक छन्द से स्पष्ट होता है कि विविध कवियों के द्वारा विरचित कविताओं का संग्रह जयवल्लभ ने किया—

विविहकइविरइयाणं गाहाणं वरकुलाणि घेत्तूण
रइयं वज्जालग्गं विहिणा जयवल्लहं नाम ॥

जयवल्लभ श्वेतांवर जैन थे। उक्त ग्रंथ के ४८ परिच्छेदों में ७९५ छंदों का संग्रह मिलता है। इसके कुछ छंद सत्तसई से साम्य रखते हैं। इस संग्रह की संस्कृत छाया १३३६ ई० में रत्नदेव के द्वारा लिखी मिलती है। वज्जालग्गं के ६७ छंद वेबर द्वारा प्रकाशित सत्तसई के परिशिष्ट भाग में, हेमचन्द्र की 'दशरूप' की टीका में, 'काव्य-प्रकाश', 'साहित्य-दर्पण' में मिलते हैं। ३२ छंद सत्तसई के अन्य विभिन्न संग्रहों से प्राप्त होते हैं। शेष २५ छंद ध्वन्यालोक, रुय्यक के 'अलंकार-सर्वस्व' जयरथ के 'अलंकार-विमर्शिनी', सोमेश्वर के 'काव्यादर्श,' 'जयंत' के 'काव्य प्रकाश दीपिका', 'अलंकार-रत्नाकर' आदि काव्य-शास्त्र के ग्रंथों में मिलते हैं। इनमें से कई छंदों का उल्लेख 'आनंदवर्धना-चार्य' ने 'ध्वन्यालोक' के 'विषमवाणलीला' काव्य में किया है। इन छंदों का कुछ संग्रह भोजदेव कृत 'सरस्वती-कंठाभरण' में भी

मिलता है। 'कालिदास', 'श्री हर्ष', 'राजशेखर' आदि अन्य कवियों की रचनाओं में भी इन गीतों के प्रयोग हुए हैं। 'सर्वसेन' रचित 'हरिविजय' और वाक्पतिराज के 'महुमहविअअ' से इन गीतों को लिया गया है। माहाराष्ट्री प्राकृत न केवल गीति-काव्य की ही भाषा थी वरन् प्रबन्ध अथवा महाकाव्य की रचना की दृष्टि से भी वह सम्पन्न भाषा थी। इनसे प्रवरसेन रचित 'रावणवहो' अथवा 'दहमुहवहो' और इसका संस्कृत अनुवाद 'सेतुबन्ध' एवं वप्पइराअ रचित गउडवहो मुख्य हैं। रावणवहो बाण के समय में सातवीं शताब्दी में अत्यधिक प्रसिद्ध रचना थी क्योंकि बाण ने 'हर्षचरित' की भूमिका में इसका उल्लेख किया है। दण्डी ने 'काव्यादर्श' में बाण से भी पूर्व उक्त काव्य का उल्लेख किया है। इससे यह रचना हर्ष से भी पूर्व की सिद्ध होती है। इस काव्य के रचयिता प्रवरसेन को काश्मीर के महाराज प्रवरसेन (द्वितीय) माना जाता है। रावणवहो के तीन प्रकाशन हुए और चौथा प्रकाशन संस्कृत भाषा में 'सेतुसरणि' के नाम से मिलता है। अकबरकालीन रामदास ने इस काव्य की टीका लिखी परन्तु वह त्रुटिपूर्ण मानी गई है। पॉल गोल्ड शिमिट ने १८७३ ई० में इसका संपादन १५ आश्वासों में किया। जर्मन भाषा में संपूर्ण ग्रन्थ का प्रकाशन स्ट्रेस्बर्ग (Strassburg) के द्वारा १८८३ ई० में हुआ। उक्त महाकाव्य का एक नवीन संस्करण पूर्व उल्लिखित रामदास की टीका तथा अन्य प्रकाशनों को दृष्टि में रखकर 'शिवदत्त तथा परब' द्वारा संपादित हुआ।

माहाराष्ट्री प्राकृत के दूसरे महाकाव्य 'गउडवहो' के रचयिता जैसा पहले कहा जा चुका है, 'वप्पइराअ' हैं। 'वप्पइराअ अथवा वाक्पतिराज कन्नौज के राजा यशोवर्मन के आश्रित कवि थे। इसका उल्लेख कवि ने छंदसंख्या ७९९ में किया है। इसमें भवभूति, भास, ज्वलनमित्र, कान्तिदेव, कालिदास, सुबन्धु, हरिश्चन्द्र आदि का भी उल्लेख मिलता है। अन्य महाकाव्यों से भिन्न गउडवहो १२०९ आर्याछंदों में लिखा हुआ महाकाव्य है। इसके कई संस्करण मिलते हैं जो छन्द-क्रम

पिशेल ने इसके रचयिता को हाल अथवा सातवाहन माना है। राजशेखर की कर्पूरमंजरी में हरिउढ्ढ (हरिवृद्ध), पोट्टिस आदि कवियों का उल्लेख आया है। इसके अतिरिक्त नंदिउढ्ढ (नंदिवृद्ध), हाल, पालित्तअ, चम्पअराअ, मलअसेहर (मलयशेखर) का भी उल्लेख मिलता है। भुवनपाल ने इनमें से 'पालित्तअ' को दस छंदों का रचयिता लिखा है। यह 'पालित्तअ' वेबर द्वारा उल्लिखित 'पादलिप्ताचार्य हैं जिनको हेमचन्द्र ने एक देशी-शास्त्र का रचयिता माना है। भुवनपाल के अनुसार सत्तसई के २२०-३६९ छंदों के रचयिता देवराज हैं जिसका उल्लेख हेमचंद्र के 'देशी-नाममाला' में हुआ है। सत्तसई के कुछ छंदों का रचयिता अभिमान चिन्ह को भी बताया जाता है।

माहाराष्ट्री प्राकृत का दूसरा महत्वपूर्ण संग्रह-ग्रंथ 'जयवल्लभ' रचित 'वज्जालग्गं' है। वज्जलग्गं के एक छन्द से स्पष्ट होता है कि विविध कवियों के द्वारा विरचित कविताओं का संग्रह जयवल्लभ ने किया—

विविहकइविरइयाणं गाहाणं वरकुलाणि घेत्तूण
रइयं वज्जालग्गं विहिणा जयवल्लहं नाम॥

जयवल्लभ श्वेतांबर जैन थे। उक्त ग्रंथ के ४८ परिच्छेदों में ७९५ छंदों का संग्रह मिलता है। इसके कुछ छंद सत्तसई से साम्य रखते हैं। इस संग्रह की संस्कृत छाया १३३६ ई० में रत्नदेव के द्वारा लिखी मिलती है। वज्जालग्गं के ६७ छंद वेबर द्वारा प्रकाशित सत्तसई के परिशिष्ट भाग में, हेमचन्द्र की 'दशरूप' की टीका में, 'काव्य-प्रकाश', 'साहित्य-दर्पण' में मिलते हैं। ३२ छंद सत्तसई के अन्य विभिन्न संग्रहों से प्राप्त होते हैं। शेष ३५ छंद ध्वन्यालोक, रुय्यक के 'अलंकार-सर्वस्व' जयरथ के 'अलंकार-विमर्शिनी', सोमेश्वर के 'काव्यादर्श,' 'जयंत' के 'काव्य प्रकाश दीपिका', 'अलंकार-रत्नाकर' आदि काव्य-शास्त्र के ग्रंथों में मिलते हैं। इनमें से कई छंदों का उल्लेख 'आनंदवर्धना-चार्य' ने 'ध्वन्यालोक' के 'विषमवाणलीला' काव्य में किया है। इन छंदों का कुछ संग्रह भोजदेव कृत 'सरस्वती-कंठाभरण' में भी

मिलता है। 'कालिदास', 'श्री हर्ष', 'राजशेखर' आदि अन्य कवियों की रचनाओं में भी इन गीतों के प्रयोग हुए हैं। 'सर्वसेन' रचित 'हरिविजय' और वाक्पतिराज के 'महुमहविअअ' से इन गीतों को लिया गया है। माहाराष्ट्री प्राकृत न केवल गीति-काव्य की ही भाषा थी वरन् प्रबन्ध अथवा महाकाव्य की रचना की दृष्टि से भी वह सम्पन्न भाषा थी। इनसे प्रवरसेन रचित 'रावणवहो' अथवा 'दहमुहवहो' और इसका संस्कृत अनुवाद 'सेतुबन्ध' एवं वप्पइराअ रचित गउडवहो मुख्य हैं। रावणवहो बाण के समय में सातवीं शताब्दी में अत्यधिक प्रसिद्ध रचना थी क्योंकि बाण ने 'हर्षचरित' की भूमिका में इसका उल्लेख किया है। दण्डी ने 'काव्यादर्श' में बाण से भी पूर्व उक्त काव्य का उल्लेख किया है। इससे यह रचना हर्ष से भी पूर्व की सिद्ध होती है। इस काव्य के रचयिता प्रवरसेन को काश्मीर के महाराज प्रवरसेन (द्वितीय) माना जाता है। रावणवहो के तीन प्रकाशन हुए और चौथा प्रकाशन संस्कृत भाषा में 'सेतुसरणि' के नाम से मिलता है। अकबरकालीन रामदास ने इस काव्य की टीका लिखी परन्तु वह त्रुटिपूर्ण मानी गई है। पॉल कोल्ड शिमिट ने १८७३ ई० में इसका संपादन १५ आश्वासों में किया। जर्मन भाषा में संपूर्ण ग्रन्थ का प्रकाशन स्ट्रेसबर्ग (Strassburg) के द्वारा १८८३ ई० में हुआ। उक्त महाकाव्य का एक नवीन संस्करण पूर्व उल्लिखित रामदास की टीका तथा अन्य प्रकाशनों को दृष्टि में रखकर 'शिवदत्त तथा परब' द्वारा संपादित हुआ।

माहाराष्ट्री प्राकृत के दूसरे महाकाव्य 'गउडवहो' के रचयिता जैसा पहले कहा जा चुका है, 'वप्पइराअ' हैं। 'वप्पइराअ अथवा वाक्पतिराज कन्नौज के राजा यशोवर्मन के आश्रित कवि थे। इसका उल्लेख कवि ने छंदसंख्या ७९९ में किया है। इसमें भवभूति, भास, ज्वलनमित्र, कान्तिदेव, कालिदास, सुबन्धु, हरिश्चन्द्र आदि का भी उल्लेख मिलता है। अन्य महाकाव्यों से भिन्न गउडवहो १२०९ आर्याछंदों में लिखा हुआ महाकाव्य है। इसके कई संस्करण मिलते हैं जो छन्द-क्रम

तथा संख्या की दृष्टि से एक दूसरे से कुछ भिन्न है। हरिपाल की टीका मे केवल तीन प्रधान प्रकरण आये है। इसलिये वह 'गउडवधसार-टीका' कहलाता है। ग्रंथ हरिपाल तथा शंकर पांडुरंग पण्डित द्वारा संपादित किया गया है। वाक्‌पतिराज की दूसरी रचना 'महुमह-विग्रग्र' का उल्लेख पहले हो चुका है। इसके एक छन्द का उल्लेख अभिनवगुप्ताचार्य के ध्वन्यालोक और दो का सरस्वती कंठाभरण मे मिलता हे तथा अन्य काव्य-शास्त्र के ग्रंथो मे मिलती है। जैन हस्तलिखित प्रतियो मे ही उपलब्ध होने के कारण इसका उल्लेख भुवनपाल की टीका मे भी मिलता है। माहाराष्ट्री प्राकृत की एक काव्य-रचना रामपाणिवाद रचित कंसवहो है जिसका प्रकाशन डॉ० ए० एन्० उपाध्ये, ने १६४० ई० मे किया है। चूँकि महाराष्ट्री प्राकृत का व्यापक प्रयोग गीति-काव्य अथवा महाकाव्य के लिये होता था इसलिये यह स्वाभाविक है कि अनेक रचनाएँ उक्त भाषा मे लिखी गई होगी परन्तु या वे काल-कवलित हो गई या अभी तक उनकी खोज नहीं हो सकी है। यद्यपि माहाराष्ट्री का काव्य-साहित्य काफी भरा-पूरा होना चाहिये क्योंक अपने काल की वह व्यापक भाषा थी।

'हरमन जकोवी' (Hermann Jacobi) ने कुछ बुद्ध, जैन ग्रंथों की भाषा जैन माहाराष्ट्री और जैन शौरसेनी के नाम से दी है। माहाराष्ट्री प्राकृत मे काव्य ग्रंथो का उल्लेख तो ऊपर किया गया परन्तु गद्य रूप मे उसका प्रयोग श्वेतांबर जैन के धार्मिक साहित्य मे हुआ है। इनमे अधिकांशत: कहानियो का संग्रह हे। सबसे अधिक महत्वपूर्ण संग्रह 'आवश्यक' ग्रंथ मे मिलता है। दूसरी-तीसरी शताब्दी मे 'विमलसूरि' रचित 'पउमचरिय' की भी यही भाषा है। इस भाषा का प्राचीनतर रूप कुछ चूर्निको, कथानको, और संवदास के 'वासुदेवहिण्डि' मे मिलता है। इस भाषा मे 'निज्जुत्तियों' का आर्या छन्दो मे संक्षिप्त महत्वपूर्ण व्याख्याएँ मिलती हैं। है। सन् १३२६-१३३१ के बीच 'जिनप्रभुसूरि' रचित 'तीर्थ कल्प'

में उक्त भाषा के नमूने मिलते हैं। आठवीं शताब्दी में हरिभद्र ने 'समरैच्चकहा' के पद्य-भाग में जैन माहाराष्ट्री का प्रयोग किया है। धर्मदास का 'उवएसमाला' में जैन माहाराष्ट्री के ही एक रूप का प्रयोग किया गया है। ८६१ ई० में घटयाल 'जोधपुर' में उपलब्ध कक्कुक सरदार द्वारा एक जैन मन्दिर की स्थापना संबंधी शिलालेख में भी उक्त भाषा का प्रयोग है। 'कालकाचार्य-कथानक', 'ऋषभपञ्चाशिका', 'द्वारावती' आदि रचनाएँ भी जैन माहाराष्ट्री की उदाहरण हैं। इस प्रकार दूसरी-तीसरी शताब्दी से लेकर लगभग चौदहवीं शताब्दी तक उक्त भाषा का जैन ग्रंथों में प्रयोग बराबर किया जाता रहा।

शौरसेनी प्राकृत

शौरसेनी प्राकृत के स्वतंत्र ग्रंथ अभी तक उपलब्ध नहीं हो सके हैं। संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त गद्य-भाषा अधिकांशतः शौरसेनी ही है जिसका निर्देश पहले हो चुका है। यह सूरसेन जनपद की भाषा थी जिसकी राजधानी मथुरा थी। नाट्य-शास्त्र के अनुसार नाटक की नायिका और उसकी सहेलियों, साहित्यदर्पण के अनुसार उच्चवर्ग की स्त्रियों, दश-रूप के अनुसार स्त्रियों की यह भाषा है। इसके अतिरिक्त ऊँची स्थिति की दासियों, बालक, नपुंसक आदि द्वारा भी शौरसेनी का प्रयोग मिलता है। भरत, विश्वनाथ और पृथ्वीधर के अनुसार विदूषकों की भी यही भाषा थी परन्तु मार्कण्डेय ने विदूषकों की भाषा प्राच्य स्थिर की है। मार्कण्डेय ने भरत का उल्लेख करते हुए 'प्राच्य' की उत्पत्ति शौरसेनी से दी है—प्राच्याः सिद्धिः शौरसेन्याः। विदूषक द्वारा 'ही-ही-भो' के प्रयोग को हेमचन्द्र ने शौरसेनी से संबंधित किया है जैसा इस कथन से स्पष्ट है—"हीही विदूषकस्य, ही माणहे विस्मय निर्वेदे।" वररुचि ने शौरसेनी का मूल आधार संस्कृत भाषा दी है। उसने २६ नियमों का भी उल्लेख किया है जो भाषा के समझने में सहायक हो सकते हैं और भाषा के

मों को माहाराष्ट्री के सदृश लिखा है। प्रायः संस्कृत नाटकों
रण भाषा की दृष्टि से भ्रष्ट रूप में मिलते हैं। मालती-
मुद्राराक्षस, मालविकाग्निमित्र आदि के ऐसे ही संस्करण
हैं। मालविकाग्नि के संस्करण का पाठ अपेक्षाकृत शुद्ध
पिशेल ने भाषा की विशेषताओं के लिये इसी को आधार
है। कुछ संस्करणों में तो एक ही वाक्य में कई प्राकृत भाषाओं
श्रित रूप मिलता है। कालेयकुतूहल के—'भो किं ति तुये
दो हगे मम्खु एण्हिम्,—में 'हक्कारिदो'-शौरसेनी, 'हगे'-मागधी,
'एण्हिम्' माहाराष्ट्री है। एक ही छन्द में मुकुन्दानन्द भाण
०. कदुअ और माहा० काऊण का एक साथ प्रयोग किया
भव है यह संस्करणों के पाठभेद के कारण हो या भाषा के ये
वेक प्रयोग हों। सोमदेव, राजशेखर तथा केनो (Konow)
पादित कर्पूरमंजरी में यह अन्तर पाठभेद के कारण नहीं है
वही प्रयोग बाल-रामायण और विद्धशालभञ्जिका में भी
हैं। शाकुंतलम् और विक्रमोर्वशी के पाठ में ऐसा ही अन्तर
है परन्तु इनके होते हुए भी उनमें शौरसेनी का रूप अलग
जा सकता है।

शौरसेनी प्राकृत की स्वतंत्र रचनाएँ तो उपलब्ध नहीं होतीं
जैन शौरसेनी में दिगंबर संप्रदाय के ग्रंथ उपलब्ध होते हैं।
ो अर्धमागधी ही जैन ग्रंथों की मुख्य भाषा है परन्तु दिगंबर संप्रदाय
छ रचनाओं में शौरसेनी की अधिकांश विशेषताएँ उपलब्ध
हैं इसीलिये उसे जैन शौरसेनी भाषा का रूप माना गया है।
युरोपीय विद्वानों ने इसे दिगंबरी आदि नामों से दिया है जो
ठीक नहीं जान पड़ता। प्रथम शताब्दी में 'कुन्कुन्दाचार्य' रचित
णसार' जैन-शौरसेनी की प्रारंभिक प्रसिद्ध रचना है। कुन्दकुन्दा-
की प्रायः सभी रचनाएँ इसी भाषा में हैं। इसके अतिरिक्त
चार्य रचित मूलाचार, 'कार्तिकेय स्वामी' रचित 'कत्तिगेयाणुपेक्खा'

आदि तथा कुन्कुन्दाचार्य की 'छप्पा हुड़', 'समयसार', 'पञ्चस्थिकाय' रचनाएँ जैन शौरसेनी में ही उपलब्ध होती हैं। परन्तु प्रामाणिक ग्रंथों एवं हस्तलिखित प्रतियों के प्राप्त न होने से उक्त भाषा के महत्व और भारतीय आर्य भाषाओं के विकास में उसकी उपयोगिता का ठीक-ठीक निर्धारण नहीं हो पाता। परन्तु पिशेल का अनुमान कि इस भाषा का विकास दक्षिण भारत में हुआ होगा, ठीक जान पड़ता है क्योंकि उत्तर भारत में प्रचलित अन्य प्राकृतों की देशी विशेषताएँ उसमें उपलब्ध नहीं होतीं। संभव है अधिक रचनाओं के उपलब्ध होने से उक्त भाषा पर अधिक प्रकाश पड़ सके।

मागधी प्राकृत

नाटकीय प्राकृतों के प्रसंग में मागधी प्राकृत का वर्णन पहले हो चुका है। शौरसेनी के सदृश ही मागधी प्राकृत में भी कोई स्वतंत्र रचना उपलब्ध नहीं होती, केवल नाटकों में ही उसका प्रयोग विभिन्न विभाषाओं-सहित मिलता है, जिसका उल्लेख विस्तारपूर्वक पहले हो चुका है। प्रायः मागधी और अर्धमागधी में पाश्चात्य विद्वानों तथा जैन और बौद्ध धर्मावलम्बियों ने अधिक पार्थक्य नहीं रखा है। कोलब्रुक ने जैन संप्रदाय की भाषा मागधी दी है और उनके अनुसार यह काव्य और नाटक की भाषा से भिन्न थी और इसका विकास संस्कृत के आधार पर 'पालि' के सदृश ही है। 'लेसेन' के अनुसार वह माहाराष्ट्री से मिलती है। 'होफर' के अनुसार जैन ग्रंथों की भाषा साधारण प्राकृत से कुछ नहीं मिलती फिर भी वह साधारण प्राकृत से बिल्कुल भिन्न नहीं है। जकोबी के अनुसार उसकी भाषा प्राचीन माहाराष्ट्री कही जा सकती है और वह पालि के सदृश ही है तथा वह पालि की अपेक्षा पूर्वतर भाषा है। वेबर ने अर्धमागधी और माहाराष्ट्री को एक-दूसरे से संबंधित माना है और पालि से उसे अलग रखा है और जकोबी के अनुसार ही उसे पालि

से पूर्व की भाषा स्वीकार किया है। उसका संबंध माहाराष्ट्री की अपेक्षा उत्कीर्ण लेखों की प्राच्य समूह की भाषा से जोड़ा गया है। अर्धमागधी माहाराष्ट्री के पूर्वी क्षेत्र की भाषा कही गई है परन्तु देवर्दिधगणिन् के शासन में वल्लभि कौंसिल अथवा स्कन्दिलाचार्य की संरक्षा में मथुरा कौन्सिल से वह प्रभावित होकर पश्चिमी भाषा के सदृश जान पड़ती है। वल्लभि से उस पर माहाराष्ट्री का प्रभाव अधिक नहीं जान पड़ता क्योंकि अर्धमागधी के स्वरूप में कोई मूल परिवर्तन नहीं हुआ। माहाराष्ट्री से भिन्न विशेषताएँ अर्धमागधी में पर्याप्त मिलती हैं। जैसे तालव्य ध्वनियों के स्थान पर दन्त्य का प्रयोग, व्यजन-संधि का प्रयोग—विभक्तियों की भिन्नता—उदा०–चतुर्थी-त्ताए, तृतीया एक०–'सा',-सप्तमी एक०–'म्सि', क्रिया विभक्तियाँ-त्ताणम्,-त्ताण, याणम्, याण्। इन प्रयोगों से स्पष्ट हो जाता है कि जैन ग्रंथों की अर्धमागधी और माहाराष्ट्री प्राकृत परस्पर भिन्न भाषाएँ हैं। साहित्यिक रूप धारण करने पर अन्य प्राकृतों माहाराष्ट्री के सदृश उसमें व्यंजन का लोप मिलने लगता है जिससे उसके संबंध का भ्रम माहाराष्ट्री से हो जाता है परन्तु प्रथमा एक०—ए विभक्ति की विशेषता उसके पार्थक्य को बनाए रखती है।

अर्धमागधी प्राकृत

जैन ग्रंथों में अर्धमागधी अथवा 'आर्ष भाषा' का उल्लेख कई स्थलों पर मिलता है। इसका परिचय स्वयं महावीर स्वामी ने समवायंग सुत्त में इस प्रकार दिया है—

"भगवम् च णम् अद्धमागहीये भासाये धम्मम् आइक्खइ सा विय णम् अद्धमागही भासा भासिज्जमाणी तेसिं सव्वेसिं आरियाम् अणारियाणम् दुप्पय च उप्पय मिय पसु पक्खि सरी सिवाणम् अप्पप्पणो हियसि वमुहदाय सावेइयाम् सवतोवाचम् भासत्ताये परिणामइ।"

वाग्भटालंकार-तिलक में भी उसका इस प्रकार उल्लेख मिलता है—

सर्वाधमागधीम् सर्वभाषासु परिणमिनीय सविज्ञइम् प्रणिदध्महे।

महावीर स्वामी ने अर्धमागधी में ही अपने उपदेशों का प्रचार किया इसका उल्लेख **समवायंगसुत्त, ओववैयसुत्त** में हुआ है—**"तये णम् समणे भगवम् महावीरे अद्धभागहाये भाषाये भासइ।"**

अभयदेव ने 'उवासगदसाओ' और मलयगिरि ने 'सुरिय पण्णत्ति' इसी तथ्य का उल्लेख किया है। हेमचन्द्र के एक प्राचीन उद्धरण से भी स्पष्ट होता है कि प्राचीन जैन सूत्र अर्धमागधी में ही लिखे गये—

'पोराणम् अद्धमागह भाषा निययम्हवइ सुत्तम्' परन्तु मागधी के नियमों से ही अर्धमागधी सर्वत्र बद्ध नहीं है। दसवेआलिय सुत्त के एक कथन से यह स्पष्ट हो जाता है—'से तारि से दुक्खसहेजिइन्दिये'। मागधी में यही रूप इस प्रकार है—'शेतालिशे दुम्खशहे मिनिन्दिये'। इस प्रकार मागधी और अर्ध मागधी में भी काफी अंतर है। अभय-देव ने समवयांग सुत्त तथा उवासग दसाओ में इसे इस प्रकार स्पष्ट किया है—

"अर्धमागधी भाषा यस्यम् रसोर लशौ मागध्याम् इत्यादिकम् मागध भाषा लक्षणम् परिपूर्णम् नास्ति।"

अर्धमागधी प्राकृत के गद्य और पद्य रूपों में कुछ अन्तर मिलता है। अर्धमागधी के रूप में प्रथमा एक०—ए मिलता है परन्तु सूयगडांग-सुत्त, उत्तरज्झायण-सुत, दसवेयालिय सुत पद्य रचनाओं में प्रथमा एक०–ओ मिलता है। यही रूप माहाराष्ट्री से कुछ साम्य रखता है। क्रम्दीश्वर ने माहाराष्ट्री और अर्धमागधी मिश्रित एक तीसरे रूप का उल्लेख किया है। पालि में भी गद्य और पद्य दोनों के रूपों में कुछ अंतर मिलता है परन्तु दोनों को पालि नाम से ही कहा जाता है। इसी प्रकार जैन ग्रंथों की गद्य और पद्य की भाषा को समझना चाहिये। नाट्यशास्त्र में सात भाषाओं में अर्धमागधी के साथ मागधी, आवन्ती, प्राच्य, शौरसेनी, वाह्लीका, दाक्षिणात्या भाषाएँ दी हैं।

साहित्य-दर्पण में अर्धमागधी चेरों, राजपुत्रों, सेठों की भाषा कही गई है—"चेटानाम् राजपुत्राणाम् श्रेष्ठिनाम् चार्धमागधी।" मार्कण्डेय ने संस्कृत नाटकों में मागधी का ही प्रयोग माना है, अर्धमागधी का नहीं। परन्तु 'लेसेन' ने मुद्राराक्षस, प्रबोधचन्द्रोदय में क्षपणक, जीवसिद्धि, नाई और धूर्त पात्रों के द्वारा अर्धमागधी का प्रयोग माना है। टीकाकार ढुण्ढिराज ने इसे थोड़ा स्पष्ट किया है—'क्षपणको जैनाकृतः।' जीवसिद्धि की भाषा में—प्रथमा एक०—ए (कुविदे, इहगे, शावगे, भदन्ते), नपु० अद्दक्खिणे, णक्खत्ते, क>ग उदा०—शावगाणाम् आदि रूप मिलते हैं। परन्तु प्रामाणिक ग्रन्थों के अभाव में निश्चित रूप से उस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता।

भारतीय वय्याकरणों ने जैन ग्रंथों की भाषा को 'आर्ष' के नाम से भी कहा है। त्रिविक्रम ने आर्ष और देश्य दोनों का अपने व्याकरण में उल्लेख नहीं किया है क्योंकि वे सर्वसुलभ स्वाभाविक भाषाएँ थीं। वह संस्कृत के नियमों से बद्ध नहीं हैं, रूढ़ियाँ उनकी आधार हैं—'रूढ़त्वात्'। वह अपने नियमों का स्वतन्त्र रूप से विकास करती है—'स्वतन्त्र बाच् य भूयसा। तर्कवागीश ने दण्डी के काव्यादर्श के आधार पर प्राकृतों के दो भेद किये हैं। एक का विकास 'आर्ष' से हुआ और दूसरी 'आर्ष' के सदृश है—"आर्षोत्थम् आर्षतुल्यम् च द्विविधम् प्राकृतम् विदुः।" जैन धर्मावलम्बी अपनी धार्मिक रचनाओं की सर्वप्राचीनता और उस काल में सर्वजन सुलभ स्वाभाविकता के कारण ही उसे 'आर्ष' रूप में मानते हैं और उसे आर्यों और देवताओं की आदि भाषा भी कहते हैं—"प्राकृत अरिस वयणे सिद्धम्; देवाणम् अद्धमागहीवाणी।"

अर्धमागधी में जैन साहित्य की निम्नलिखित रचनाएँ उपलब्ध होती हैं—(१) 'अंग'—उनकी संख्या १२ है—आचार, सूयगड, ठाण, समवाय, विवाहपण्णत्ति, नायाधम्मकहाओ, उवासगदसाओ, अन्तगडदसाओ, अणुत्तरोववाइयदसाओ, पण्हावागरणाइं, विवागसुय, दिट्ठिवाय

(२) 'उपांग'-इनकी भी संख्या बारह है—उववैय, रायपसेणइज्ज, जीवाभिगम्, पन्नवणा, सूरपण्णत्ति, जम्बुद्दीवप्पण्णत्ति, चन्दपण्णत्ति, निरयावलियावो, कप्पवडिंसियाओ, पुप्फियाओ, पुप्फचूलाओ, वण्हिदसाओ। (३) 'पइण्ण'-इनकी संख्या दस है। इनमें कोई क्रम नहीं मिलता परंतु विषय के अनुसार इनका निम्नलिखित विभाजन मिलता है—चउसरण, भत्तपरिण्णा, संथार, आउरपच्चक्खाण, महापच्चक्खाण, चन्दाविज्झय, गणिविज्जा, तांदुलवेयालिय, देविन्दत्थय वीरत्थय। (४) 'छेयसुत्त'-ये छः हैं—आयारदसाओ, कप्प, ववहार, निसीह, महानिसीह, पंचकप्प। पंचकप्प के स्थान पर जिनभद्र ने 'जीयकप्प' का उल्लेख किया है। (५) नन्दी और अणुओगदारि स्वतन्त्र रचनाएँ हैं। (६) 'मूलसुत्त'—इनकी संख्या ४ है। उत्तरज्झाया अथवा उत्तरज्झयण, दसवेयालिय अवस्सयनिज्जुत्ति, छनिज्जुत्ति। उक्त रचनाओं में दिट्ठिवाय-अंग प्राप्त नहीं होता। उसके प्रसंगों के उल्लेख अन्य रचनाओं में मिलते हैं। इस प्रकार कुल ग्रंथों की संख्या ४५ है। परन्तु इनकी संख्या ४५-५० के बीच आँकी गई है।

श्वेतांबर जैनियों के अनुसार महावीर स्वामी के द्वारा अपने पहले शिष्यों-गणधरों को सर्वप्रथम दिया हुआ प्रारंभिक उपदेश १४ 'पुव्वों' में संग्रहीत था। चद्रगुप्त मौर्य के समय में जैन संप्रदाय का अध्यक्ष थेर भद्रबाहु था और निरंतर १२ वर्षों के अकाल के कारण वह दक्षिण भारत चला गया और स्थूलभद्र अन्तिम भिक्षु जिसको १४ पुव्वों का ज्ञान था, संप्रदाय का अध्यक्ष हुआ, परन्तु बाद में 'पुव्वों' का स्मरण रखने वाले जब प्रायः सभी भिक्षुओं का अंत होने लगा और उन रचनाओं के विनष्ट होने की पूर्ण संभावना थी तो पाटलिपुत्र में एक सम्मेलन बुलाया गया जिसमें ११ अंगों का संपादन किया गया और १४ 'पुव्वों' का अवशिष्ट रूप १२वें अंग 'दिट्ठिवाय' के नाम से संग्रहीत हुआ। तदनंतर पहले चले गये और यहीं रुके हुए जैनियों में फिर संघर्ष शुरू हुआ और पहले वाले अपनी 'वेश-भूषा' के कारण 'श्वेतांबर'

और बाद वाले 'दिगंबर' कहलाये। जैनमतावलंबियों का दूसरा सम्मेलन, पाँचवीं शताब्दी के अंत अथवा छठी शताब्दी के प्रारंभ में धार्मिक ग्रंथों का संग्रह और उनको लिपिबद्ध करने के लिये देवढिड् (देवर्धिगण क्षमाश्रमण) की अध्यक्षता में हुआ और तब तक १२वें अंग दिट्ठवाय का लोप हो चुका था। अतएव श्वेतांबर संप्रदाय के साहित्य की प्राचीनता ५०० ई० से पूर्व नहीं आंकी जाती। यह अवश्य है कि महावीर स्वामी के उपदेश ही इन रचनाओं के मुख्य आधार हैं। अश्वघोष के नाटकों में प्राप्त अर्धमागधी प्राकृत श्वेतांबर-जैन साहित्य की अपेक्षा प्राचीनतर कही गई है। वह ८०० ई० की भाषा है। इस समुदाय के लोगों का अनुमान है कि 'सुहम्म' ने महावीर स्वामी के उपदेशों को अंगों और उपांगों का संग्रह किया। कुछ रचनाएँ अन्य लोगों के द्वारा भी संग्रहीत मानी जाती हैं। उदाहरण के लिये चौथे उपांग 'पन्नवण' के संग्रहकर्ता 'अज्जसाम', पिंडनिज्जुत्ति के 'भद्रबाहु', दसवेयालिय के 'सेज्जंभव', नन्दी के 'देवडिढ' माने जाते हैं। वल्लभी-सम्मेलन के अनंतर अर्धमागधी प्राकृत सांप्रदायिक साहित्यिक भाषा नहीं रह गई थी। इसके बाद संस्कृत अथवा प्राकृतों से विकसित अपभ्रंश भाषा का प्रयोग किया जाने लगा था।

भाषा की दृष्टि से श्वेतांबर साहित्य में आयारंगसुत्त, समवायांग, उवासगदसाओ, विवागसुय, विवाहपण्णत्ति और सूयगडांगसुत्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। व्याकरण की दृष्टि से ओववैयसुत्त, निरयावलियाओ, चेदसुत उपयोगी हैं। उक्त ग्रंथों में शब्दों की पुनरुक्ति होने से उनके अशुद्ध रूपों का समाधान हो जाता है। इस प्रकार अर्धमागधी प्राकृत साहित्यिक भाषा की दृष्टि से अपना विशेष महत्व रखती है। स्टीवेन्सन ने 'कल्पसूत्र' में अर्धमागधी के सम्बन्ध में बहुत कम और कहीं-कहीं विशेषताओं का ठीक निरूपण नहीं किया है। होफर ने अपेक्षाकृत अधिक सूचना दी है। वेबर ने भगवती (विग्रह-पण्णत्ति) अंग में जैन-हस्तलिखित ग्रंथों की लिपि पर भाषा सम्बन्धी अन्य

विशेषताओं के साथ प्रकाश डाला है। जकोबी ने 'आयारंगसुत्त' में अर्धमागधी और पालि का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है। महाराष्ट्री प्राकृत के अनंतर अर्धमागधी प्राकृत का ही साहित्य सम्पन्न रूप में मिलता है और इसीलिये उपलब्ध साहित्य के आधार पर ही अर्धमागधी का व्याकरणिक अध्ययन भी संभव हो सका।

पैशाची प्राकृत

पैशाची प्राकृत एक प्राचीन विभाषा मानी जाती है। वररुचि ने प्राचीनतम प्राकृत व्याकरण में इसे पैशाची, क्रमदीश्वर ने वाग्भट्टालंकार में इसे पैशाचिक, नमिसाधु और उद्भट ने पैशाचिका और पैशाचिकी नाम से दिया है। हेमचन्द्र ने अपने प्राकृत व्याकरण में पैशाची के साथ चूलिका पैशाची का भी उल्लेख किया है। त्रिविक्रम और सिंहराज ने हेमचन्द्र के सदृश ही पैशाची की विभाषा चूलिका-पैशाची का उल्लेख किया है। प्राकृत-सर्वस्व में किसी अज्ञात लेखक ने पैशाची के ११ भेद दिये हैं जिसका उल्लेख इस कथन में मिलता है—
"काञ्चिदेशीय पाण्डेय च पाञ्चाल गौड़ मागधम् व्राचड़म् दाक्षिणात्यम् च शौरसेनम् च कैकयम् शावरम् द्राविड़म् चैव एकादश पिशाचिकाः।"
पुरुषोत्तम के अनुसरण पर मार्कण्डेय ने पैशाची के तीन भेद दिये हैं—कैकय पैशाचिक, शौरसेन पैशाचिक, और पांचाल पैशाचिक—जिसका उल्लेख इस प्रकार आया है—**"कैकयम् शौरसेनम् च पाञ्चालम् इति च त्रिधा। पैशाच्यो नागर यस्मात् तेनापि अन्या न लक्षिताः।"**
कैकेय पैशाचिक प्राचीन विभाषा है। मिश्रित संस्कृत और शौरसेनी का यह एक विकृत रूप है—"संस्कृत शौरसेन्योर् विकृतिः।" शौरसेन पैशाचिक स्टैंडर्ड विभाषा है और इसका सम्बन्ध मागधी से है। उदा०—
र् > ल्, ष्, स् > श्,-ल्,>-स्क्,-च्छ् >-श्च्, स्थ् > स्त्, ष्ट् >-स्ट्, अकारांत में प्रथमा एक० और द्वितीया एक० की विभक्तियों का वैकल्पिक रूप से लोप आदि इसकी कुछ विशेषताएँ हैं।

पांचाल पैशाची तथा उसके अन्य रूप अल्प भेद के साथ लोक-व्यवहार के लिये प्रचलित थे—"पाञ्चालादयः स्वल्पभेदा लोकतः।" इसकी प्रधान विशेषता ल > र का प्रयोग है—"लकारस्य रेफः।"

'लेमन' ने पैशाची के मागध, व्राचड़ और पैशाचिक भेद का उल्लेख किया है। 'लक्ष्मीधर' के अनुसार पैशाची नाम पिशाच प्रदेश के आधार पर पड़ा। महाभारत में पिशाच जाति का उल्लेख मिलता है। यहाँ पिशाच से आशय राक्षसवर्ग से है। प्राकृत-प्रकाश की टीका में वाग्भट्ट ने—'पिशाचानाम् भाषा पैशाची" का उल्लेख किया है। राक्षसवर्ग की भाषा होने के कारण 'काव्यादर्श', 'सरस्वती कंठाभरण', 'कथा सरित्सागर' में इसे भूत-भाषा, वाग्भट्टालंकार में भूतभाषित और बालरामायण में भूतवचन के नाम से कहा गया है। पिशेल के अनुसार पैशाची नाम पिशाच प्रदेश के रहनेवाले पिशाच जाति की भाषा के लिये पड़ गया। दशरूप के अनुसार निम्नवर्ग के लोग पैशाची का व्यवहार करते थे। भोजदेव ने 'सरस्वती' में उच्च-वर्ग के लोगों को पैशाची का प्रयोग करने के लिये निषेध किया है—"नात्युत्तम पात्र प्रयोज्या पैशाची शुद्धा।" सरस्वती-कंठाभरण के अनुसार उच्चवर्ग के लोगों के द्वारा पैशाची का संस्कृत मिश्रित रूप व्यवहृत होता था।

वररुचि ने पैशाची का आधार शौरसेनी प्राकृत दिया है। हेमचन्द्र ने ध्वनिसंबंधी विशेषताओं के कारण इसे संस्कृत, पालि और पल्लवग्रान्ट भाषाओं से संबंधित किया है। ग्रियर्सन के अनुसार पैशाची विभाषाओं का प्रभाव पालि के रूपों पर अत्यधिक इसलिये था कि प्राचीन काल में तक्षशिला बौद्ध विश्वविद्यालय उस क्षेत्र में स्थापित था जहाँ की भाषा केकेयी पैशाची थी और पालि पर पश्चिमोत्तर, दक्षिण भारत आदि की विभाषाओं का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। पैशाची में गुणाढ्य की प्रसिद्ध रचना 'बृहत्-कथा' का उल्लेख मिलता है परन्तु मूल ग्रंथ उपलब्ध नहीं होता, उसके अंश सोमदेव

विरचित कथा सरित्सागर और क्षेमेन्द्र विरचित 'बृहत्कथा-मञ्जरी में' मिलते हैं। जर्मन विद्वान् लुड्विग् अल्स्डोर्फ (Ludwig Alsdorf) ने बृहत्कथा का प्रभाव जैन-कथा साहित्य विशेष रूप से संघदास की वासुदेवहिण्डि पर सिद्ध किया है। हम्मीरमदमर्दन और मोहराजयराजय संस्कृत नाटकों में कुछ पात्रों की भाषा पैशाची है।

दण्डी ने भी गुणाढ्य की बृहत्कथा का उल्लेख किया है और इसका प्राचीन संस्कृतानुवाद बुद्धस्वामी विरचित बृहत्कथा श्लोक-संग्रह के नाम से मिलता है। जैन-ग्रंथ वासुदेवहिण्डि के अनुसार उक्त ग्रंथ का रचना काल ६०० ई० के पूर्व ही माना गया है। गुणाढ्य को सातवाहन का समकालीन भी कहा गया है। और यह समय १०० ई० का है। बुह्लर ने यही समय (१००-२०० ई०) बृहत्कथा की रचना का माना है। इस प्रकार १०० ई० से ६०० ई० के बीच किसी समय बृहत्कथा का रचनाकाल माना जा सकता है।

हार्नली के अनुसार पैशाची आर्य भाषा थी जिसका प्रयोग द्रविड़ लोग भी करते थे। सेनार्ट ने हार्नली के इस कथन को अस्वीकार किया है। दक्षिण भारत तथा पश्चिमोतर प्रदेश के कुछ शिलालेखों में पैशाची की विशेषताएँ अवश्य मिलती हैं। परन्तु यह आर्य भाषाओं पर ईरानी और द्राविड़ भाषाओं के प्रभाव के कारण संभव माना जा सकता है क्योंकि किसी भी आर्य भाषा में शाहावाजगढ़ी की शिलालेखी प्राकृत को छोड़ कर सघोष महाप्राण व्यंजन अघोष अल्पप्राण के रूप में नहीं मिलते। दर्दी, काफ़िर, जिप्सी में भी यह परिवर्तन मिलता है। इसलिये पैशाची का क्षेत्र पश्चिमोत्तर प्रदेश ही जान पड़ता है। परन्तु पैशाची केवल उसी प्रदेश में सीमित नहीं रही। पैशाची अपनी विभाषाओं सहित देश के मध्य प्रदेश तथा अन्य भागों में बोली जाती थी। पिशेल के अनुसार पैशाची अपनी विशेषताओं के कारण संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश के अतिरिक्त एक चौथे प्रकार की भाषा मानी जा सकती है। पहले कहा ही जा चुका है कि इसके

उदाहरण कथा-सरित्सागर, बृहत्कथा-मंजरी, बाल-रामायण, वाग्भट्टालंकार, हेमचन्द्र के ग्रंथ आदि में मिलते हैं। इसे ग्राम्य-भाषा के नाम से भी कहा गया है जिसमें वाग्भट्ट ने 'भीम काव्य' नामक रचना लिखी। पिशेल के अनुसार गौतम बुद्ध के निर्वाण के ११६ वर्ष बाद चार जातियों के स्थविरों ने चार विभिन्न भाषाओं में—संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पैशाची में अपने प्रवचन प्रस्तुत किये। वैभाषिक के चार प्रमुख संप्रदायों में एक ने पैशाची भाषा का प्रयोग किया। वय्याकरणों के द्वारा अल्प और अपर्याप्त सूचना होने के कारण और प्राचीन मूल ग्रंथ के उपलब्ध न होने से पैशाची भाषा के संबंध में विस्तृत विवेचन संभव नहीं हो सका है। केवल प्राकृत वय्याकरणों और संस्कृत काव्यशास्त्रियों के अल्प उल्लेखों और प्रसंगों पर ही संतोष करना पड़ता है। बाद के वय्याकरणों को तो भाषा संबंधी प्राचीन जानकारी भी संभव नहीं थी इसलिये उनके उल्लेख विरोधमूलक भी हैं।

अपभ्रंश

साहित्यिक प्राकृतों के अनंतर उनके समकक्ष ही प्रचलित लोक-व्यावहारिक भाषों का साहित्यिक रूप विविध अपभ्रंशों के नाम से प्रचलित हुआ। अपभ्रंश शब्द का आरंभिक प्रयोग संग्रहकार व्याडि के वार्तिक, दण्डी के काव्यादर्श तथा पतंजलि के महाभाष्य में मिलता है जिनमें संस्कृत को प्रकृति (मूल) और अपभ्रंश को उसका विकसित रूप अथवा विकृत शब्द के अर्थ में माना गया है। दंडी ने संस्कृत में अपभ्रंश शब्दों की स्वतंत्र सत्ता दी है। भाषा के अर्थ में भी अपभ्रंश का उल्लेख प्राचीन है। प्राकृत वय्याकरण चण्ड ने प्राकृत-लक्षण, भामह के काव्यालंकार, दण्डी के काव्यादर्श में अपभ्रंश भाषा का उल्लेख मिलता है और इनके भी पूर्व भरत कृत नाट्यशास्त्र में संस्कृत तथा देशी भाषा से भिन्न भाषा को 'विभ्रष्ट' अथवा आभीरोक्ति नाम से दिया गया है। रुद्रट ने काव्यालंकार में संस्कृत, प्राकृत के अनंतर लोकभाषा

अपभ्रंश के भेदों का उल्लेख किया है। फिर पुरुषोत्तमदेव ने प्राकृतानुशासन में तथा हेमचंद्र ने प्राकृत व्याकरण में अपभ्रंश को शिष्ट समाज की भी भाषा के रूप में दिया गया है।

अपभ्रंश का प्राचीनतम उल्लेख भरत के नाट्य-शास्त्र में मिलता है यद्यपि वह कुछ अस्पष्ट रूप में ही है। तदनंतर कालिदास के विक्रमोर्वशीय नाटक के चौथे अंक में अपभ्रंश के कुछ उदाहरण मिलते हैं। फिर पश्चिमी अपभ्रंश के ग्रंथ जैनमतावलम्बी जोइन्दु (योगीन्दु) रचित परमात्मप्रकाश और योगसार एवं पूर्वी अपभ्रंश का 'कण्ह दोहा-कोश माने जाते हैं। चौरासी सिद्धों में कण्ह या काण्हपा (कृष्णापाद) की गणना होती है। 'सावयधम्म दोहा' तथा मुनि रामसिंह रचित 'पाहुड़ दोहा' भी जैन धार्मिक रचनाएँ हैं। उक्त जैन ग्रंथों में वीर, शृंगार की भी फुटकर रचनाएँ भी उपलब्ध होती हैं जिनमें वीर और शृंगार के सभी पक्षों का सुंदर समन्वय हुआ है। अपभ्रंश रचनाएँ अधिकतर जैन-मत से संबंधित हैं परन्तु कुछ स्वतंत्र ग्रंथ भी मिलते हैं। सोमप्रभु रचित कुमारपाल-प्रतिबोध ११९५ ई० के लगभग की रचना मानी जाती है। प्रबंध-चिन्तामणि में जो ११ वीं. शताब्दी के लगभग की रचना मानी जाती है। जिसमें राजा मुंज का आख्यान अधिकांशतः वर्णित है और कुछ लोग मुंज को ही इसका रचयिता मानते हैं। अद्दहमाण (अब्दुलरहमान) का 'संनेस रास' (संदेश रासक) का समय भी १०१० ई० माना गया है जिसमें एक विरहिणी नायिका की उक्तियाँ संग्रहीत हैं और साथ में षट्ऋतुवर्णन भी मिलता है। उक्त मुक्तक रचनाओं के अतिरिक्त प्रबन्ध रचनाएँ भी अपभ्रंश भाषा में उपलब्ध होती हैं। स्वयंभू कृत रामायण 'पउमचरिउ' (पद्मचरित), पुष्पदंत कृत 'जसहर चरिउ' (यशोधर चरित), 'णायकुमार चरिउ' (नागकुमार चरित), 'महापुराण, कनकामर' कृत 'करकण्डु चरिउ' (करकंडु चरित), हरिभद्रकृत 'सनत्कुमार चरित', 'णेमिनाहचरिउ' (नेमिनाथ चरित), धनपाल कृत 'भविसयत्तकहा '(भविष्यदत्त कथा),

आदि ऐसी ही रचनाएँ हैं। इनमें कुछ खंड-काव्य हैं और कुछ महाकाव्य हैं। 'पउम-चरिउ', 'भविसयत्तकहा' उत्कृष्ट महाकाव्य ग्रंथ माने जाते हैं जिनमें तत्कालीन सामाजिक दशाओं का भरपूर चित्रण मिलता है।

अपभ्रंश भाषाओं में रचनाएँ छठी शताब्दी से लेकर लगभग १४वीं शताब्दी तक लिखी जाती रहीं। अतएव अपभ्रंश का साहित्य और अत्यधिक संपन्न होना चाहिये परन्तु अभी तक संपूर्ण रचनाओं के उपलब्ध न होने के कारण कुछ ही रचनाओं से संतोष करना पड़ता है और जो रचनाएँ मिल सकी हैं वे भी अनेक भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों के अथक परिश्रम की परिणाम हैं। संभव है भविष्य में अपभ्रंश की लुप्त सामग्री का और विशद अंश भी प्रकाश में आ सके।

दूसरा अध्याय

प्राकृत की सामान्य विशेषताएँ

प्राचीन आर्य भाषा-समूह की विशेषताएँ सदैव सुरक्षित नहीं रहीं। उनमें ध्वनि और पद संबंधी विशेषताओं का नये रूपों में विकास होना प्रारम्भ हुआ और ५००–६०० ई० पू० के लगभग से इन नवीन भाषाओं के उदाहरण निश्चित रूप से मिलने लगते हैं। प्राचीन आर्य भाषा की ध्वनि संबंधी विशेषताओं के अन्तर्गत—ऋ>-अ,-इ, -उ, और कभी-कभी इनमें 'र' ध्वनि भी सम्मिलित मिलती है। डॉ० सुकुमार सेन के अनुसार इनका विकास-ऋ >-अर् >-अर् >-अ, -ऋ >-इरि >-इर् >-इ,-ऋ >-उर > उर् > उ रूप में माना जा सकता है। ऋग्वेद में इस संबंध के कई उदाहरण मिलते हैं। उदा०—शृणोति<-श्रिणोति>-श्रुणोति, त्रीय-<त्रितीया-शृथिर>शिथिर आदि। संयुक्त स्वर ऐ, औ > क्रमशः ए, ओ का विकास हो गया। इस प्रकार का विकास प्रयत्न-लाघव के फलस्वरूप कहा जा सकता है। मूल स्वर ए,-ओ > क्रमशः इनके स्वरूप-ऍ,- ऑ मिलते हैं। व्यंजनों और संयुक्त व्यंजनों में भी काफी परिवर्तन हुआ। शब्द के स्वर मध्यवर्ती व्यंजनों,-क्, ख,ग्, घ्, त्, थ्, द्, ध्, प्, फ्, व्, भ् में अघोष व्यंजन सघोष रूप में और महाप्राण व्यंजन का विकास केवल-ह के रूप में तथा कुछ व्यंजनों का लोप मिलता है। शिलालेखी प्राकृत में प्राच्य और प्राच्य-मध्य समूह की भाषाओं में कुछ विकास लगभग १०० ई० पू०,

अशोकी प्राकृत में लगभग ३०० ई० पू० से मिलने लगता है परन्तु ४०० ई० तक उक्त ध्वनि संबंधी विशेषताओं का पूर्ण विकास हो जाता है। अघोष व्यंजन के सघोष और इस प्रकार विकसित महाप्राण व्यंजन का हकार रूप में परिवर्तित होने के बीच उनका ऊष्म संघर्षी रूप भी मिलता है। पश्चिमोत्तर तथा मध्यएशिया के भाषा समूहों में उक्त परिवर्तन के उदाहरण उपलब्ध होते हैं।

शब्द के अंत में व्यंजनों का प्रायः लोप मिलता है। अन्त्य अनुनासिक व्यंजन-न्,-म् प्रायः अनुस्वार के रूप में स्थिर मिलते हैं। विसर्ग का भी परिवर्तन हो जाता है। इसका शब्द के अन्त में–ओ,-ए अथवा समीकृत रूप हो जाता है। ऊष्म ध्वनियों-श, ष, स पश्चिमोत्तर समूह की प्राकृतों में कुछ काल तक तो सुरक्षित रहे। फिर इनका भी परिवर्तन 'श' अथवा 'स' रूप में हो जाता है। 'न' का विकास भी अधिकांशतः 'ण' के रूप में मिलता है। परन्तु-न और-ण का अंतर बहुत कुछ लिपि-विशेषता के कारण भी माना गया है। ध्वनि परिवर्तनों में संयुक्त व्यंजन का विकास भी प्राकृतों के आरंभिक काल से ही मिलता है। ऊष्म व्यंजन के साथ दो अथवा तीन व्यंजनों के संयुक्त रूप का परिवर्तन पहले हुआ और फिर अन्य प्रकार के संयुक्त व्यंजनों का रूप भी बदल गया। पश्चिमोत्तर-समूह की आरंभिक प्राकृत में संयुक्त व्यंजनों का रूप अन्य प्राकृतों की अपेक्षा दीर्घ काल तक स्थिर मिलता है और प्राच्य में इसका परिवर्तन सबसे पहले प्रारंभ हुआ। शब्द के आरंभ में प्रयुक्त संयुक्त व्यंजनों में से एक व्यंजन का लोप हो जाता है अथवा उनके बीच में कोई स्वर डाल कर 'स्वरभक्ति' के रूप में उनको विभक्त कर दिया गया। शब्द के मध्य में प्रयुक्त संयुक्त-व्यंजनों को 'समीकरण' के द्वारा परस्पर एक दूसरे के समान कर लिया गया। इसी प्रकार संयुक्त व्यंजनों में ध्वनिविपर्यय के द्वारा शब्द में व्यंजनों का स्थान-परिवर्तन भी हो जाता है। उक्त परिवर्तनों के अतिरिक्त शब्दों के मूल और संयुक्त व्यंजनों का किसी दूसरे मूल व्यंजन

में विकास अथवा किन्हीं दो विभिन्न व्यंजनों के संयुक्त रूप में भी विकास मिलता है। परन्तु संयुक्त व्यंजनों का यह परिवर्तन बहुत व्यापक नहीं है।

मध्यकालीन आर्य भाषाओं के पद-विकास में भी सादृश्य और प्रयत्न-लाघव के कारण रूपों को काफ़ी सरल कर लिया गया। संज्ञा, क्रिया आदि रूपों के द्विवचन का लोप कर दिया गया। शब्द के अन्त्य व्यंजन के लोप हो जाने के कारण व्यंजनान्त रूपों का विकास स्वरांत के सदृश ही हो गया। पुलिंग और नपुंसक रूपों का विकास प्रायः अकारांत के सदृश और स्त्रीलिंग के रूपों का विकास प्रायः आकारांत के अनुसार मिलता है। वैसे पुलिंग, नपुसंक के अंतर्गत इकारांत और उकारांत रूप और स्त्रीलिंग के अंतर्गत ईकारांत और अकारांत रूप भी मिलते हैं परन्तु इनका रूप-विकास पुलिंग में अकारांत और स्त्रीलिंग में आकारांत के सदृश ही हुआ है। विभक्तियों के प्रयोग में भी सादृश्य के द्वारा रूपों का एकीकरण मिलता है। एकवचन और बहुवचन दोनों में चतुर्थी के लिये षष्ठी और पंचमी के लिये तृतीया के प्रयोग मिलते हैं वैसे पंचमी एक०, बहु० में तृतीया के अतिरिक्त कुछ और रूपों का भी प्रयोग मिलता है। नपुंसक लिंग में प्रथमा और द्वितीया के रूप प्रायः समान हो जाते हैं और शेष रूप प्राचीन आर्य भाषा के सदृश ही प्राकृतों में भी पुलिंग के समान ही विकसित होते हैं। स्त्रीलिंग एक० के रूपों पर पुलिंग की अपेक्षा और भी अधिक सादृश्य का प्रभाव दिखाई पड़ता है। तृतीया से लेकर सप्तमी तक में प्रायः एक ही रूप मिलते हैं। स्त्रीलिंग बहु० में विभक्तियों का एकीकरण पुलिंग के समान ही होता है। विभक्तियों का एकीकरण होने पर अर्थ के स्पष्टीकरण के लिये संज्ञा और क्रिया के रूपों के साथ परसर्गों का प्रयोग भी किया जाने लगा।

क्रिया के रूपों को भी सरल बनाया गया। जैसा पहले कहा जा चुका है कि क्रिया के रूपों में द्विवचन का लोप हो गया और वह बहुवचन में

सम्मिलित हो गया। परस्मैपद के अनुसार की आत्मने-पद के रूप का भी प्रयोग होने लगा। क्रियाओं के अकारांत और एकारांत रूप ही शेष रह गये। -भ्वादि गण के धातुओं को अन्य गणों की धातुओं की अपेक्षा व्यापकता मिलती है। प्राचीन आर्य भाषा में काल-रचना दस लकारों के रूप में विभाजित थी परन्तु प्राकृतों में वर्तमान के लिये 'लट', भविष्य के लिये 'लृट', भूतकाल के लिये 'लुंग' और इनके अतिरिक्त आज्ञा का एक रूप 'लोट' और इच्छा, अभिलाषा, आशीर्वाद आदि को व्यक्त करने के लिये विधिलिंग का व्यापक प्रयोग मिलता है।

प्राकृत भाषाओं का उद्भव काल जैसा पहले बताया जा चुका है लगभग ६०० ई० पू० से प्रारंभ हुआ और वही समय प्राचीन फ़ारसी के विकास का भी है। संभवतः इसी कारण ईरानी भाषा प्राचीन फ़ारसी और प्राकृत की विशेषताएँ बहुत कुछ समान रूप में मिलती हैं। ध्वनि-परिवर्तन, द्विवचन का लोप, विभक्तियों का एकीकरण, परसर्गों का विकास, काल के भेदों में एकीकरण आदि विशेषताएँ प्राचीन फ़ारसी और प्राकृत में समान हैं। स्थान-भेद के होने पर भी कालसाम्य होने के कारण विभिन्न भाषाओं के विकास में यदि समानता मिले तो आश्चर्य ही क्या है क्योंकि भाषाओं का विकास तो स्वाभाविक ढंग पर होता है, इसे भाषाविज्ञानी भी प्रायः स्वीकार करते हैं।

संस्कृत में प्राकृत-अंश

प्राकृत भाषा की विशेषताओं का विकास भाषा का स्वाभाविक विकास है। इसलिये वे विशेषताएँ प्राचीन आर्य भाषा अथवा आधुनिक आर्य भाषाओं में भी उपलब्ध होती हैं। ज्यूल्स् 'ब्लाख' ने सन् १९२८ में अपने फर्लांग के व्याख्यानों में प्राचीन आर्य भाषा पर प्राकृत-प्रभाव को स्पष्ट किया है। प्राचीन आर्य भाषा का कोई एक रूप नहीं था। वह विभिन्न प्रदेशों में अनेक रूपों में प्रचलित थी। डॉ० एस्० एम्० कत्रे

प्राचीन आर्य भाषा पर प्राकृत-प्रभाव 'भाषामयता' के नाम से दिया है। ऋग्वेद की भाषा में ही ये प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं।

ध्वनिसंबंधी विशेषताओं में–इ ∠–ऋ—उदा० शिथिर < श्थिर, कुरु, कुरु< कृणु कृत <कुठ मिलते हैं। प्राकृत में ऋ <अ, इ, उ तथा साथ में कभी 'र' ध्वनि भी रहती हैं। संस्कृत में इनका यही विकास मिलता है। उदा-भृत< भट, कृत-<उत्कट और वैदिक विकट में--कट भृ-> भ्रकुटि। इसी प्रकार शृङ्ख् > शिंघ (सूँघना) समृद्ध > संइद्ध, क्रोष्ट्ट> क्रोष्टु (गीदड़), ऋषभ> लुषभ, वृक्ष> रुक्ष। इसी प्रकार -र > -ल-अङ्गार> इंगाल और ऋ–> –ए, गृह > गेह, प्राकृत में ऐ, औ > ए, ओ मिलते हैं। वेदों, ब्राह्मण-ग्रंथों, सूत्रों आदि में प्राकृत के सदृश ही परिवर्तन पाये जाते हैं। उदा० वैदिक–अस्मै > तै० ब्रा० अस्मे, तै० ब्रा० कैवर्त> केवर्त, औषधीषु > ओषधीषु, ऋग्वेद गमध्यै> गमध्ये, वोढवै> वोढवे आदि।

दीर्घ स्वर के स्थान पर ह्रस्व स्वर का उदाहरण जकोवी आदि विद्वानों ने दिया है। उदा० अगार> आगार, खलिन > खलीन आदि, दीर्घ के स्थान पर ह्रस्व उदा० रोदसीप्रा> रोदसिप्रा,- अमात्र> अंमत्र-ऋग्वेद। प्राकृत में—अय>-ए मिलता है। वैदिक त्रयधा> त्रेधा, श्रयणि > श्रेणि। इसी प्रकार—अव> –ओ उदा० उपवसथ> गाथा-पोषध, लवणतृण> लोणतृण (एक प्रकार की घास), लवण-> लोणार, श्रवण> श्रोण, श्रवत्य:> श्रोत्या:। संस्कृत में प्राकृत के सदृश सयुक्त व्यंजन का 'स्वरभक्ति' रूप भी हो जाता है। उदा० पूर्ष> पुरुष, वैदिक साहित्य में भी ऐसे प्रयोग मिलते हैं। उदा० सहस्त्य:> सहस्त्रिय:, स्वर्ग:> सुवर्ग: (तैत्तिरीयसंहिता), तन्व: > तनुव:, स्व: > सुव: (तैत्तिरीय आरण्यक)।

इसी प्रकार आदि स्वरागम भी प्राकृत के सदृश ही मिलता है। उदा० स्त्री> इस्त्री—(गाथा)। संस्कृत के व्यंजनों पर भी

[illegible]
में इसके उदाहरण मिलते हैं। उदा० पद्मान् > पद्मा ([illegible]-[illegible]), [illegible] > [illegible] ([illegible]), [illegible] > [illegible] प्राकृत के सदृश संस्कृत में संयुक्त व्यंजनों के समीकृत रूप भी मिलते हैं। उदा० [illegible] > [illegible] (स्थान का नाम) सज्य- > सज्ज- (तय्यार), -[illegible] > [illegible], रक्त > लड्ड- (लाल) मल्य- > मल्ल, मल्ल > मल्ल (फलांग)।

इसी प्रकार संस्कृत में संयुक्त व्यंजनों के स्थान पर अन्य प्रकार के संयुक्त व्यंजनों का प्रयोग भी मिलता है। उदा० -क्ष्-न > -च,-छ,- उदा० च्छ-परिक्षित > परिच्छित, परिक्षय > परिच्छय, क्षार > छार (छींक-अशुभसूचक), क्षुर > छुरिका (चाकू), कक्षा > कच्छा, अक्ष > अच्छ, लक्षण > लाञ्छन, उत्सन्न > उच्छन्न (विनष्ट), उत्सादन > उच्छादन (सफाई), मत्स्य > मच्छ, वत्स > वच्छ।

इसी प्रकार संयुक्त व्यंजन–द्य > -ज्-उदा-द्युत- > ज्योतिः। प्राकृत

में स्वरमध्यवर्ती दन्त व्यंजन अथवा दन्त व्यंजन के साथ-र् या-ल के प्रयोग होने पर उसका मूर्धन्य रूप हो जाता है। संस्कृत में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। पहले कृत >-कट का उदाहरण दिया जा चुका है। अन्य उदाहरण—कर्त-> काट (गड्ढा), कृत (बुनना) > कट (चटाई), -द>-ड। उदा:दुर्दभ> दूडभ (वाजसनेयिसंहिता), पुरोदाश> पुरोडाश (शुक्लयजु० प्रातिशाख्य) ऋध- (बढ़ना) > आढ्य (संवृद्ध), ग्रन्थति, ग्रथति> गुण्ठयति नृत्यति > नटति। इसी प्रकार-आर्त्त (दुखी) > अट्ट, कृन्तति> कुट्टयति (कुचलता है)। परन्तु प्राचीन आर्य भाषा में उक्त ढंग पर जैसा मूर्धन्य ध्वनियों का विकास मिलता है वैसा अन्य भारोपीय भाषाओं में नहीं मिलता। उदाहरण-वैदिक में 'कटुक' है परन्तु लिथुएनी में 'कर्तुस्' ही है। फॉरतुनेतोर के मतानुसार अन्य भारोपीय भाषाओं के शब्दों में दन्त के पूर्व यदि-ल् ध्वनि का प्रयोग होता है तो भारतीय प्राचीन आर्य में उसका मूर्धन्य में विकास हो जाता है। उदा—वैदिक खण्ड-, ग्रीक क्लदरोस् (kladaros), लिथुएनी स्केल्देति (Skeldideti)। परन्तु वैदिक में जिसका प्रयोग पहले होता था उसी को प्राकृत ने सुरक्षित रखा और अर्वाचीन संस्कृत में प्राकृत के प्रभाव से पुनः उसका प्रयोग मिलने लगता है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्राचीन आर्य भाषा में जहाँ मूर्धन्य का प्रयोग मिलता है और वह उक्त नियम के अनुसार सिद्ध नहीं होते वह प्राकृत के परंपरित रूप अथवा प्राकृत में उपलब्ध अनार्य भाषाओं के प्रभाव के कारण माने गये हैं।

मागधी प्राकृत की विशेषता के अनुसार-ज>-य का भी उदाहरण संस्कृत में मिलता है। उदा-० जामातृ-> यामातृ, जामि->-यामि। इसी प्रकार-य और-व में भी परस्पर परिवर्तन प्राकृत की विशेषता है जो संस्कृत में भी मिलता है। उदा०-आततायी> आततवी, मनायी> मनावी, अहन्याय> अहन्वाय।

प्राकृत में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible]—[illegible] > [illegible], [illegible] > [illegible] ([illegible]), [illegible] > [illegible] [illegible] और, [illegible] > [illegible]—णाः। इसी प्रकार [illegible] > [illegible] [illegible]। [illegible] > प्राणसंगाण ([illegible]), [illegible] > [illegible], [illegible] > [illegible], [illegible], [illegible] > [illegible], [illegible] > [illegible] ([illegible] [illegible]), [illegible] > [illegible]—(विश्राम करना)। इसी प्रकार संस्कृत [illegible] में [illegible] > [illegible] का विकास और फिर प्राकृत के प्रभाव से इसका प्रयोग संस्कृत में मिलता है। संस्कृत पर प्राकृत का व्यापक प्रभाव 'गाथा' में मिलता है और उसमें संस्कृत का शुद्ध रूप नहीं मिलता। बौद्ध, जैन और पुराण आदि कुछ ग्रंथों में इसका प्रयोग मिलता है, जिसका विवेचन पहले विकृत-संस्कृत के अंतर्गत किया जा चुका है। प्राकृत में अकारांत पुं० प्रथमा एक० में—ओ होता है। वैदिक में भी संवत्सरो अजायत (ऋग्वेदसंहिता), सो चित् मिलता है। प्राकृत तृतीया बहु०-देवेहि, जेट्ठेहि आदि रूप वैदिक देवेभिः ज्येष्ठेभिः रूपों से ही संबंधित हैं। पाणिनि ने चतुर्थी के स्थान पर षष्ठी के प्रयोग का उल्लेख किया है—चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि। प्राकृत पंचमी एक० में देवा, वच्छा आदि के सदृश वैदिक उच्चा, नीचा, पश्चा रूप मिलते हैं। प्राकृत द्वितीया बहु० में बदल जाते हैं। वैदिक में इन्द्रा-वरुणौ > इन्द्रावरुणा, मित्रावरुणौ > मित्रावरुणा आदि रूप उपलब्ध होते हैं। इसी प्रकार प्राकृत के पद-विकास में विभक्तियों का एकीकरण सादृश्य के कारण मिलता है और वही सादृश्य की भावना संस्कृत के पद-विकास में भी निहित है क्योंकि स्वरांत और व्यंजनांत रूपों के एक वचन, द्विवचन, बहुवचन और तीनों लिंगों में—पुलिंग, स्त्रीलिंग-नपुंसक लिंग की अनेक विभक्तियाँ समान रूप में भी मिलती हैं। नपुंसक में तृतीया से सप्तमी तक के रूप प्रायः पुलिंग के समान

मिलते हैं। संस्कृत के पद-विकास में भी सादृश्य का प्रभाव पड़ा है। पुलिंग के अकारांत में द्विवचन के तृ०, च०, पं० में नृपभ्याम्, प०, स० में नृपभ्यः इकारांत में एक० पं० प० कवेः, द्वि० तृ० च०, पं० के कविभ्याम्, प० स० के कवयोः बहु० च० पं० के कविभ्यः समान रूप मिलते हैं। संस्कृत स्त्रीलिंग के रूपों में प्राकृत के सदृश कुछ अधिक सादृश्य का प्रभाव मिलता है। आकारांत, ईकारान्त में पं, प० का मालायाः, दास्याः, द्वि० तृ०-च०, पं० में मालाभ्याम् दासीभ्याम् और बहुवचन में च० पं० के मालाभ्यः और दासीभ्यः समान रूप पाये जाते हैं। इस प्रकार सादृश्य का प्रभाव जैसा प्राकृत भाषाओं की विभक्तियों के विकास में मिलता है वैसा ही प्रभाव प्राचीन आर्य भाषा की विभक्तियों के विकास में भी दृष्टिगत होता है। अतएव सादृश्य और प्रयत्नलाघव आदि के कारण जिसप्रकार प्राकृत भाषाओं का विभिन्न रूपों के विकास हुआ बहुत कुछ वही प्रभाव प्राचीन आर्य भाषा संस्कृत के उदाहरणों में भी दिखाई पड़ता है। भाषा के विकास में सहज और स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ सदैव कार्य करती रहती हैं यह पहले स्पष्ट किया ही जा चुका है।

प्राकृत शब्द-समूह

विविध प्राकृत भाषाओं के शब्द-समूह में भी पर्याप्त समानता मिलती है क्योंकि सभी प्राकृतों का उद्गम और विकास प्राचीन आर्य भाषा वैदिक अथवा लोकव्यवहार में प्रचलित प्राचीन आर्य बोलियों के आधार पर हुआ। संस्कृत भाषा में भी आर्येतरांश के अनेक उदाहरण मिलते हैं यद्यपि इस विषय में कुछ मतभेद भी है। वे अंश द्राविड़ अथवा आग्नेय (ऑस्टिक) परिवार के माने जाते हैं। प्राकृत भाषाओं में भी तदनुसार उन अंशों का विकास मिलता है, जो किसी प्रकार अस्वाभाविक नहीं कहा जायेगा। इसके अतिरिक्त सभी भाषाओं में कुछ देशी शब्द भी मिलते हैं जिनका विकास स्थानीय विशेषताओं

नाम से कहे गये हैं। उनका महत्व है क्योंकि आधुनिक आर्य भाषाओं का संबंध उनसे जुड़ जाता है परन्तु हेमचन्द्र ने संस्कृत से उन शब्दों का संबंध जोड़ा है और वे उन्हें देशी नहीं मानते।

देशी शब्दों को संस्कृत शब्द-कोश में 'धातुपाठ' के नाम से भी रखा गया है। उक्त देशी शब्दों में देशज के अतिरिक्त आर्य और अनार्य शब्दों का भी संग्रह कर लिया गया है। जिन शब्दों का व्याकरणिक नियमों से सिद्ध नहीं होता अथवा संस्कृत शब्द-कोश में जो उसी अर्थ में नहीं मिलते उन सभी को देशी की संज्ञा हेमचन्द्र ने दी है। यद्यपि भाषा-विकास की दृष्टि से वे स्थानीय विशेषताओं के आधार पर विकसित नहीं हुए वरन् उन्नत भाषाओं के शब्द ही ध्वनि-परिवर्तन और प्रयोग विशेष के कारण देशी मान लिये गये। उदाहरण के लिये 'अमयणिग्गमो' शब्द चन्द्र के अर्थ में मिलता है, जो संस्कृत का 'अमृतनिर्गम' ही है, चूँकि यह संस्कृत शब्द-कोश में नहीं मिलता इसलिये देशी शब्द माना गया है। देशीनामशाला में अनेक शब्द द्राविड़, फ़ारसी और अरबी भाषाओं के भी हैं। हेमचंद्र ने वैसे अपने पूर्व के वय्याकरणों के द्वारा निर्देशित देशी शब्दों को संस्कृत के अंतर्गत भी माना है क्योंकि उनकी व्युत्पत्ति संस्कृत से सिद्ध होती है। हेमचन्द्र ने देशीनाममाला में शब्दों को अकारादि क्रम से दिया है जिससे कोई भ्रम उत्पन्न नहीं होता। हेमचन्द्र ने जैसा पहले कहा गया है, अपने द्वारा ही निर्देशित देशी-शब्दों के नियम का सर्वत्र पालन नहीं किया है। एक शब्द को एक स्थान पर देशी और फिर उसी को दूसरे स्थान पर संस्कृत से संबंधित दिखाया है। उदाहरण के लिये डोला (पालकी), हलुअ, अइहारा, थेरो शब्द लघु, अइहारा डोला, स्थविर प्राकृत-व्याकरण में संस्कृत और देशीनामामाला में देशी माने गये हैं।

इसी प्रकार धनपाल ने स्वरचित पाइअलच्छी को देशी-शास्त्र माना है। यद्यपि उसमें तत्सम और तद्भव शब्दों की संख्या ही अधिक मिलती है। अतएव प्राकृत शब्द-समूह के अधिकांश शब्द तद्भव हैं,

स्थानों पर उससे अपना विरोध प्रकट किया है। हेमचंद्र की देशी-नाममाला ग्रंथ इस प्रकार प्राकृत के देशी, अर्धतत्सम आदि शब्दों का महत्वपूर्ण संग्रह कहा जा सकता है, जो पूर्ववर्ती रचयिताओं के विवेचन के साथ उपलब्ध होती है। पाइअलच्छी-नाममाला का संपादन विक्रमविजय मुनि के द्वारा किया गया है जिसमें शब्दों का तत्सम रूप अथवा उनका शाब्दिक अर्थ प्रत्येक पृष्ठ के अंत में पाद-टिप्पणी के रूप में दे दिया गया है। हेमचंद्र कृत देशीनाममाला का संपादन आर० पिशेल के द्वारा और उसी के परिशिष्ट भाग में देशीनाममाला में प्रयुक्त देशी शब्दों का शब्द-कोश, संस्कृत, अंग्रेजी अर्थों और रूपात्मक उल्लेखों के साथ डॉ० बूहलर के द्वारा किया गया है। प्राकृत-शब्दकोश का एक बृहत् रूप 'पाइअसद्दमहण्णव' (प्राकृतशब्द-महार्णव) के नाम से सेठ हरगोविन्ददास द्वारा चार खण्डों में हिंदी अर्थों तथा रूपात्मक विवेचन के साथ मिलता है। यह कोश प्राकृत-शब्दसमूह की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। आचार्य नरेन्द्रदेव रचित पूर्व निर्देशित अभिधम्म कोश भी इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण रचना है।

शिलालेखी प्राकृत

अशोक के शिलालेखों की भाषा प्रारंभिक प्राकृत की उदाहरण है और जैसा पहले कहा जा चुका है, उनकी भाषा को चार रूपों में विभाजित किया गया है—पश्चिमोत्तरी, दक्षिण-पश्चिमी, मध्यपूर्वी और पूर्वी। पश्चिमोत्तर समूह के अन्तर्गत सामूहिक दृष्टि से शाहबाज-गढ़ी की भाषा मानसेहरा की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक है क्योंकि मानसेहरा की भाषा पर मध्यपूर्वी समूह की भाषा का प्रभाव भी दृष्टिगत होता है। मानसेहरा में प्रथमा एक०-ओ > -ए रूप, महाप्राण भ > ह व्यंजन मिलता है, जो पश्चिमोत्तरी की सामान्य विशेषताएँ नहीं है। उदा० मृग: > मुगो (शाह०), म्रिगे (मान०)।

पश्चिमोत्तरी समूह

पश्चिमोत्तरी की ध्वनि संबंधी विशेषताओं में-ऋ>-रि,-रु,र और आगे का दन्त व्यंजन मूर्धन्य में परिवर्तित हो जाते हैं परन्तु मानसेहरा में यह परिवर्तन नहीं मिलता। उदा० कृत, मृग वृद्धेषु, वृद्धि> क्रमशः किट, म्रिग, म्रुग वुध्रेसु, वुद्धेसु, व्रद्धि,। -क्ष> -च्छ। उदा० मोक्ष> मोछ परन्तु क्ष> ख उदा० क्षुद्र>खुद्र, खुद (मान०)। -स्म,-स्व>-स्प उदा० सप्तमी एक०—स्मिन> -स्पि, उदा० विनीतस्मिन> विनितस्पि, स्वामिकेन> स्पमिकेन। यदि संयुक्त व्यंजन मे-र ध्वनि हो तो उसका परिवर्तन नहीं होता। उदा० धर्म> ध्रम, दर्शन> द्रशन।

यदि संयुक्त व्यंजन में-स ध्वनि हो तो उसका समीकरण और आगे के दन्त व्यंजन का विकल्प से मूर्धन्य रूप हो जाता है। उदा० गृहस्थ> ग्रहस्थ, अष्ट> अठ (मान०), अस्त (शाहा०)। पश्चिमोत्तरी में दन्त व्यंजनों का मूर्धन्य रूप में विकास अधिक मिलता है। उदा० अर्थ> अठ्र, त्रयोदश>त्रेडश (मान०) त्रैदस (गि०)· औषधानि>ओषढनि (शाह०, मान०), ओसधानि (का०, धौ० जौ०)। डॉ० सुकुमार सेन के मतानुसार शाहाबाजगढ़ी की भाषा में मूर्धन्य ध्वनियाँ संभवतः वत्सर्य प्रकार की थीं इसीलिये दन्त और मूर्धन्य में कोई भेद नहीं मिलता। पश्चिमोत्तरी में दोनों रूप मिलते हैं। उदा०-स्ते ठम् और स्ते स्तमति, अठवष और अस्तवष। शब्द में किसी व्यंजन के बाद यदि-य हो तो उसका समीकरण कर लिया जाता है। उदा० कल्याण> कलण, कर्तव्य> कटव। मानसेहरा में कभी-कभी साधारणीकरण नहीं होता। उदा० एकत्य-> (शाह०) एकतिए, (मान०) एकतिय (कुछ)। शब्द म अनुनासिक व्यंजन के साथ प्रयुक्त-य और-ञ का->ञ्ञ हो जाता है। उदा० अन्य-> अञ्ञ-परन्तु मान० में अणच, पुन्यम्> पुञ्ञं, परन्तु पुणं (मान०) ज्ञानम्> ञानं।

शब्द के मध्य में प्रयुक्त-ह-का प्रायः लोप हो जाता है। उदा० इह> इअ, ब्राह्मण> ब्रमण, (शाह०) बमण (मान०)। पश्चिमोत्तरी में प्रथमा एक० में- अः>-ओ और कर्तृवाचक संज्ञा में-त्वा> -त्वी रूप मिलते हैं। उदा० दर्शयित्वा> दर्शयित्वी, द्रसेति।

दक्षिण-पश्चिमी समूह

दक्षिण-पश्चिमी समूह की भाषा का प्रतिनिधित्व, जैसा पहले बताया जा चुका है जूनागढ़ और गुजरात के गिरिनार शिलालेख की भाषा करती है। वह वैदिक, लौकिक संस्कृत और पालि से निकट संबंध रखती है। इसके अंतर्गत संयुक्त व्यंजन के -स ध्वनि का लोप नहीं होता। उदा० अस्ति, हस्ति, सष्टि परन्तु स्त्री> इथी रूप भी मिलता है। शब्दों में-क्ष> -च्छ् पश्चिमोत्तरी के सदृश मिलता है। उदा० क्षुद्र >-छुद, वृक्ष> व्रछा परन्तु स्त्रीअध्यक्ष> इथीभ्रख रूप भी मिलता है। संयुक्त व्यंजन के -र् ध्वनि का वैकल्पिक लोप मिलता है। उदा० अतिक्रान्तम्> अतिक्रातं, अतिकातं, त्रि> त्री, ती, सर्व> सर्व, सव। संयुक्त व्यंजन में -व्य के अतिरिक्त अन्य -य का समीकरण हो जाता है। उदा० कल्याण>कलान, परन्तु कर्तव्य>कतव्य, मृगव्या > मगव्या रूप भी मिलते हैं।

शब्द में 'व' ध्वनि के बाद प्रयुक्त 'ऋ' स्वर का 'अ' और 'उ' स्वर में परिवर्तन हो जाता है। उदा० वृत्त>वुत परन्तु मार्ग>मग, मृत> मत, दृढ़>दढ़ में -ऋ>-अ में परिवर्तन मिलता है। संयुक्त व्यंजन-त्व, -त्म->-त्प्, -द्व>--द्व। उदा० चत्वारः>चत्पारो, आत्म>आत्प, द्वादश>द्वादस परन्तु 'द्वे' और 'द्वो' रूप भी मिलते हैं। डॉ० सुकुमार सेन के अनुसार √स्था धातु का भारत-ईरानी में √स्ता होता है परन्तु इस संयुक्त व्यंजन की एक ध्वनि का मूर्धन्य रूप हो जाता है। उदा० स्थिता>स्ठिता, तिष्ठतः> तिष्ठंतो, सप्तमी एक० --स्म>-म्ह। उदा० स्मिन्>

म्हि, तस्मिन>तम्हि । आत्मने-पद के रूप भी स्थिर मिलते हैं। √अस् धातु का अ-स्वर विधि लिंग में स्थिर रहता है। उदा० स्यात् (अस्पत)>अस (अस्सा), अस्युः>असु । 'भवति' और 'होति' दोनों का प्रयोग मिलता है। कुछ विशेष शब्द इस भाषा में द्रष्टव्य हैं। उदा० पन्थ्<पथ और मग<मार्ग, यारिस, तारिस और यादिस, तादिस<यादृश्, तादृश्, महिडा,<महिला, पसति (दखति, देखति)<पश्यति।

मध्यपूर्वी समूह

मध्य-पूर्वी की भाषा के अंतर्गत जैसा पहले कहा जा चुका है काल्सी का शिलालेख, तोपरा स्तंभ लेख, जोगीमार गुफालेख आदि की गणना की जाती है। प्राच्य समूह की भाषा के सदृश -र>-ल, श, ष के प्रयोग, प्रथमा एक०-अः>-ए रूप मिलते हैं।

अन्य ध्वनि संबंधी विशेषताओं में ह्रस्व स्वर का प्रयोग दीर्घ स्वर के रूप में आह>आहा, लोकस्य>लोकसा। -क और -की प्रत्ययों के प्रयोग और ये -क्य और -क्यी के रूप में मिलते हैं। उदा०-ज्ञाति>नातिक्य, -कोशिक>अढकोसिक्य, -दासिकी> देवदसिक्यि। श, ष> स मिलता है। शब्द के मध्य० -ओ>-ए । उदा०-करोति> कलेति। शब्द में प्रयुक्त संयुक्त व्यंजन के र, स, ष ध्वनियों का प्रायः लोप हो जाता है। उदा० अष्ट>अठ, अर्थ, सर्व>सव। शब्द में-त्,-व के बाद प्रयुक्त -य् का-इय् परन्तु उसका पूर्व में -द,-ल् के होने पर समीकरण हो जाता है। उदा० कर्तव्य> कटविय, मध्य>मन्झ, परन्तु उद्यान>उयान, कल्याण>कयान और त्य>च्, उदा० सत्य>सच। संयुक्त व्यंजन -स्म- ष्म्>-फ्। उदा० तुष्मे>तुफे, अस्माकम्>अफाक, यः तस्मात्, एतस्मात्> येतफा । संयुक्त व्यंजन-क्ष>-क्ख, ख। उदा० मोक्ष> मोख, क्षुद> खुद।

स्वरमध्यवर्ती -क का घोष-रूप में विकास मिलता है। उदा० -कृत्य> अधिगिन्य, लोकम्> लोगं। क्रिया √ भू का विकास सदैव √ हू रूप में होता है। सप्तमी एक०-स्मिन>-स्सि, सि का प्रयोग होता है।

पूर्वी समूह

पूर्वी समूह की भाषाओं के अंतर्गत धौली, जौगढ़ के शिला-लेख, संपूर्ण लघु शिलालेख और स्तंभ-लेख, मौर्य राजाओं के गुफा-लेख, महास्थान का शिलालेख, सोहगोरा का ताम्रपत्र लेख, खारवेल और उनकी रानियों के हाथी गुफालेख आदि की गणना की गई है। पूर्वी की विशेषताओं में-अ:> –ए,। उदा० राजा> लाजा, मयूर:> मजुला। संयुक्त व्यंजन में प्रयुक्त 'र' और 'श', 'स' का परिवर्तन समीकरण में हो जाता है। उदा० सर्वत्र>सवत (सव्वत्त), अस्ति> अथि, (अत्थि)।

संयुक्त व्यंजन के बाद प्रयुक्त य,-व>-इय्,-उव् हो जाता है। उदा० द्वादश>दुवादस, कर्तव्य>कटविय परन्तु ल्य्>-य्य्। उदा० कल्यान> कयान (कय्यान०)। अहं> हकं (अहकं) रूप मिलता है। सप्तमी एक०-स्मिन>-सि,-स्सि मिलता है। उदा० धर्मस्मिन> धम्मसि धम्मस्सि, तस्मिन> तीस, तस्सि। कृदंत का प्रत्यय -तु, त्वा। उदा० अरभित्वा> आलभितु, आरभित्पा (दक्षिण-पश्चिमी) अरभित्ति (पश्चिमोत्तरी)।

सिंहलद्वीप के शिलालेखों की भाषा की अधिकांश विशेषताएँ मध्यपूर्वी समूह की भाषा के सदृश मिलती हैं। कुछ भिन्न विशेषताओं में प्रथमा एक० -ए>-इ, सप्तमी एक०-सि>-हि, षष्ठी एक० में अपभ्रंश के सदृश स> ह और कभी-कभी ष> श रूप मिलते हैं।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि अश्वघोष के नाटक की भाषा प्रारंभिक प्राकृत की उदाहरण है क्योंकि-उपलब्ध रचना १००

ई० के लगभग की है और इसमें तीन पात्रों की विभाषाएँ भिन्न-भिन्न प्रकार की मिलती है। 'दुष्ट' की भाषा प्राचीन मागधी है जिसमें र>ल, स, ष> श,-अ:>-ए उदा० कारणात्>कालना, वृत्त:> वुत्ते, करोमि> कलेमि। इसके अतिरिक्त अहं> अहकं और षष्ठी एक० में -हो विभक्ति का प्रयोग मिलता है। उदा० मक्कटहो।

गणिका और विदूषक की विभाषा प्राचीन शौरसेनी है जिसमें अ:>-ओ मिलता है। उदा० दुष्कर:> दुक्करो,-न्य,-ज्ञ->-ञ्ञ्। उदा० हन्यन्तु,> हञ्ञन्तु, अकृतज्ञ> अकितञ्ञ,-व्य>-व्व। उदा० धारयितव्वो।-क्ष>-क्ख। उदा० साक्षी> सक्खी, प्रेक्ष्यामि> पेक्खामि, वर्तमानकालिक कृदंत-मान प्रत्यय का प्रयोग स्थिर मिलता है। उदा० भुञ्जमानो, पाटयमानो आदि। इसी प्रकार कुछ विशेष परिवर्तन त्वम्> तुवव (प्राचीन फ़ारसी तुवम्), खलु,>खु, भवान्> भवां, कृत्वा> करिय, कुरुथ> करोथ आदि।

गोभम की विभाषा मध्यपूर्वी अथवा ल्युडर्स के अनुसार प्राचीन अर्धमागधी कही गई है जिसमें र>ल,-अ:>ओ और 'श' का अभाव होता है। -क, -आक,-इक आदि प्रत्ययों का अधिक प्रयोग मिलता है। उदा० कलमोदनांक, पाण्डलाकं< पाण्डर आदि।

निया प्राकृत

सर ऑरेल स्टेइन द्वारा उपलब्ध मध्यएशिया के खरोष्ठी लेखों की भाषा निया प्राकृत का उल्लेख पहले हो चुका है। इस निया-प्राकृत के अन्तर्गत-य,-या, -ये>-इ मिलता है। उदा० समादाय> समदि, भावये>भवइ, मूल्य>मूलि, ऐश्वर्य> एश्वरि। मध्य-ए>-इ का प्रयोग होता है। उदा० इमे> इमि, उपेत: > उवितो, क्षेत्र> छ्इत्र। अन्त-अ:>-उ का वैकल्पिक प्रयोग मिलता है। उदा० प्रात:> प्रतु। स्वरमध्यवर्ती स्पर्श ऊष्म और स्पर्श-संघर्षी अघोष व्यंजन सघोष में बदल जाते हैं। ऊष्म के अतिरिक्त अन्य व्यंजन का लोप और उसके स्थान

पर-इ या -य के प्रयोग मिलते हैं। उदा० यथा>यधा, सन्तिके> सदिइ, त्वचा> त्वया, प्रथम>पढम, अवकाश> अवगज्ञ, कोटि->कोडि, गोचरे>गोयरि, भोजन>भोयंन। यदि संयुक्त व्यंजन में अनुनासिक अथवा कोई ऊष्म ध्वनि सन्निविष्ट हो तो अघोष व्यंजन सघोष का रूप ले लेता है। उदा० पञ्च>पज, सिञ्च>सिज, सम्पन्न->सवन्नो, दुष्प्रकृति>दुवकति, संस्कार>सघर, अन्तर> अदर, हन्ति>हदि आदि। सघोष के स्थान पर अघोष के भी कुछ उदाहरण मिलते हैं। उदा० विराग>विरकु, समागता >समकत, विगाह्य>विकय, योग>योक, ग्लानः>किलने, दण्ड-> तण्ट— भोग>योग आदि। महाप्राण व्यंजनों के स्थान पर अल्पप्राण व्यंजनों का प्रयोग ईरानी और अनार्य भाषाओं के प्रभाव का कारण माना गया है। उदा०-भूमि>बूम, -घनानाम् >तनना। शब्द में विसर्ग के अनंतर 'ख' और स्वतंत्र रूप से 'क्ष' का परिवर्तन ह में मिलता है। उदा० दुःख>दुइ, अनपेक्षिणः>अनवेहिनो, अपेक्ष> अवेह आदि।

शब्द में सघोष ऊष्म ध्वनि रूप में उच्चारण के कारण—ध के स्थान पर ऊष्म व्यंजन का प्रयोग मिलता है। उदा-० मधुर>मसुरु, गाथानाम्>गशन, शिथिल>शिथिल, मधु>मसु, अधिमात्रा> असिमत्र आदि। तीनों ऊष्म ध्वनियों श, ष, स का प्रयोग होता है परन्तु इनमें 'स' का प्रयोग अधिक व्यापक मिलता है। सघोष ऊष्म ध्वनि ज का स, झ लिखित रूप मिलता है। शब्दों में ऋ के स्थान पर अ, इ, उ, रु, रि का विकास मिलता है। उदा० मृतः>मुतु, संवृतः> सव्वतो, स्मृति>स्वति, वृद्ध>व्रिढ, कृत>किड, पृच्छितव्य-> प्रुछिदवो आदि।

संयुक्त व्यंजन में यदि -र्,-ल् सन्निविष्ट हों तो उनका परिवर्तन नहीं होता। उदा० प्राप्णोति>प्रनोदि, कीर्ति>कीर्ति धर्म>धर्म, ध्रम, मार्ग>मर्ग, परिव्रजति>परिव्रयति, दीर्घम्>द्रिघम्, मैत्र->

मेत्र आदि । संयुक्त व्यंजन के एक अनुनासिक ध्वनि में दूसरी निरनुनासिक ध्वनि का समीकरण हो जाता है । उदा० पण्डित>पणिदो, दण्ड>दण, प्राप्णोति>प्रणोदि, गम्भीर>गमिर, कुञ्जरः>कुञ्जरु, प्रज्ञा>प्रञ, शून्य>शुञ, विज्ञप्ति> विनति आदि । संयुक्त व्यंजन -श्र>-प का परिवर्तन मिलता है । उदा० श्रवक>पवक, श्मश्रु>मपु । संयुक्त व्यंजन क्र, ग्र, त्र, द्र, प्र, व्र, भ्र, स्त् का प्रयोग स्थिर रहता है । उदा० त्रिभिः>त्रिहि, प्रियाप्रिय>प्रिअप्रिअ, संभ्रय> सभ्रमु आदि ।

संयुक्त व्यंजन -ष्ट्, -ष्ठ् का समीकृत रूप हो जाता है । उदा० श्रेष्ठः >शेठो, दृष्टि >दिठि, ज्येष्ठ >जेठ आदि । √ स्था धातु में -स्थ>-ठ मिलता है । उदा० स्थान-<ठणेहि, उत्स्थान> उठन्, काष्ठ>कठ, उष्ट्र>उठ । संयुक्त व्यंजन में यदि ऊष्म ध्वनि निहित हो तो उसका परिवर्तन नहीं होता । उदा० अस्ति > अस्ति, वत्स>वत्स आदि । द्वितीया एक०-म् विभक्ति और प्रथमा एक०-स् का लोप मिलता है । द्विवचन का प्रयोग केवल दो उदाहरणों में मिलता है । उदा० पदेभ्याम् और पदेयो । षष्ठी एक० का रूप -अस विभक्तियुक्त मिलता है ।

क्रियाओं की काल-रचना में वर्तमान निश्चयार्थ, आज्ञा, विधि, भविष्य निश्चयार्थ, आदि के रूप मिलते हैं । वर्तमान, विधिलिंग के रूप अशोकी प्राकृत के सदृश मिलते हैं । उदा० करेयसि, करेयति, स्यति, अशोकी प्राकृत में अपकरेयति, सियति आदि रूप मिलते हैं । भूतकाल का विकास कर्मवाच्य कृदन्त में प्रथम पु० बहु० में -न्ति और उत्तम पु०, मध्यम पु० में वर्तमान निश्चयार्थ कर्तृवाच्य √ अस् के सदृश विभक्ति रूपों को जोड़ कर किया जाता है । उदा० श्रुतोस्मि > श्रुतेमि, श्रुतः स्मः > श्रुतम, दत्तोसि> दितेसि आदि । कर्तृवाचक संज्ञा का विकास पश्चिमोत्तर अशोकी प्राकृत के सदृश त्वी, -त्वा और -इ प्रत्ययों के योग से होता है । उदा० श्रुनिति, अप्रुछिति ।

पूर्वकालिक कृदन्त का विकास क्रियार्थक संज्ञा -अन् के चतुर्थी एक० के रूप से होता है। उदा० गच्छनाय > गच्छंनए, देयंनए। कुछ रूप -तुमन् में भी मिलते हैं। उदा०—कर्तुं और करंनए, विसजिदुं और विसर्जनए।

माहाराष्ट्री प्राकृत

संकुचित दृष्टि से साहित्यिक प्राकृतों में माहाराष्ट्री, शौरसेनी, अर्ध-मागधी, मागधी और पैशाची की गणना की जाती है। जैसा पहले कहा जा चुका है कि माहाराष्ट्री प्राकृत को ही वय्याकरणों ने प्रधान भाषा मान कर उसके आधार पर अन्य प्राकृतों का वर्णन किया है। वररुचि ने प्राकृतप्रकाश और हेमचंद्र ने प्राकृत-व्याकरण में माहाराष्ट्री प्राकृत की विशेषताओं को अलग से नहीं दिया है वरन् माहाराष्ट्री को ही मुख्य भाषा मान कर संपूर्ण प्राकृत व्याकरण का विस्तार किया है और शौरसेनी, मागधी, पैशाची आदि की विशेषताओं का विवेचन अलग से प्रस्तुत किया है। उस काल में माहाराष्ट्री 'स्टैंडर्ड' प्राकृत थी। इस प्राकृत की मुख्य विशेषताओं के अंतर्गत स्वरमध्यवर्ती अल्पप्राण व्यंजनों का लोप और घोष महाप्राण व्यंजन का -ह में परिवर्तन मिलता है। उदा० प्राकृत>पाउअ, कृति>कइ, कवि>कइ, कथम्>कहं, कथा >कहा। शब्दों के अल्पप्राण व्यंजन का महाप्राण रूप और फिर उसका -ह में परिवर्तन मिलता है। उदा०—स्फटिक> *स्फटिख> फळिह, भरत>*भरथ > भरइ। प्रारंभिक प्राकृत मागधी और अर्धमागधी के सदृश स्वरमध्यवर्ती -स के स्थान पर प्रायः -ह का प्रयोग मिलता है। उदा० पाषाण > पाहाण, तस्य > ताह, अनुदिवसम् >अणुदिअहं, आत्मन् >अप्पा मिलता है। शौर०, माग० में 'अत्ता' पाया जाता है। क्रिया-विशेषण की विभक्ति आहि का प्रयोग पंचमी एक० के लिये मिलता है। उदा० दुराहि, मूलाहि। परन्तु कुछ रूपों में पंचमी एक० का पुराना रूप भी मिलता है।

उदा० गृहात्> घरा और -तः का रूप भी पाया जाता है। उदा० उदधितः > उअहीउ। सप्तमी एक० की विभक्ति -स्मिन् >-म्मि मिलता है। परन्तु -ए रूप का भी प्रयोग होता है। संस्कृत धातु √कृ का विकास वर्तमान निश्चयार्थ में प्राचीन फ़ारसी के सदृश -कु के रूप में मिलता है। उदा० कृणोति>कुणइ, कर्मवाच्य का प्रत्यय -य >-इज्ज मिलता है। उदा० पुच्छिज्जन्तो। कर्तृवाचक संज्ञा में -त्वान >-ऊण प्रत्यय का योग मिलता है। उदा० पुच्छिऊण।

माहाराष्ट्री प्राकृत का एक भेद जैन-माहाराष्ट्री भी है जिसमें श्वेतांबर संप्रदाय की कुछ जैन रचनाएँ गद्य में मिलती हैं। चूँकि अधिकांश जैन-ग्रन्थ अर्धमागधी में ही है इसीलिये संभवतः वर्ण्य- विषय के प्रभाव के कारण अर्धमागधी की कुछ विशेषताएँ माहाराष्ट्री के लिखित ग्रंथों में भी आ गईं। परन्तु कृदंत रूपों में -तुमुन् प्रत्यय के लिये -इत्तु, और -क्त्वा, -ल्यय के लिये -इत्ता एवं क >ग व्यंजन के प्रयोग अर्धमागधी के सदृश ही होते हैं।

शौरसेनी प्राकृत

'वररुचि' ने 'प्राकृत-प्रकाश' के १२वें परिच्छेद में 'शौरसेनी-प्राकृत' का परिचय प्रस्तुत किया है। 'हेमचन्द्र' ने शौरसेनी प्राकृत की कुछ भिन्न .विशेषताओं का वर्णन अपने 'प्राकृत व्याकरण' के चं.थे पाद में सूत्र २६० से २८६ सूत्रों में किया है शौरसेनी संस्कृत से अत्यधिक प्रभावित भाषा है जिस तथ्य का उल्लेख वररुचि ने किया है।[1] ध्वनि संबंधी विशेषताओं में शब्द के मध्यवर्ती -त और -थ का क्रमशः -द और -ध रूप मिलता है।[2] उदा० गच्छति>गच्छदि, कथय>कधेहि,

१.	प्रकृतिः संस्कृतम्	सूत्र-संख्या २	द्वादश परिच्छेद	प्राकृत प्रकाश
२.	अनादावयु जोस्तथयोर्दधो	,, ३	,,	,,
	तो दोनादौशौरसेन्यामयुक्तस्य	,, २६०	चौथा पद	प्राकृत व्याकरण
	थ धः	,, २६७	,,	,,

गत>गद। परन्तु कुछ शब्दों में उक्त परिवर्तन नहीं भी मिलता और उनके स्थान पर भिन्न ध्वनियों का परिवर्तन मिलता है। जैसे -त >-ड[१] उदा० व्यापृत>वावुडो, पुत्र>पुड्डो। 'ब्रह्मण्य', 'विज्ञ', 'यज्ञ,' 'कन्यका' शब्दों में संयुक्त व्यंजन-ण्य,-ज्ञ,-न्य के स्थान पर वैकल्पिक रूप में 'ञ्ञ' का प्रयोग मिलता है।[२] उदा० ब्रह्मण्य > बम्हञ्ञ, ब्रम्हण्णं, विज्ञ >विञ्ञो, विण्णो, यज्ञ> जञ्ञो, जण्णो, कन्यका > कञ्ञका, कण्णका आदि। सर्वज्ञ शब्द में ज्ञ और 'इङ्गित' में-ङ्ग के स्थान-ण् मिलता है।[३] उदा० सर्वज्ञ> सव्वण्णो, इङ्गित> इणिणदो। संयुक्त व्यंजन र्य > -य्य का वैकल्पिक प्रयोग मिलता है अन्यथा माहाराष्ट्री के सदृश ज्ज रूप ही मिलता है।[४] 'क्ष'>क्ख। उदा० कुक्षि> कुक्खि, इक्षु > इक्खु आदि। 'स्त्री' शब्द के स्थान पर 'इत्थी'[५] और-एव>ज्जेव,[६] इव>विश्र,[७] आश्चर्य>अच्छरिश्र[८] हो जाता है।

पूर्वकालिक कृदन्त का प्रत्यय-क्त्वा<-इ,-अ मिलता है।[९] उदा० गत्वा>करिअ, गत्वा> गमिअ, पढित्वा>पढिअ, भूत्वा > भविअ। -क्त्वा > -दूण रूप भी मिलता है।[१०] उदा०

१. व्यापृते डः	सूत्रसंख्या ३	द्वादश परि०	प्रा० प्र०
पुत्रेऽपि क्वचित्	,, ४	,,	,,
२. ब्रह्मण्य-विज्ञ-यज्ञकन्यकानां ण्यज्ञ-न्यानां ञ्ञो वा	,, ७	,,	,,
३. सर्वज्ञङ्गितयोर्णः	,, ८	,,	,,
४. न वा र्यो य्यः	,, २६६	चौ० पा०	प्रा० व्या०
५. स्त्रियामित्थी	सूत्र संख्या २२	द्वादश परि०	प्रा० प्र०
६. एवस्य ज्जेव्व	,, २३	,,	,,
७. इवस्य विश्र	,, २४	,,	,,
८. आश्चर्यस्याच्छरिअं	,, ३०	,,	,,
९. क्त इ अः	,, ९	,,	,,
१०. क्त्व इय दूणौ	,, २७१	चौथा पाद	प्रा० व्या०

भूत्वा > भोइण, पठित्वा > पठिदूण। √कृ और √गम् धातुओं में -क्त्वा>हुअ मिलता है।[१] उदा० कृत्वा> गदुअ, गत्वा> गदुअ । हेमचन्द्र ने इसका विकास -डुअ रूप में दिया है। उदा० कृत्वा >कडुअ, गत्वा>गडुअ ।

धातु√दा का विभाक्तियों के जुड़ने के पूर्व वर्तमान में 'दे' रूप हो जाता है। उदा० ददाति >देदि, ददातु>देदु और भविष्य में 'दइस्स' हो जाता है।[२] दास्यामि> दइस्सं, प्रथम वहु० (जस्), द्वितीया वहु० (शस्) के नपुंसक रूपों में णि का वैकल्पिक प्रयोग और पूर्व का स्वर दीर्घ हो जाता है।[३] उदा०-जलानि, जलाइं, वणाणि, वणाइं। संस्कृत के जिन शब्दों के अन्त में -न् और उसके पूर्व -क प्रत्यय का योग हो उनका संवोधन एक० में -आ हो जाता है[४] और जिनमें -क प्रत्यय का योग नहीं होता उनके अन्त -न का अनुस्वार रूप हो जाता है।[५] उदा० कञ्चुकिन्, सुखिन् > कञ्चुइआ, सुहिआ, परन्तु राजन् > रायं, विजयवर्मन्> विजयवम्मं। 'भवत्' वर्तमानकालिक कृदंत और 'भगवत्' का भी ऐसा ही विकास मिलता है और प्रथमा एक० में भी इनका अनुस्वार रूप मिलता है।[६] उदा० भवं, भगवतं (भगवं)।

√कृ धातु का विभक्तियों के जुड़ने के पूर्व 'कर' रूप हो जाता है।[७] उदा० करोति> करोदि, करेदि, करिष्यामि> करिस्सं। √-स्था

१. कृगमोर्दुअः	सू० स० १०	द्वादश परि०	प्रा० प्र०
कृगमो डडुअ	,, २७२	चौथापद	प्रा० व्या०
२. ददातेर्देदइस्स लृटि	,, १४	द्वादश परि०	प्रा० प्र०
३. णिर्जश्शसोर्वा क्लीवे स्वरदीर्घश्च	,, ११	,,	,,
४. आ आमन्त्र्ये सौ वेनो नः	,, २६३	चौथा पाद	प्राकृत व्याकरण
५. मो वा	,, २६४	,,	,,
६. भवद्भगवतोः	,, २६५	,,	,,
७. डुकृञः करः	,, १५	द्वादश परि०	प्रा० व्या०

धातु का विभक्तियों के पूर्व 'चिट्ठ' रूप हो जाता है।[1] उदा० तिष्ठति> चिट्ठदि, स्थास्यामि> चिट्ठिस्सं; √ स्मृ धातु का 'सुमर' रूप हो जाता है।[2] उदा० स्मरति> सुमरेदि, स्मृत्वा> सुमरिअ। √दृश् धातु के स्थान पर 'पेक्ख्' मिलता है।[3] उदा०पश्यति> पेक्खदि, दृष्ट्वा> पेक्खिअ। √अस् धातु का 'अच्छ' रूप मिलता है।[4] उदा० सान्त> अच्छन्ति। परन्तु प्रथम पु० एक० वर्तमानकाल में √अस् का 'अत्थि' रूप मिलता है।[5] उदा० अस्ति>अत्थि। भविष्यकाल उत्तम पु० एक० में -'स्सं' और वैकल्पिक रूप में पूर्व का स्वर दीर्घ मिलता है।[6] उदा० गमिष्यामि> गमिस्सं, गमीसं, भविष्यामि> भविस्सं, भवीसं, करिष्यामि> करिस्सं, करीसं। भविष्यकाल में-'स्सि',-'स्स' रूप मिलते हैं, माहाराष्ट्री के सदृश-'हि' या 'ह' नहीं मिलता है।[7] उदा० भविस्सदि, पठिस्सिदि। शौरसेनी में केवल परस्मैपद की विभक्तियों का प्रयोग होता है, आत्मने का नहीं।[8] उदा० क्रियते> करीअदि, गम्यते> गमीअदि। शौरसेनी की उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त अन्य सामान्य विशेषताएँ माहाराष्ट्री प्राकृत के सदृश ही मिलती हैं। इसका उल्लेख वररुचि ने किया है।[9] हेमचन्द्र ने भी इसे प्रधान प्राकृत के सदृश माना है।[10]

---

१. स्थश्चिट्ठः	सूत्र सं०	१६	द्वा० परि०	प्राकृत-प्रकाश
२. स्मरतेः सुमरः	,,	१७	,,	,,
३ दृशेः पेक्खः	,,	१८	,,	,,
४. अस्तेरच्छः	,,	१९	,,	,,
५. तिपात्थि	,,	२०	,,	,,
६. भविष्यतिमिपा स्सं वा स्वरदीर्घश्च	,,	२१	,,	,,
७. भविष्यति स्सिः	,,	२७५	चौथा पाद	प्रा० व्या०
८. धातोर्भावकर्तृ-कर्मसु परस्मैपदम्	,,	२७	द्वादश परि०	प्रा० प्र०
९. शेषं महाराष्ट्रीवत्	,,	३२	,,	,,
१०. शेषं प्राकृतवत्	,,	२८६	चौथा पाद	प्रा० व्या०

पुरुषोत्तमदेव ने प्राकृतानुशासन में टक्क देशी-विभाषा का उल्लेख किया है और उसे संस्कृत और शौरसेनी का मिश्रित रूप माना है।[१] इसमें अकरांत के लिये उकारान्त का बाहुल्य मिलता है।[२] अकारांत तृतीया एक (टा)-एन् >-एँ, एण का वैकल्पिक प्रयोग,[३] पंचमी बहु०-भ्यस् > हं, हुं,-हिन्तो के वैकल्पिक प्रयोग[४] मिलते हैं तथा षष्ठी बहु०-आम्[५] और हुँ-हुँ[६] का प्रयोग सर्वनाम के लिये भी होता है। 'त्वम्' और 'अहम्' के लिये क्रमशः 'तुङ्ग' और 'हमं' शब्दों के प्रयोग मिलते हैं।[७] 'यथा' और 'तथा' के लिये क्रमशः 'जिध' और 'तिध' शब्द पाये जाते हैं।[८] हरिश्चन्द्र वय्याकरण के अनुसार टक्क देशी-भाषा का सम्बन्ध अपभ्रंश से है, प्राकृत से नहीं।[९]

शौरसेनी का एक भेद जैन-शौरसेनी के नाम से भी दिया गया है जिसमें दिगम्बर संप्रदाय की कुछ जैन रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। यह पहले कहा ही जा चुका है कि जैन ग्रंथों की भाषा प्राचीन अर्धमागधी थी जिसका माहाराष्ट्री से घनिष्ठ सम्बन्ध था। चूँकि इसमें शौरसेनी के साथ-त>-द, थ> ध और प्रथमा एक० में-ए>-ओ विभक्ति के रूप मिलते हैं इसलिये उक्त ग्रन्थों की भाषा को जैन शौरसेनी के नाम से दिया जाता है और जैन-माहाराष्ट्री की अपेक्षा यह रूप अधिक प्राचीन माना गया है।

१. संस्कृत शौरसेन्योः	सूत्र १ (क)	परि० १६	प्राकृतानुशासन
२. उद्बहुलम्	" २	" "	"
३. एञ्च टान्तस्य	" ३	" "	"
४. सुभ्यसोहं हुञ्च	" ४	" "	"
५. आमो वा	" ५	" "	"
६. वा (सर्वादिषु च)	" ६	" "	"
७. त्वमहंसमार्थेषु तुङ्ग हमं	" ७	" "	"
८. यथातथो जिधतिधौ	" ८	" "	"
९. हरिश्चन्द्रस्त्विमां टक्कभाषामपभ्रंशमिच्छति न प्राकृतम्	" १०	" "	"

मागधी-प्राकृत

वय्याकरणों ने मागधी प्राकृत का मुख्य आधार शौरसेनी प्राकृत दिया है[1] परन्तु मागधी की कुछ भिन्न विशेषताएँ भी हैं। मूल व्यंजन ष, स> श[2], र> ल[3], ज> य[4] व्यंजनों के प्रयोग मिलते हैं। उदा० पुरुषः> पुलिशे, विलास> विलाश, सारसः> शालशे, राजा> राया। संयुक्त व्यंजन र्य,-र्ज>-य्य मिलता है। कुछ उदाहरणों में-र्ज>-ञ्ञ भी मिलता है। उदा० कार्य> कय्य, दुर्जन> दुय्यण परन्तु वर्जति> वञ्ञदि। संयुक्त व्यंजन-क्ष> -स्क[6]-और -ख,[7]-च्छ> श्च[8], ध्य>-य्य,-य[9] रूप पाये जाते हैं। हेमचन्द्र ने अपने प्राकृत व्याकरण में मागधी में प्रयुक्त संयुक्त व्यंजनों का विकास सूत्र-संख्या २८६-२९८ में दिया है। उदा० दक्ष> दस्क, राक्षस> लस्कश, प्रेक्षति> पेस्कदि, क्षयजलधरा > खययलहला, गच्छ> गश्च, पृच्छयति> पुश्चदि, अद्य> अय्य, विद्या> यिय्या आदि। संयुक्त व्यंजन -न्य,-ण्य,-ज्ञ, ञ्ज का मागधी में -ञ्ञ हो जाता है।[10] उदा० अन्य> अञ्ञ, सामान्य> शामञ्ञ, कन्यका> कञ्ञका, पुण्य> पुञ्ञ, प्रज्ञा> पञ्ञा, सर्वज्ञ> सव्वञ्ञ,

१. प्रकृतिः शौरसेनी	सूत्र संख्या	२	परि० ११	प्रा० प्र०
२. षसोः शः	,,	३	,,	,,
३. रसोर्ल शौ	,,	२८८	चौथापाद	प्रा० व्या०
४. जोः यः	,,	४	परि० ११	प्रा० प्र०
५. र्य र्ज योर्य्यः	,,	७	,,	,,
व्रजो जः	,,	२९४	चौथापाद	प्रा० व्या०
६. शस्य स्कः	,,	८	परि० ११	प्रा० प्र०
स्कः प्रेक्षाचक्षोः	,,	२९७	चौथापाद	प्रा० व्या०
७. क्षस्य ᳲकः	,,	२९६	,,	,,
८. छस्य श्चोनादौ	,,	२९५	,,	,,
९. ज द्ययां यः	,,	२९२	,,	,,
१०. न्य-ण्य-ज्ञ-ञ्जां ञ्ञः		२९३		प्रा० व्या०

अवज्ञा > अवञ्ञा, अञ्जली > अञ्ञली, धनंजय > धणञ्जए आदि। संयुक्त व्यंजन—स्थ और-र्थ का- स्त रूप मिलता है।[1] उदा० उपस्थित > उवस्तिद, अर्थवती > अस्तवदी। मागधी सर्वनाम 'अस्मद्' का प्रथमा० एक (सु) में हगे, हके, अहके हो जाता है।[2] हेमचन्द्र ने अहं, वयं दोनों के स्थान पर 'हगे' रूप दिया है।[3] उदा० अहम् > हके, हगे, अहके, वयं संप्राप्तौ > हगे शंपत्ता। षष्ठी एक० (ङस्) में वैकल्पिक रूप से -ह और पूर्व का स्वर दीर्घ मिलता है।[4] हेमचंद्र ने इसे एक० में- आह और- बहु० में -आँह दिया है।[5] उदा० पुरुषस्य > पुलिशाह, पुलिशश्श, ईदृशस्य > एलिशाह, सज्जनानाम् > शय्यणाहँ।

प्रथमा एक० (-सु) में भूतकालिक कृदन्त -क्त से बने हुए शब्दों में विभक्ति का या तो लोप हो जाता है या उसके स्थान पर -उ का प्रयोग मिलता है।[6] उदा० हसित > हशिदु, हशिदि। अकारांत शब्दों के प्रथमा एक० (सु) का अन्त- अः > -इ,-ए मिलते हैं।[7] हेमचन्द्र ने पुलिंग अकारांत प्रथमा एक० का -ए रूप में विकास माना है। उदा० एषः राजा > एशिलाआ, एषः पुरुषः > एशे पुलिशे, मेषः > मेशे। संबोधन में अकारान्त शब्द का अन्त्य स्वर दीर्घ हो जाता है।[8] उदा० हे पुरुष > पुलिशा।

वर्तमानकालिक कृदंत -क्त का √ कृ, √ मृ, √ गम् धातुओं

१.	स्थ र्थयोस्तः	सूत्र संख्या	२९१	चौ० था० प्रा० व्या०
२.	अस्मदः सौ हके हगे अहके	,,	९	परि० १२ प्रा० प्र०
३.	अहं वयमोर्हगे	,,	३०१	चौथापाद प्रा० व्या०
४.	ङसो हो वा दीर्घश्च	,,	१२	परि०१२ प्रा० प्र०
५.	अवर्णाद्वा ङसो डाहः	,,	२९९	चौथापाद प्रा० व्या०
६.	क्तान्तादुश्च	,,	११	परि० १२ प्रा० प्र०
७.	अत इदेतौ लुक् च	,,	१०	,, ,,
	अत एत्सौ पुंसि मागध्याम्	,,	२८७	चौथा पाद प्रा० व्या०
८.	अदीर्घः सम्बुद्धौ	,,	१३	परि० १२ प्रा० प्र०

के बाद-ड रूप हो जाता है।[१] उदा० कृत> कडे, मृत> मडे, गत> गडे। पूर्वकालिक कृदंत के प्रत्यय-क्त्वा के स्थान पर -दाणि रूप भी मिलता है।[२] उदा० कृत्वा आगतः> करिदाणि आअडे।

मागधी में कुछ शब्दों का विशेष परिवर्तन मिलता है। उदा० हृदय> हडक्क[३], तिष्ठ चिष्ठ (शौरसेनी) > चिष्ठ,[४] शृगाल> शिआलक, शिआले, शिआला[५] रूप मिलते हैं।

जैसा पहले कहा जा चुका है कि मागधी का आधार वय्याकरणों ने शौरसेनी प्राकृत दिया है। हेमचन्द्र ने भी मागधी की भिन्न विशेषताओं को सूत्र संख्या २८७ से ३०१ में दे कर अंत में उसे शौरसेनी के सदृश माना है।[६]

प्राकृत भाषाओं के विवरण प्रसंग में पहले मागधी की शाकारी, चांडाली, ढक्की आदि विभाषाओं का उल्लेख किया जा चुका है। इनकी विशेषताएँ प्रायः मागधी के सदृश ही हैं इसीलिये इनको मागधी के अन्तर्गत रखा गया है। इनकी कुछ भिन्न विशेषताएँ भी मिलती हैं परन्तु वह नगण्य हैं। ढक्की को ग्रियर्सन ने 'टाक्की' के नाम से भी दिया है क्योंकि उनके अनुसार वह स्यालकोट के टक्क प्रदेश की भाषा थी। परन्तु ढक्की को मागधी के पूर्वी प्रदेश ढाका की विभाषा के रूप में और टाक्की विभाषा को शौरसेनी के अंतर्गत ही माना जाता है। जिसका उल्लेख टक्की के नाम से पहले किया जा चुका है।

१.	कृत मृत गतां क्तस्य डः	सूत्र सं०	१५	परि० १२	प्रा० प्र०
२.	क्त्वो दाणिः	,,	१६	,,	,,
३.	हृदस्य हडक्कः	,,	६	,,	,,
४.	चिष्ठस्य चिष्ठः	,,	२४	,,	,,
	तिष्ठश्चिष्ठः	,,	२९८	चौथा पाद	प्रा० व्या०
५.	शृगालस्य शिआला शिआले शिआलकाः	,,	१७	परि० १२	प्रा० प्र०
६.	शेषं शौरसेनीवत्	,,	३०२	चौथा पाद	प्रा० व्या०

शाकारी विभाषा को प्राकृतानुशासन में पुरुषोत्तमदेव ने अक्रम, विरोधात्मक, सुन्दर भावों से रहित पुनरुक्ति, अशुद्ध उपमाओं से युक्त तथा न्यायसंगत गुण से रहित भाषा माना है।[१] शाकारी की अधिकांश विशेषताएँ तो मागधी के सदृश ही है—मागध्याः शाकारी (साध्यतीति शेषः) इसका उल्लेख पहले हो चुका है। परन्तु कुछ विशेषताएँ भिन्न रूप में भी मिलती हैं। इस विभाषा में तालव्य व्यंजनों के पूर्व य का उच्चारण होता है और यह इतने ह्रस्व रूप में रहता है कि छंद-रचना में कोई अंतर उपस्थित नहीं करता। उदा० तिष्ठ> चिष्ट, य्चिष्ठ। इसमें षष्ठी एक० में -आह विभक्ति का प्रयोग मिलता है। उदा० चारुदत्तस्य> चालुदत्ताह। सप्तमी एक० -अहि, संबोधन बहु०-आहो के भी प्रयोग मिलते हैं। उदा० प्रवहणे> पवहणाहि, आसः> आहो। पिशेल के अनुसार उक्त विभक्तियाँ अपभ्रंश में भी मिलती है। ध्वनि संबंधी विशेषताओं में- त्त>श्च, श्क के अतिरिक्त -क्ख का प्रयोग 'दुष्प्रेक्ष' और 'सदृक्ष' शब्दों में मिलता है।[२] -ष्ट>-श्च हो जाता है।[३] इव>-व्व का वैकल्पिक प्रयोग मिलता है।[४] -क प्रत्यय का अधिक प्रयोग होता है।[५] शब्दों में वर्णों का लोप, आगम आदि हो जाता है।[६] संज्ञा, क्रिया आदि के रूप-विकास में विभक्तियों का परिवर्तन और लोप मिलता है।[७]

चाण्डाली विभाषा भी मागधी का एक विकृत रूप माना जाता

---

१. अपार्थमंक्रमं व्यर्थं पुनरुक्तं हतोपमम्।
न्यायकार्यादि वाह्यञ्च शकार वचनं भवेत्॥१४॥ प्राकृतानुशासन—परिच्छेद १३

२. दुष्प्रेक्षसदृक्षयो क्षस्य क्खो वा—	सूत्र संख्या	२	परि० १३	प्राकृतानुशासन
३. ष्टः श्टः	,,	३	,,	,,
४. इवस्य एवश्च	,,	८	,,	,,
५. क बाहुल्यम्	,,	६	,,	,,
६. लोपागम विकारश्च वर्णानां बहुलम्	,,	१०	,,	,,
७. व्यत्ययश्च सुप तिङस्वराणाम्	,,	११	,,	,,
स्वादेलुक् च	,,	१२	,,	,,

है।[१] इसमें प्रथमा एक० में अकारांत शब्दों में -ए और -ओ दोनों के प्रयोग होते हैं।[२] षष्ठी एक० में -श्श विभक्ति मिलती है।[३] सप्तमी एक० में -म्मि का वैकल्पिक प्रयोग होता है।[४] संयुक्त व्यंजन -ट्ट का परिवर्तन कभी-कभी नहीं होता।[५] इव>-व का वैकल्पिक प्रयोग मिलता है।[६] -'क्त्वा' प्रत्यय के स्थान पर 'इय' हो जाता है।[७] चाण्डाली विभाषा में अशिष्ट अथवा ग्राम्य-प्रयोग का बाहुल्य मिलता है।[८]

शाबरी विभाषा भी मागधी का एक विकारी रूप है। उसमें -क्ख> श्च मिलता है, -श्क नहीं[९]। उदा० पेक्ख> पेक्ख, पेश्च्। अहं> हके, हं हो जाता है।[१०] प्रथमा एक० में- ए और -इ का वैकल्पिक प्रयोग मिलता है और कभी इसका लोप भी हो जाता है।[११] संबोधन में -आ प्रत्यय का प्रयोग अनादर के भाव को दिखाने के लिये होता है।[१२] चांडाली में देशी प्रयोग भी मिलते हैं।[१३]

---

१. मागधी विकृतिः	सूत्र सं०	१ (क)	परि० १४	प्राकृतानुशासन
२. अतः सो (सा) वोदेतौ	,,	२	,,	,,
३. ङसः श्शः	,,	३	,,	,,
४. म्मिश्च ङेः	,,	४	,,	,,
५. ट्टः प्रकृत्या वा	,,	५	,,	,,
६. इवस्य वच्च (श्च)	,,	७	,,	,,
७. क्त्व इय (अ)	,,	८	,,	,,
८. ग्राम्योक्तयोर्व (ब) -हुलम्	,,	९	,,	,,
९. पेक्खस्यश्चः	,,	२	,, १५	,,
१०. अहमर्थे हकेहञ्ज	,,	३	,,	,,
११. ङे सिटि (एदितौ) सौ च	,,	४	,,	,,
सो लुइं च	,,	५	,,	,,
१२. का सम्बुद्धे नि (निं) -त्यमगौरवे	,,	६	,, १५	,,
१३. प्रायो देशीतः	,,	७	,,	,,

अर्धमागधी प्राकृत

अर्धमागधी भाषा में कुछ विशेषताएँ मागधी की हैं और कुछ माहाराष्ट्री की और इस प्रकार यह मागधी और माहाराष्ट्री से भिन्नता भी रखती है। अर्धमागधी के गद्य और पद्य की भाषा एक सी नहीं मिलती है इसका निर्देश पहले किया ही जा चुका है। प्रथमा एक० -अ: के लिए गद्य में प्राय: -ए और पद्य में -ओ मिलता है। र> ल और स>श मागधी की विशेषताएँ भी इसमें सर्वत्र नहीं मिलतीं अभयदेव ने समवयांगसुत्त तथा उवासगदसाओ में इसे उस प्रकार स्पष्ट किया है—"**अर्धमागधी भाषा यस्याम् रसौर लशौ मागध्याम् इत्यादिकम् मागधभाषा लक्षणम् परिपूर्णम् नास्ति।**" परन्तु प्रथमा एक० एकरांत रूप शावगे, भदन्ते आदि, क> ग के प्रयोग—उदा० अशोक> असोग, श्रावक> सावग आदि, षष्ठी एक० तव, संबोधन एक० का आकारांत, रूप- र> ल, स> ष के वैकल्पिक प्रयोग मागधी के सदृश ही इसमें भी पाये जाते हैं। अर्धमागधी में स्वरमध्यवर्ती व्यंजनों के लोप होने पर 'य' की अपश्रुति व्यापक रूप में मिलती हैं। उदा० स्थित,> ठिय, सागर> सायर आदि। दन्त्य व्यंजनों का विकास मूर्धन्य के रूप में अर्धमागधी की सामान्य विशेषता है। स्वरमध्यवर्ती सघोष व्यंजन का लोप प्राय: नहीं होता। उदा० लोकस्मिन्> लोगंसि। संयुक्त व्यंजन के समीकृत रूप में, एक व्यंजन का लोप और पूर्व का स्वर दीर्घ मिलता है। उदा० वर्ष> वस्स=वास। अशोकी प्राकृत में भी इसका प्रयोग मिलता है। संयुक्त व्यंजन -स्म> -अंस। उदा० अस्मि> अंसि, -स्मिन >-अंसि। संस्कृत कृदंत -त्वा> त्ता, त्ताणं, त्य>-च्चा, च्चाणं याणं। कर्तृवाचक संज्ञा—त्वया (वैदिक) और -तव्य रूपों के प्रयोग होते हैं। क्रियार्थक संज्ञा चतुर्थी एक० में -त्व का प्रयोग पूर्वकालिक के सदृश होता है। उदा०कर्तुम् > काउम, गच्छितवाय> गच्छित्तए। पूर्वकालिक क्रिया के प्रयोग- ट्टु, इत्तु.

भी मिलते हैं। उदा० कृत्वा >कट्टु, अपहृत्य> अवहट्टु, श्रुत्वा> सुणित्तु, ज्ञात्वा> जाणित्तु आदि।

अर्धमागधी की विशेषताएँ माहाराष्ट्री से कुछ भिन्न भी मिलती हैं। डॉ० ए० सी० वूल्नर ने इनका उल्लेख किया है। –एव और -अवि के पूर्व -अम्->-आम्, 'इतिवा' शब्द में और प्लुत स्वर के परे इति> -इ हो जाता है। 'प्रति' के -इ का लोप मिलता है। प्रत्युत्पन्न> पडुप्पन्न। चवर्ग वर्णों के स्थान पर तवर्ग मिलता है। उदा० चिकित्सा> तेइच्छा अहा> यथा हो जाता है। संधि व्यंजनों का भी प्रयोग मिलता है। उदा० धिग् अस्तु> धिरत्थु, अङ्गमङ्गम्मि> अङ्गऽम्। इस प्रकार अर्धमागधी प्राकृत मागधी और माहाराष्ट्री से कुछ समानता रखने के साथ निजी विशेषताएँ भी प्रदर्शित करती है।

पैशाची प्राकृत

वररुचि ने प्राकृत-प्रकाश के दसवें परिच्छेद में पैशाची की विशेषताओं का उल्लेख किया है। हेमचंद्र ने प्राकृत-व्याकरण के चौथे पाद में ३०३ से ३२४ सूत्रों में पैशाची और ३२५ से ३२८ सूत्रों में उसकी विभाषा चूलिका-पैशाची का वर्णन किया है। वररुचि ने पैशाची का आधार शौरसेनी प्राकृत स्वीकार किया है।[1] इसमें वर्ग के तीसरे और चौथे (सघोष) मध्यवर्ती मूल व्यंजन पहले और दूसरे (अघोष) होजाते हैं।[2] उदा० गगन> गकनं, मेघः> मेखो, राजा> राचा माधवः> माथपो, गोविन्दः> गोपिन्तो, केशवः> केसवो आदि। इसी प्रकार इव> पिव।[3] उदा०-कमलं इव मुखं >

१. प्रकृतिः शौरसेनी	सूत्र सं० २	परि० १०	प्रा० प्र०
२. वर्गाणां तृतीय चतुर्थयोरयुजोर—नाद्योराद्यौ	„ ३	„	„
तदोस्तः	„ ३०७	चौथा पाद	प्रा० व्या०
३. इवस्य पिव	„ ४	परि० १०	प्रा० प्र०

कमलं पिव .मुखं। मूल व्यंजन ण> न।[1] उदा-० .तरुणी> तलुनी, ल> ळ [2], उदा-० शील> सीळं, कुल> कुळं, जल> जळं, सलिलं> सळिळं, कमल> कमळं, श, ष>स[3]। उदा० शोभति> सोभत्ति, शक्रः> सक्को, विषम> विसमो आदि रूप मिलते हैं। संयुक्त व्यंजन -ष्ट- >सट।[4] उदा० कष्ट> कसटं। -स्न> -सन।[5] उदा० स्नान> सनान, स्नेह>सनेहो।-र्य>- रिय,-रिअ। उदा० भार्या> भारिआ, -ज्ञ> -ञ्ञ।[6] उदा० सर्वज्ञ> सव्वञ्ञो, विज्ञात> विञ्ञातो। न्य्>-ञ्ञ।[7] उदा० कन्या> कञ्ञा, -ण्य >ञ्ञ। उदा० पुण्य> पुञ्ञ।-र्य ज्ज >-च्च।[9] उदा० कार्यं> कच्चं।

'राजन्' के रूप-विकास में -ज्ञ संयुक्त व्यंजन का वैकल्पिक रूप में 'चिञ्' भी मिलताहै।[10] उदा०। राज्ञा>राचिञो, राज्ञः> राचिञो। वररुचि के अनुसार तृतीया एक० (टा), पंचमी एक० (ङसि), षष्ठी एक०(ङस्), सप्तमी एक० (ङि) में राजन् > राचि का वैकल्पिक

---

१ णोनः	सूत्रसंख्या ५	चौ० पाद	प्रा० व्या०
णोनः	,, ३०६	चौ० पाद	,,
२ लोलः	,, ३०८	चौ० पाद	,,
३. श-षोः सः	,, ३०६	,,	,,
४. ष्टस्य सटः	,, ६	परि० १०	प्रा० प्र०
५. स्नस्य सनः	,, ७	,,	,,
र्यस्नष्टां रिय सिन सटाः क्वचित्	,, ३१४	चौथापाद	प्रा० व्या
६. र्यस्य रिअः	,, ८	परि० दशम्	प्रा० प्र०
र्य-स्नष्टां रिय सिन सटः क्वचित्	,, ३१४	चौथा पाद	प्रा० व्या०
७. ज्ञस्य ञ्ञः	,, ६	परि० दशम्	प्रा० प्र०
८. कन्यायां न्यस्य	,, १०	,,	,,
६. र्यज च्च	,, ११	,,	,,
१०. राज्ञो वा चिञ्	,, ३०४	चौथापाद प्राकृत	व्याकरण

प्रयोग मिलता है।[१] उदा० राज्ञा> राचिना, रञ्ञा, राज्ञि>राचिनि, रञ्ञि। वररुचि ने पूर्वकालिक कृदन्त -क्त्वा> तून (तूनं)[२] और हेमचन्द्र ने -तून के अतिरिक्त -क्त्वा और उसके -ष्ट्वा रूप में -द्धून, -त्थून[३] का प्रयोग दिया है। उदा० कृत्वा> कातून (कातून), गत्वा> गन्तून, √ नह्-नद्ध्वा> नद्धून, नत्थून और दृष्ट्वा के लिये तद्धून एवं तत्थून शब्द मिलते हैं।

कर्मवाच्य में-क्य> -इय्य हो जाता है।[४] उदा० गिय्यते> गीयते। पैशाची मे प्र० एक० में संस्कृत के सदृश अकारांत धातुओं में -ति और, -ते का प्रयोग परस्मै आत्मने और दोनों पदों में क्रमशः मिलता है।[५] उदा० गच्छते, गच्छति, रमते य रमति आदि। शौरसेनी में भविष्य-रूप -स्सि> -एय्य हो जाता है।[६] पैशाची मे भविष्य के प्रयोग सुरक्षित नहीं मिलते। उसकी पूर्ति विधि -एय्य रूप द्वारा हुई है। उदा० तां दृष्ट्वा चिन्तितं राज्ञा का एपा भविष्यति> तं तद्धून चिन्तितं रञ्ञा का एसा हुवेय्य। वररुचि ने जैसा पहले कहा जा चुका है, शौरसेनी प्राकृत को ही पैशाची का आधार माना है। हेमचन्द्र ने भी उसे शौरसेनी के आधार पर विकसित माना है।[७]

हेमचन्द्र ने पैशाची प्राकृत की एक विभाषा चूलिका पैशाची का उल्लेख सूत्र-संख्या ३२५-३२८ में किया है। हेमचन्द्र ने इसमें पैशाची

---

१. राज्ञो राचि टा-ङसि	सूत्र सं०	परि० ११	प्रा० प्र०
ङस् ङिसु वा	,, १२	,,	,,
२. क्त्वस्तून	,, १३	,,	,,
क्त्वस्तूनः	,, ३१२	चौथापाद	प्रा० व्या०
३. द्धून त्थूनौ ष्ट्वः	,, ३१३	,,	,,
४. क्यस्येय्यः	,, ३१५	,,	,,
५. आत्तेश्च	,, ३१६	,,	,,
६. भविष्यत्येय्य एव	,, ३२०	,,	,,
७. शेष शौरसेनीवत्	,, ३२३	,,	,,

से कुछ भिन्न विशेषताएँ दी हैं। वर्ग के तीसरे और चौथे व्यंजन क्रमशः पहले और दूसरे हो जाते हैं।[१] उदा० नगरम्> नकरं, गिरि-तटम्> किरि-तटं, मेघः> मेखो, धर्मो> खम्मो, राजा> राचा, निर्भर> निच्छर, जीमूतः> चीमूतो, तडागम् > तटाकं, गाठम् > काठं, मदनः> मतनो, दामादेर> तामोतर, मधुरम्> मथुरं, वालकः>पालको, रभसः> रफसो, भगवती> फकवती आदि। परन्तु कुछ विद्वानों के अनुसार तृतीय और चतुर्थ वर्ण यदि शब्द के आरंभ में प्रयुक्त हों अथवा √ युज् धातु से बने शब्द हों तो उनमें उक्त परिवर्तन नहीं होता।[२] उदा० नियोजितम् >नियोजितं, वालकः > वालको, दामोदरः> दामोतरो, डमरुकः> डमरुको, भगवती> भकवती। व्यंजन र> ल का वैकल्पिक प्रयोग मिलता है।[३] उदा० गौरी> गोली, रुद्रं> लुद्दं आदि। शेष रूप हेमचन्द्र ने पैशाची के सदृश ही दिये हैं।[४]

पुरुषोत्तमदेव ने प्राकृतानुशासन में पैशाची की तीन उपभाषाएँ कैकय, शौरसेन, पाञ्चाल दी हैं। कैकय पैशाची संस्कृत शौरसेनी के आधार पर विकसित मानी गई है।[५] इसमें मूल अघोष व्यंजन क, च, ट, त, प का प्रयोग क्रमशः ग, ज, ड, द, व सघोष रूपों में मिलता है।[६] अघोष महाप्राण व्यंजन, ख, छ, ठ, थ, फ के स्थान पर सघोष महाप्राण व्यंजन क्रमशः घ, झ, ढ, ध, भ मिलते हैं।[७] कभी-

---

१. चूलिका पैशाचिके तृतीय तुर्ययोरा द्य द्वितीयौ	सूत्रसं० ३२५	चौथा पाद	प्रा० व्या०
२. नादि युज्योरन्येपाम्	,, ३२७	,,	,,
३. रस्य लो वा	,, ३२६	,,	,,
४. शेष प्राग्वत्	,, ३२८	,,	,,
५. संस्कृत शौरसेन्योर्विकृतिः	,, ३	परि० १९	प्राकृतानुशासन
६. अयुक्त (ा) ग ज ड द वानां क च ट तपा बहुलम्	,, ४	,,	,,
७ घ झ ढ धमानां खछठथफाः	,, ५	,,	,,

कभी क, ख, च, ट, त, थ, प और फ का लोप या परिवर्तन नहीं होता।[१] मूल व्यंजन ण> न हो जाता है।[२] संयुक्त व्यंजनों का स्वरभक्ति द्वारा विभाजन भी मिलता है।[3] संयुक्त व्यंजन -न्य,- -ज्ञ, -ण्य् >-ञ्ञ हो जाता है।[४] पद्म> पखम, सूक्ष्म> सुखम मिलता है।[५] विस्मय> पिसुमश्र[६], गृहं> किहकं[७], हृदयं> हिरयकं,[८] इव> पिव,[९] क्वचित्> कुपच्चि[१०] शब्द मिलते हैं। पूर्वकालिक कृन्दत -क्त्वा प्रत्यय के स्थान पर- तूनं प्रत्यय मिलता है।[११] तृतीया एक० (टा), पंचमी एक० (ङसि), षष्ठी एक० (ङस्), सप्तमी एक० (ङि) में राजन्> राचि का वैकल्पिक प्रयोग मिलता है।[१२] उदा० राचिना, रञ्ञा, राचिनो, रञ्ञो, राचिनि> रञ्ञि। 'यूयं' के स्थान पर 'तुप्फे' और 'वयं' के लिये 'अप्फे' शब्दों के प्रयोग मिलते हैं।[१३] √ भू धातु का विकास 'हु' और 'हुव' रूपों में होता है।[१४]

---

१. कखचटठतथपफ (ा) प्रकृत्या	सूत्र सं० ६	परि० १६	प्राकृतानुशासन
कखादीनां चान्यत्र	,, ७	,	,,
२. णो नः	,, ८	,,	,,
३. युक्तानां विकर्षः	,, ६	,,	,,
४. न्यज्ञण्यानां ञ्ञः	, १०	,,	,,
५. पद्मसूक्ष्मयोः पखम सुखमौ	,, ११	,,	,,
६ विस्मयस्य पिसुमश्रं	,, १५	,,	,,
७. गृहस्य किहकम्	,, १६	,,	,,
८. हृदयस्य हिरयकम्	,, १७	,,	,,
६ इवस्य पिव	,, १६	,,	,,
१० क्वचित् कुपच्चिः	,, २०	,,	,,
११. क्त्वा तूनं	,, २१	,,	,,
१२. टाङसिङसङिषु राज्ञो राचिर्वा	,, २२	,,	,,
१३. यूयं वयमर्थे तुप्फे अप्फे च	,, २३	,,	,,
१४. भवतेर्होहुवौ	, २४	,,	,,

-का बाहुल्य होता है ।[१] कैकेयी में शब्दों की पुनरुक्ति मिलती है ।[२] गौड़ी में समास पदों की विशेषता पाई जाती है ।[३] ब्राचड़ अपभ्रंश में ष, स > श[४] मिलता है, भृत्य शब्द को छोड़कर 'र' और ऋकार ध्वनियों में कोई परिवर्तन नहीं होता ।[५] इसमें चवर्ग (तालव्य) ध्वनियाँ माहाराष्ट्री और शौरसेनी प्राकृत के सदृश दन्त्य-तालव्य न होकर शुद्ध तालव्य होती हैं ।[६] त् और ध् ध्वनियों का स्पष्ट उच्चारण नहीं मिलता ।[७] शब्द के आदि में प्रयुक्त -त् औ ड् के स्थान पर ट् और द् क्रमशः मिलते हैं ।[८] खण्ड > खण्डु [९], एव > जे, जि, [१०], √भू के स्थान पर यदि वह प्र-के बाद हो तो 'भो' रूप हो जाता है,[११] -क्त के पूर्व √भू धातु का रूप सुरक्षित रहता है ।[१२] √व्रज धातु के स्थान पर वञ्ञ मिलता है ।[१३] वृष > वर्द होता है ।[१४] ब्राचड़ का शेष रूप अपभ्रंश के लौकिक (परंपरित) रूप के सदृश ही कहा गया है ।[१५]

---

१. इकारौकार प्रायो लट्टी (प्रायौड्री) सूत्र सं० २० परि० १८ प्राकृतानुशासन
२. सवीप्साप्रायो कैकेयी ,, २१ ,, ,,
३. असमा (बहुसमासा) गौडी ,, २२ ,, ,,
४. षसोः शः ,, २ ,, ,,
५. रऋतौ प्रकृत्याभृत्यवर्जन् ,, ३ ,, ,,
६. चवर्गः स्पष्टतालव्यः ,, ४ ,, ,,
७. तथौ चास्पष्टौ ,, ५ ,, ,,
८. पदादौ तड्योः टदौ च ,, ६ ,, ,,
९. खण्टस्यखण्डुः ,, ७ ,, ,,
१०. जेजि चैवस्य ,, ८ ,, ,,
११. भवतोर्भोऽप्रादे ,, ९ ,, ,,
१२. क्ते भूः ,, १० ,, ,,
१३. व्रजेर्वञ्ञ ,, ११ ,, ,,
१४. वृषेर्वदः ,, १२ ,, ,,
१५. शेषं प्रयोगात् ,, १३ ,, ,,

तीसरा अध्याय

प्राकृत की ध्वनि संबंधी विशेषताएँ

भारतीय प्राचीन आर्य भाषा-वैदिक की बोलियों का उल्लेख पहले हो ही चुका है। इन बोलियों के स्वरों तथा पद रूपों की विभिन्न स्थानीय विशेषताओं को लिये हुए अनेक प्राकृत रूपों का विकास हुआ। प्राकृत भाषाओं की पहली स्थिति-पालि तथा अशोकी अथवा शिलालेखी प्राकृत में मुख्य प्राकृतों की अपेक्षा कम परिवर्तन मिलते हैं।

प्रारंभिक स्थिति पालि में वैदिक स्वरों का परिवर्तन पर्याप्त रूप में मिलने लगता है। उदा० ऋ> अ, इ, उ, ए और व्यंजन-रूप र, रु का भी विकास हो जाता है। उदा० कृपण> कपण, कृषि> कसि, ऋषि>इसि, ऋण >इण, तृण> तिण, ऋतु> उतु, वृषभ> उसभ, गृह> गेह, वृक्ष>रुक्ख, बृहत्>ब्रहा, ऐश्वर्य>इस्सरिय। संस्कृत संयुक्त स्वर ऐ, औ का पालि में परिवर्तन हो जाता है। उनके स्थान पर क्रमशः ए, ओ रूप मिलते हैं। उदा० मैत्री> मेत्ती, औषध> ओषध, औ>उ भी मिलता है। उदा० औत्सुक्यं>उस्सुक्कं। संयुक्त व्यंजनों और अनुस्वार के पूर्व दीर्घ स्वरों का प्रायः ह्रस्व रूप होजाता है। उदा० कार्य> कज्ज, लतां> लतं। पालि में स्वरों का परस्पर व्यत्यय भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है। उदा० -अ>इ—कस्य>किस्स, तमिस्रा> तिमिस्सा, -अ> उ। उदा० सद्यः>सज्जु, उन्मज्जति>उम्मुज्जति, अ> ए। उदा० अत्र>एत्थ, फल्गु>फेल्गु, शय्या>सेज्जा, अ> ओ। उदा०

के स्थान पर-इलि,-लि,-अ मिलते है। उदा० क्लृप्त> किलित्त।[1]

वैदिक सन्धिस्वर ऐ, औ> ए, ओ मूलस्वर मिलते हैं। उदा० ऐ> ए।[2] शैल> सेल, ऐतिहासिक> एदिहासिअ, वैद्य> वेज्ज। संधिस्वर ऐ > संयुक्तस्वर अइ[3], दैत्य> दइच्च, भैरव> भइरव, दैव> दइव, औ> ओ[4], कौमुदी> कोमुई (माहा०) कोमुदी (शौ०), यौवन > जोव्वण। संधिस्वर औ > संयुक्तस्वर आउ।[5] पौरुष> पउरुस, कौरव> कउरव, पौर> पउर। यह परिवर्तन माहाराष्ट्री तथा कुछ उप-प्राकृतों में ही मिलता है, शौरसेनी और मागधी प्राकृतों में नहीं मिलता।

शब्द में संयुक्त व्यंजन के पूर्व ह्रस्व स्वर तथा असंयुक्त व्यंजन के पूर्व दीर्घ स्वर का प्रयोग प्रायः सभी प्राकृत भाषाओं की विशेषता है।[6] वैसे शौरसेनी और मागधी की अपेक्षा माहाराष्ट्री, अर्धमागधी में यह प्रवृत्ति अधिक मिलती है। उदा० मनुष्य> मणुस्स (शौ०) मणूस (माहा०), अश्व>अस्स (शौ०) आस (माहा०), उत्सव>ऊसव (शौ०, माहा०)। जिह्वा> जीहा, मार्ग> मग्ग, वर्ष> वस्स, वास।

कभी-कभी असंयुक्त व्यंजन के पूर्व दीर्घस्वर की अपेक्षा सानुस्वार स्वर भी मिलता है। उदा० अश्रु>अंसु, स्पर्श>फंस, दर्शन>दंसण।

१. लृतः क्लृप्त इलि	सूत्र सं०	३३	प्र०	परि०	प्रा०	प्र०
लृत इलिः क्लृप्त क्लृन्ने	,,	१४५	,,	पा०	,,	व्या०
२. ऐत एत्	,,	३५	,,	परि०	,,	प्र०
ऐत एत्	,,	१४८	,	पा०	,,	व्या०
३. दैत्यादिष्वइ	,,	३६	,,	परि०	,,	प्र०
अइर्दैत्यादौ च	,,	१५१	,,	पा०	,,	व्या०
४. औत ओत्	,,	४१	,,	परि०	,,	प्र०
औत ओत्	,,	१५९	,,	पा०	,,	व्या०
५. पौरादिष्वउ	,,	४२	,,	परि०	,,	प्र०
अउः पौरादौ च	,,	१६२	,,	पा०	,,	व्या०
६. इत् सिंह जिह्वयोश्च	,,	१७	,,	परि०	,,	प्र०
ईर्जिह्वासिंहत्रिंशद्विंशतौ त्या	,,	९२	,,	पा०	,,	व्या०

कुछ शब्दों में संयुक्त व्यंजन के अनुनासिक स्वर का लोप हो कर पूर्व का स्वर दीर्घ मिलता है। उदा० दंष्ट्र> दाढ, सिंह> सीह। कभी-कभी असंयुक्त व्यंजन के पूर्व दीर्घ स्वर ह्रस्व और बाद वाले व्यंजन का द्वित्व-रूप हो जाता है। उदा० तैल> तेल्ल, प्रेम> पॅम्म, एवम्> एव्वं, यौवन> जोॅव्वण, शौरसेनी में एव> जेव, जेव्व। ह्रस्व स्वर के बाद में यह -ज्जेव, -ज्जेव्व हो जाता है।

प्राकृत भाषाओं के शब्दों में प्रयुक्त एक स्वर के स्थान पर दूसरे स्वर का प्रयोग भी मिलता है। इसे स्वर-व्यत्यय का उदाहरण कहा जा सकता है। उदा० अ> इ[1] -ईषत्> इसि, पक्व> पिक, वेतस> वेडिस, व्यजन> विअण, मृदंग> मुइंग, अंगार> इंगाल, ललाट> णिडाल, तस्य> तिस्स, मध्यम> मज्झिम (माहा०), मज्झम (शौ०)। अ> उ। माहाराष्ट्री और अर्ध-मागधी में यह परिवर्तन अधिक मिलता है। उदा० प्रलोकयति> पुलोएदि। सर्वज्ञ> सव्वण्णु। -अ> -ए[2], उदा० शय्या> सेज्जा, सौन्दर्य> सुन्देर, त्रयोदश> तेरह, आश्चर्य> अच्छेर, वल्लि> वेल्लि। आ> अ[3]- तथा> तह, यथा> जह, प्राकृत> पउअ, उत्खतादि> उक्खयं। आ> इ[4] का प्रयोग विकल्प से मिलता है।

१ ईद् ईषत् पक्व-स्वप्न-वेतस-व्यजन मृदंगारेषु	सूत्र सं	३	द्वि० परि०	प्रा० प्र०
पक्वाङ्गार-ललाटे वा	,,	४७	प्र० पा०	प्रा० व्या०
मध्यम कतमे द्वितीयस्य	,,	४८	,,	,,
ई स्वप्नादौ	,,	४६	,,	,,
२. ए शय्यादिषु	,,	५	द्वि० परि०	प्रा० प्र०
एच्छय्यादौ	,,	५७	प्र० पा०	प्रा० व्या०
३. अद आतो यथादिषु	,,	१०	द्वि० परि०	,, प्रा०
वाव्ययोत्खातादावदातः	,,	६७	प्र० पा०	,, व्या०
४. इत सदादिषु	,,	११	द्वि० परि०	,, प्रा०
इः सदादौ वा	,,	७२	प्र० पा०	,, व्या०

उदा० सदा>सइ, तदा>तइ, जल्पामः> जम्पिमो (माहा०)। इ> अ[1] पृथ्वी>पुहवी, हरिद्रा>हलद्दा, पृथ्वी>पुहुई, प्रतिश्रुत> पडंसुआ आदि। इ> उ[2]-इक्षि>इच्छु (माहा०), वृश्चिक>विच्छु, इ>ए[3]-एत्था >इत्था, पिंड> पेण्ड, विष्णु>वेण्हु। ई>ए[4]-नीड> नेड, कीदृश>केरिस, ईदृश> एरिस। उ> अ[5],-मुकुल>मउल, गुरुक> गरुअ। उ>इ,[6]-पुरुष>पुरिस, भ्रकुटि>भिउडी, उ>ओ,[7]-पुष्कर> पोखर, पुस्तक>पोत्थअ, मुग्दर>मोग्गर। ऊ> अ[8]। दुकूल> दुअल्ल। ऊ>ए,[9]-नूपुर>नेउर, मूल्य>मोल्ल, ताम्बूल>तम्बोल। ए> इ,[10]-वेदना>विअना, देवर>दिअर, एतेन> एतिना, मैत्रेय>मित्तेअ।

१. अथ पथि हरिद्रा पृथिवीषु	सूत्र सं०	१३	द्वि० परि०	प्रा०	प्र०
पाथि-पृथ्वी प्रतिश्रुन्मूषिक					
हरिद्राविभीतकेष्वत्	,,	८८	प्र० पा०	,,	व्या०
२. उद् इक्षु-वृश्चिकयोः	,,	१५	द्वि० परि०	,,	प्रा०
३. इत एत पिण्डसमेषु	,,	१२	,,	,,	
इत एद्वा	,,	८५	प्र० पा०	,,	व्या०
४. एत नीडा पीड कीदृशेदृशेषु	,,	२६	द्वि० परि०	,,	प्र०
५. अत मुकुटादिषु	,,	२२	द्वि० परि०	,,	,,
उतो मुकुलादिष्वत	,,	१०७	प्र० पा०	,,	व्या०
६. इत् पुरुषे रोः	,,	२३	द्वि० परि०	प्रा०	प्र०
पुरुषे रोः	,,	११०	प्र० पा०	,,	व्या०
ई भ्रुकुटौ	,,	१११	,,		,,
७. उत तुण्ड रूपेषु	,,	२०	द्वि० परि०	,,	प्र०
ओत्संयोगे	,,	११६	प्र० पा०	,,	व्या०
८. अद् दुकूले वा लस्य द्वित्वम्	,,	२५	द्वि० परि०	,,	प्र०
दुकूले वा लश्च द्विः	,,	११९	,, पा०	,,	व्या०
९. एत् नूपुरे	,,	२६	द्वि० परि०	,,	प्र०
इदेतो नूपुरे वा	,,	१२३	प्र० पा०	,,	व्या०
१० एत इद् वेदना देवरयो	,,	२४	द्वि० परि०	,,	प्र०
एत इद्वा वेदना चपेटा देवर केसरे	,,	१४६	प्र० पा०	,,	व्या०

ऐ> इ।[1] सैन्धव> सिन्धव, शैन्य> सिन्न, ऐश्वर्य> इस्सरिय, ऐ> ई। धैर्य> धीर, एकैक> इकीक, एकीक।[2] ओ> अ[3]- का विकल्प से प्रयोग मिलता है। उदा० प्रकोष्ठ> पवठ्ठो। द्वित्व व्यंजन के पूर्व ओ> उ[4] हो जाता है। उदा० अन्योन्य> अण्णुण्ण, अण्णोण्ण(माहा०), एकोनविंशति> एकुनवीस। औ> आ[5], उदा० गौरव> गारव, पौलिन्द> पारिंद, औ> उ[6], उदा० सौन्दर्य> सुन्देर, शौंड> सुंड, दौवारिक> दुव्वारिअ। अव > ओ[7], उदा० लवण> लोण, नवमालिका> णोमालिआ। अय> ओ[8], उदा० मयूर> मोर (मऊर), मयूख> मोह (मऊह)। शब्द में-तु के पूर्व, 'अ' के योग से 'ओ' का विकास- मिलता है।[9] उदा० चतुर्थी> चोत्थी (चउत्थी), चतुर्दशी> चोद्दही (चउद्दही)। अय> ए, उदा०

---

१. इत सैन्धवे	सूत्र सं०	३८	द्वि० परि०	प्रा० प्र०	
इत सैन्धव शनैश्चरे	,,	१४९	प्र० पा०	,,	व्या०
२. ईद् धैर्ये	,,	३९	द्वि० परि०	,,	प्र०
ई धैर्ये	,,	१५५	प्र० पा०	,,	व्या०
३. ओतोऽद वा प्रकोष्ठे कस्य वः		४०	प्र० परि०	,,	प्रकाश
४. ओतोद्वान्दोन्य प्रकोष्ठातोद्य-शिरो वेदना मनोहर-सरोरुहे क्तोश्च वः	,,	१५६	प्र० पाद	,,	व्या०
५. आच्च गौरवे	,,	४३	द्वि० परि०	,,	प्र०
आच्च गौरवे	,,	१६२	प्र० पाद	,,	व्या०
६. उत् सौन्दर्यादिषु	,,	४४	द्वि० परि०	,,	प्र०
उत्सौन्दर्यादौ	,,	१६०	प्र० पाद	,,	व्या०
७. लवण नवमल्लिकयोर्वेन	,,	७	द्वि० परि०	,,	प्र०
८. मयूर मयूखयोर्व्वा वा	,,	८	,, ,,	,,	,,
९. चतुर्थी-चतुर्दश्योस्तुना	,,	९	,, ,,	,,	,,
न वा मयूख-लवण-चतुर्गुण-चतुर्थ-चतुर्दश-चतुर्वार-सुकुमार कुतूहलो दूखलोत्भूखले	,,	१७१	प्र० पाद	,,	व्या०

कथयतु> कधेदु। दीर्घ ई> ह्रस्व इ[1], उदा० पानीय> पाणिअ, अलीक> अलिअ, तृतीय> तइअ, द्वितीय> दुइअ, गभीर> गहिर, इदानीं> दाणिं। दीर्घ ऊ> ह्रस्व उ[2]। उदा० मधूक>महुअ, कौतूहल> कोउहल। प्राकृत के शब्दों में स्वरों के परिवर्तन के अतिरिक्त स्वर -लोप के भी उदाहरण मिलते हैं। यह लोप आदि, मध्य, और अन्त्य प्रकार का होता है। उदा० अरण्य>रण्णं[3], अपि> पि, वि, अहं> हकं में अ स्वर का लोप हुआ है। इदानीं> दाणिं, इव, एव> व,[4] इति>ति आदि में इ स्वर का लोप, उपवसथ,>पोसथ, उदक> दग, एनं> णं में उ, और ए का लोप मिलता है।

असंयुक्त व्यंजनों का विकास

प्राचीन आर्य-भाषा में असंयुक्त और संयुक्त दोनों प्रकार के व्यंजनों का व्यापक प्रयोग किया जाता था। असंयुक्त व्यंजनों की संख्या उन्तालीस थी। परन्तु मध्यकालीन आर्य भाषाओं में ये सभी व्यंजन सुरक्षित नहीं रहे। इनमें से संस्कृत शब्दों के मध्य में प्रयुक्त कुछ व्यंजनों का या तो लोप हो गया या उनका परिवर्तन कर दिया गया। यह अवश्य है कि अधिकांश व्यंजन ज्यों के त्यों प्रयुक्त होते रहे उनमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। यहाँ पर कुछ असंयुक्त व्यंजनों के लोप और परिवर्तन का ही संक्षिप्त विवरण दिया जायगा।

पालि में संस्कृत के मूल और संयुक्त व्यंजनों के परिवर्तन तथा लोप के अनेक उदाहरण मिलते हैं। स्वरमध्यवर्ती अघोष व्यंजन

---

१. इद् ईतः पानीयादिषु सूत्र सं० १८, द्वि० परि० प्रा० प्र०
पानीयादिष्वित् ,, १०१ प्र० पाद ,, व्या०
२. उद् ऊतो मधूके ,, २४ द्वि० परि० ,, प्र०
कुतूहले वा ह्रस्वश्च ,, ११७ प्र० पाद ,, व्या०
३. लोपोऽरण्ये ,, ४ द्वि० परि० ,, प्र०
४. इवे लोपः ,, १७ ,, ,, ,, ,,

सघोष, महाप्राण व्यंजन प्रायः हकार के रूप में विकसित मिलते हैं। परन्तु सघोष के स्थान पर अघोष और महाप्राण के लिये अल्पप्राण व्यंजनों के प्रयोग भी पालि में यत्र-तत्र मिल जाते हैं। विसर्ग का भी पालि में प्राय: -ओ रूप हो जाता है। अघोष के स्थान पर सघोष के कुछ उदाहरण ये हैं—क > ग, उदा० मूकः > मूगो, च> ज, लकुचं> लकुजं, ट> ड। उदा० लेष्टु>लेड्डु, त> द। उदा० वितस्तिः> विदत्थि। सघोष के स्थान पर अघोष व्यंजन के भी अल्प प्रयोग मिलते हैं। ग> क। उदा० भृङ्गार> भिङ्कारो, प्राजयति> पाचेति, द> त। उदा० कुसीद:> कुसीतो, ब> प। उदा० अलाबु> अलापु। अल्पप्राण व्यंजनों का महाप्राण-रूप हो जाता है। ग>घ। उदा० गृहं> घर। ट> ठ। उदा० कण्टकं> कण्ठकं। त>थ। उदा० तुषः> थुसो, प>फ। उदा० पलितः> फलितो। ध> ह, प्राघुणः> पाहुणो। भ> ह। उदा० प्रभवति> पहोति। फ> प, उदा० स्फोटयति> पोठेति।

पालि शब्दों में प्रयुक्त मूल व्यंजनों का परस्पर व्यत्यय भी मिलता है। उदा० क> ट। उदा० कक्कोलं> टक्कोलं, क> य, व,। उदा० स्वकं> सयं, लकुचं> लवुजं, च> त। उदा० चिकित्सा> तिकिच्छा, ज> द। उदा० ज्योत्स्ना> दोसिना, ज> य, उदा० निजं> नियं। ट> ल। उदा० स्फटिक> फळिक, ण> न। उदा० चिरेण> चिरेन, त> ट। उदा० चेतक> चेटक, आर्त:> अट्टो, प्रति> पटि, ट > ळ। खेट> खेळ, थ > ल। उदा० सिथिल> सठिल, ग्रंथि> गण्ठि, द > ळ, ठ। उदा० दोहद > दोहळ, दोहल, उदार > उळार, द> ड। उदा० दंश >डंसो, द> य। उदा० खादित: > खायितो, ध> ल। उदा० गोधिका> गोलिका, न> ण अवनतं> ओणतं, न> ल। एन:> एलं, प> क। उदा० पिपीलकः> किपिल्लको, भ > ध। उदा० अभिप्रेत > अधिप्पेतो, य > व। उदा० आयुध> आवुध, य> ज,

उदा० गवयः > गवजो, य > ल। उदा० यष्टि > लट्ठि, य > ह उदा० रणंजयः > रणंजहो, र > ल। उदा० रुद्र > लुद्द, रोम > लोम, ल > न। उदा० ललाट > नलाटं, श > छ। उदा० शवः > छवो, श > ड। उदा शाकं > डाकं, प > छ। उदा० षष्ठः > छट्ठो, प > ढ, उदा० आकर्षणं > आकड्ढनं। ह > घ, भ। उदा० इह > इध, गह्वर > गब्भर।

मुख्य प्राकृतों में शब्द के मध्य में प्रयुक्त क, ग, च, ज, त, द, प, व, य, व का प्राय: लोप हो जाता है।[1] उदा० मुकुल > मउल, नकुल > णउलं, काक > काअ, सागर > साअर, नगर > णअर वचन > वअणं, सूची > सूई, गज > गअ, रजत > रअद कृत > कअं, मद > मअ, कपि > कइ, विपुल > विउल, नयन > णअणं, जीव > जीअ, दिवस > दिअहो, अलाबू > अलाऊ। उपर्युक्त वर्णों के अतिरिक्त शब्दों के मध्य में प्रयुक्त कुछ अन्य व्यंजनों के भी परिवर्तन मिलते हैं। -म व्यंजन का लोप मिलता है।[2] उदा० यमुना > जउँणा, चामुन्डा > चाउँण्डा, कामुक > काउँअ आदि। शब्दों के मध्य में प्रयुक्त व्यंजनो का परिवर्तन भी प्राकृत भाषाओं की एक सामान्य विशेषता है। कुछ शब्दों में -क का परिवर्तन अनेक व्यंजना- रूपों में हुआ है। उदा० क > ह।[3] उदा० स्फटिक > फलिहो, निकष > णिहसो,

---

1. क-ग-च-ज-त-द-प-य-वां प्रायो लोपः सूत्र नं० २ परि० २ प्रा० प्र०
„ „ „ „ १७७ प्र० पा० „ व्या०
बो वः „ २३७ „ „
2. यमुनायां यस्य च „ ३ परि० २ „ प्र०
यमुना-चामुण्डा-कामुकातिमुक्तके मोऽनुनासिकश्च „ १७८ प्र० पा० „ व्या०
3. स्फटिक निकषचिकुरेषु कस्य हः „ ४ परि० २ „ प्र०
निकषस्फटिक चिकुरे हः „ १८६ प्र० पा० „ व्या०
कुब्ज कर्पर कीले कः खोऽपुष्पे „ १८१ „ „

चिकुर> चिहुर, क> ख। उदा० कुब्ज> खुज्ज, कर्पर> खप्पर, क> भ[1], उदा० शीकर> सीभर। क> म[2],उदा० चंद्रिका>चन्द्रिमा।

इसी प्रकार -त व्यंजन का परिवर्तन अनेक व्यंजन-रूपों में मिलता है। उदा० त> द[3]-उदा०-ऋतु> उदु, रजत> रअदं, आगत> आअद, सुकृति> सुइदी। उक्त ध्वनि-परिवर्तन शौरसेनी प्राकृत की प्रमुख विशेषता है। इसी प्रकार थ> ध का विकास भी क्रमिक रूप में मिलता है। उदा० यथा> जधा, कथयतु>कधेदु। शिलालेखी प्राकृत में भी यह परिवर्तन मिलता है। उदा० सातवाहन>सादवाहन। त>ड[4] उदा० प्रति>पडि, वेतस>वेडिसो, पताका>पडाआ प्रतिच्छन्द:> पडिच्छन्दो। त>ह[5]-वसति>वसही, भरत> भरहो, त> ण[6]-उदा० गर्भित> गब्भिणं, ऐरावत> एरावणो।[7]

प्राकृत शब्दों में -द व्यंजन का विकास भी अन्य व्यंजन-रूपों में हुआ है। उदा० द> ल[8], उदा० प्रदीप्त> पलित्तं, कदम्ब> कलम्बो,

१. शीकरे भः	सूत्र सं०	५	परि० २	प्रा० प्र०
शीकरे म-हौ वा	,,	१८४	प्र० पाद	,, व्या०
२ चन्द्रिकायां मः	,,	६	परि० २	,, प्र०
,, ,,	,,	१५८	प्र० पा०	,, व्या०
३. ऋत्वादिषु तो दः	,,	७	परिच्छेद २	,, प्र०
४. प्रतिवेतस पताकासु डः	,,	८	,,	,,
प्रत्यादौ डः	,,	२०६	प्र० पा०	,, व्या०
५. वसति भरत योर्हः	,,	९	परि० २	,, प्र०
६. गर्भिते णः	,,	१०	,,	,,
गर्भितातिमुक्तके णः	,,	२०८	प्र० पा०	,, व्या०
७ एरावते च	,,	११	परि० २	,, प्र०
८. प्रदीप्त कदम्ब-दोहदेषु दो लः	,,	१२	,,	,,
प्रदीपि-दोहदे लः	,,	२२१	प्र० पा०	,, व्या०

दोहद>दोहलो, द>र[1]-उदा० गद्गद>गग्गर। संख्यावाचक शब्दों में भी उक्त परिवर्तन उपलब्ध होता है।[2] उदा० एकादश>एआरह, द्वादश>बारह, त्रयोदश>तेरह, अष्टादश>अठारह। परन्तु यह परिवर्तन संख्यावाचक शब्दों में संयुक्त व्यंजन के साथ प्रयुक्त -द का नहीं मिलता। उदा० चतुर्दश> चउद्दह।

इसी प्रकार शब्द के मध्य में प्रयुक्त -प वर्ण का परिवर्तन कई व्यंजन-रूपों में हुआ है। उदा० प> व[3], उदा० शाप> सावो, शपथ> सवहो। परन्तु शब्द के मध्य में प्रयुक्त -प का प्रायः लोप भी हो जाता है। प> म [4], उदा० आपीड> आमेलो।

-य ध्वनि के स्थान पर -ज्ज,[5] ह[6] व्यंजनों के प्रयोग मिलते हैं। उदा० उत्तरीय> उत्तरिज्जं, करनीय> करणिज्जं, छाया>छाहा, ब> म[7], उदा० कबन्ध>कमन्धो, ट>ड[8], उदा० नट> णडो, विटप>

---

१ गद्गदे रः	सूत्र संख्या	१३	परि० २	प्रा० प्र०
२. संख्यायां च	,,	१४	,,	,,
संख्या-गद्गदे रः	,,	२१६	प्र० पा०	,, व्या०
३. पो वः	,,	१५	परि० २	,, प्र०
पो वः	,,	२३१	प्र० पा०	,, व्या०
४ आपीडे मः	,,	१६	परि० २	,, प्र०
नीपापीडे मो वा	,,	२३४	प्र० पा०	,, व्या०
५. उत्तरीयानीययोर्ज्जो वा	,,	१७	परि० २	,, प्र०
...दीये ज्जः	,,	२४५	प्र० पाद	,, व्या०
६. छायायां हः	,,	१८	परि० २	,, प्र०
छायायां होकान्तौ वा	,,	२४६	प्र० पाद	,, व्या०
७. कबन्धे बो मः	,,	१६	परि० २	,, प्र०
,, म-यौ	,,	२३६	प्रथम पाद	,, व्या०
८. टो डः	,,	२०	परि० २	,, प्र०
,,	,,	१६५	प्र० पाद	,, व्या०

विडवो, कट्ट>कडु, ट>ढ[1], उदा० सटा>सढा, शकट> स-अढो, कैटभ>केढवो, ट>ल[2], उदा० स्फटिक>फलिहो, ड>ल,[3] उदा० तडाग>तलाअ, दाडिम्ब> डालिम, ठ> ढ[4], उदा० मठ>मढ, जठर> जढरं, कठोर> कठोरं, ठ> ल्ल[5], उदा० अंकोठ> अंकोल्लो, फ>भ[6], उदा० शेफालिका>सेभालिआ, शफरी>सभरी।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि संस्कृत शब्दों के मध्य में प्रयुक्त कुछ व्यंजनों के स्थान पर प्राकृत शब्दों में भिन्न व्यंजनों को प्रयोग मिलते हैं। असंयुक्त व्यंजनों में से कुछ व्यंजन ऐसे भी हैं जिनका बिल्कुल रूप-परिवर्तन तो नहीं होता परन्तु लुप्त-ध्वनि के स्थान पर उसका एक अंश प्राय: वर्तमान रहता है। इस प्रकार के उदाहरण कुछ महाप्राण व्यंजनों के ही मिलते हैं, जिनके स्थान पर केवल -ह ध्वनि सुरक्षित रहती है। उदाहरण के लिये ख, घ, थ, ध, भ> ह का विकास मिलता है।[7] उदा० मुख> मुह, मेखला> मेहला, मेघ> मेहो, गाथा> गाहा, यथा> जहा,

१. सटा शकट कैटभेषु ढः	सूत्र० सं० २१	परि० २	प्रा०	प्र०
सटा-शकट कैटभे ढः	,, १९६	प्र० पाद	,,	व्या०
२. स्फटिके लः	,, २२	परि० २	,,	प्र०
,, ,,	,, १९७	प्र० पाद	,,	व्या०
३. डस्य च	,, २३	परि० २	,,	प्र०
डो-लः	,, २०२	प्र० पाद	,,	व्या०
४ ठो ढः	,, २४	परि० २	,,	प्र०
,,	,, १९९	प्र० पाद	,,	व्या०
५ अंकोठे ल्लः	,, २५	परि० २	,,	प्र०
,, ,,	,, २००	प्र० पाद	,,	व्या०
६. फो भः	,, २६	परि० २	,,	प्र०
फो भ हौ	,, २३६	प्र० पाद	,,	व्या०
७.ख-घ-थ-ध-भां हः	,, ८७	परि० २	,,	प्र०
,, ,,	,, १८७	प्र० पाद	,,	व्या०

राधा> राहा, बधिर> बहिरो, सभा> सहा। परन्तु कुछ शब्दों में इस प्रकार का परिवर्तन नहीं पाया जाता। उदा० प्रखर> पखलो, प्रलम्ब> पलंबणो, अधीर> अधीरो।

संस्कृत शब्दों में -थ,- ध के स्थान पर प्राकृत में -ढ का प्रयोग मिलता है।[१] उदा० प्रथम> पढमो, शिथिल> सिढिलो, औषध> ओसुढ , इसी प्रकार -भ> व[२]- उदा० कैटभ> केढवो. ऋषभदत्त> उसवदात. भ> व, उदा० अभय> अवय। महाप्राण व्यंजनों के महाप्राणत्व का लोप द्राविड़ी और ईरानी प्रभाव के फलस्वरूप माना जाता है।

इसी प्रकार र> ल[३] उदा० हरिद्रा> हलद्दा, चरण> चलणो, मुखर> मुहलो, करुण> कलुण, अङ्गुरी> अङ्गुली, अङ्गार> इङ्गालो, सुकुमार> सोमालो (सुउमालो), र>ल का प्रयोग जिसका निर्देश पहले प्राकृत भाषाओं की विशेषता के अंतर्गत हो चुका है मागधी प्राकृत की एक प्रधान विशेषता है। संस्कृत व्याकरणों में भी 'रलयोर -भेद:' सूत्र काफी व्यापक है। उदा० रोहित> लोहित, रोम> लोम, किर> किल।

उपर्युक्त उदाहरणों में प्रायः ऐसे असंयुक्त व्यंजनों का परिवर्तन संबंध में परिचय दिया गया जो शब्द के मध्य में प्रयुक्त होते हैं। शब्द में प्रयुक्त आरंभिक व्यंजनों का भी परिवर्तन मिलता है। यहाँ पर इस परिवर्तन के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जायेंगे। उदा० य> ज,[४] उदा० यष्टि> जट्ठी, यशः>

१. प्रथम शिथिल निषधेषु ढः — सूत्र सं० २८ — द्वि० परि० — प्रा० प्र०
मेथि शिथिर शिथिल प्रथमेषस्य ढः — ,, २१५ — प्र० पा० — प्रा० व्या०

२. कैटभे भो वः — ,, २६ — परि० २ — प्रा० प्र०
कैटभे भो वः — ,, २४० — प्र० पा० — प्रा० व्या०

३. हरिद्रादीनां रोलः — ,, ३० — परि० २ — प्रा० प्र०
हरिद्रादौ लः — ,, २५४ — प्र० पा० — प्रा० व्या०

४. आदेर्यो जः — ,, ३१ — परि० २ — प्रा० प्र०
आदेर्यो जः — ,, २४५ — प्र० पा० — प्रा० व्या०

जसो। अशोकी प्राकृत में य>अ स्वर शेष मिलता है। उदा० यावत्> आव, यथा>अथ, य> ल[1], उदा० यष्टि> लट्ठी। क> च[2] उदा० किरात> चिलात। तामिल में केरल> चेर मिलता है। क> ख[3] उदा० कुब्ज> खुज्जो, कुब्ज। >खुब्ज। इसी प्रकार अल्पप्राण व्यंजन के स्थान पर महाप्राण व्यंजन के अन्य उदाहरण भी मिलते हैं। उदा० दण्ड>धडु, दिवस>धिवभ्र, चिन्हित>छिनिद, दुहिता> धुदा, धिता। द>ड[4], उदा० दोला>डोला, दण्ड>डण्डो, दशन> डसणो। शब्द के मध्य में भी प्रयुक्त द>ड का विकास मिलता है। उदा० उदार> उडाल, द्वादश> दुवाडस, दोहद> दोहड, कदन> कडण, दर्भ> डब्भो, दाह> डाह। प>फ[5]- उदा० परुष> फरुसो, परिघ>फलिहो, परिखा> फलिहा, पनस> फणसो।[6] व> भ[7]- उदा० विसिनी> भिसिणी, म> व[8], उदा० मन्मथ>वम्महो,

---

१ यष्ट्यां लः	सूत्र सं० ३२	परि० २	प्रा० प्र०
यष्ट्यां लः	,, २४७	प्र० पा०	प्रा० व्या०
२. किराते चः	,, ३३	परि० २	प्रा० प्र०
किराते चः	,, १८३	प्र० पा०	प्रा० व्या०
३. कुब्जे खः	,, ३४	परि० २	प्रा० प्र०
कुब्ज-कर्पर कीले कः खो पुष्पे	,, १८१	प्र० पाद०	प्रा० व्या०
४. दोलादण्ड दशनेषु डः	,, ३५	परि० २	प्रा० प्र०
दशन-दष्टदग्ध दोला दण्ड दर-दाह दम्भ दर्भकदन दोहदे दो वा डः	,, २१७	प्र० पा०	प्रा० व्या०
५. परुष परिघपरिखासु फः	,, ३६	परि० २	प्रा० प्र०
पाटि परुष परिघ परिखा पनस पारिभद्रे फः	,, २३२	प्र० पा०	प्रा० व्या०
६. पनसेऽपि च	,, ३७	,,	,,
७. विसिन्यां भः	,, ३८	,,	,,
८. मन्मथे वः	,, ३९	परि० २	प्रा० प्र०
मन्मथे वः	,, २४२	प्र० पा०	प्रा० व्या०

ल> ण[1] उदा० लाहलो > णाहलो, लंगलं >णंगलं, लंगूलं> णंगूलं ।

संस्कृत भी ऊष्म ध्वनियों -ष,श,स का परिवर्तन प्राकृत में -छ व्यंजन के रूप में मिलता है।[2] उदा० षष्ठी>छट्ठी, षण्मुख>छम्मुहो, शावक> छावओ, सप्तपर्ण> छत्तिवण्णो, षट्पद> छप्पओ। अशोकी प्राकृत में -श के स्थान पर -च का विकास भी मिलता है। उदा० शान्तमूल> चांतमूल, शान्तिश्री>चांतिसिरि। न>ण[3], उदा० नदी>णई। शब्द के मध्य में प्रयुक्त -न का विकास सर्वत्र -ण के रूप में मिलता है। उदा० कनक> कणअ, वचन> वअणं, मानुष> माणुसो। इसी प्रकार -श, ष> स[4] मिलता है। उदा० शब्द> सद्दो, षण्ढ> सण्ढो। शब्द के मध्य में प्रयुक्त -श-ष का -स ही मिलता है। उदा० निशा>णिसा, वृषभ> वसहो, कषाय> कसाअं। इसका उल्लेख पहले ही हो चुका है कि मागधी प्राकृत में ष, स के लिये सर्वत्र -श ही मिलता है। श> ह[5] उदा० शक्तिश्री > हकुसिरि। शब्द के मध्य में भी यही परिवर्तन मिलता है। उदा० दश> दह, एकादश> एआरह, स> ह।[6] उदा० दिवस> दिअह, संघ> हंघ।

१. लोहले णः	सूत्र सं० ४०	परि० २	प्रा०	प्र०
लाहल लांगल लांगूले वादेर्णः	,, २५६	प्र० पा०	,,	व्या०
२. षट् शावक सप्तपर्णानां छः	,, ४१	परि० २	,,	प्र०
षट्-शमी-शाव-सुधा सप्तपर्णेष्वादेश्छः	,, २६५	प्र० पा०	,,	व्या०
३. नो णः सर्वत्र	,, ४२	परि० २	,,	प्र०
नो णः	,, २२८	प्र० पा०	,,	व्या०
४. शषोः सः	,, ४३	परि० २	,,	प्र०
शषोः सः	,, २६०	प्र० पा०	,,	व्या०
५. दशादिषु हः	,, ४४	परि० २	,,	प्र०
दश-पाषाणे हः	,, २६२	प्र० पा०	,,	व्या०
६. दिवसे सस्य	,, ४६	परि० २	,,	प्र०
दिवसे सः	,, २६३	प्र० पा०	,,	व्या०

संयुक्त व्यंजनों का विकास

प्राचीन आर्यभाषा के शब्दों में संयुक्त स्वरों की संख्या तो सीमित थी परन्तु संयुक्त व्यंजनों के प्रयोग का कोई सीमित-रूप नहीं था। शब्द के आदि अथवा मध्य में कोई भी दो व्यंजन संयुक्त-व्यंजन के रूप में प्रयुक्त हो सकते थे। परन्तु प्राकृत भाषाओं में संयुक्त व्यंजनों का यह व्यापक प्रयोग नहीं मिलता। उनका परिवर्तन या तो समीकृत-व्यंजन के रूप में हो गया, अथवा उनमें से किसी एक व्यंजन का लोप कर दिया गया या 'स्वरभक्ति' के द्वारा उनको विभक्त कर दिया गया। यहाँ पर ऐसे ही संयुक्त व्यंजनों के विकास का संक्षिप्त परिचय दिया जायगा।

संस्कृत के संयुक्त व्यंजनों का पालि में प्रायः समीकृत-रूप मिलता है अथवा संयुक्त व्यंजन के दोनों वर्णों में से पहले किसी एक का परिवर्तन और फिर उनका स्थान-विपर्यय कर दिया गया। संयुक्त व्यंजनों में से किसी एक वर्ण का प्रायः लोप अथवा संयुक्त-व्यजन के बीच में किसी स्वर के प्रयोग से उसे विभक्त कर दिया गया। इस परिवर्तन को स्वरभक्ति (Anaptyxis) कहते हैं। उदा० मर्यादा>मरियादा, वज्र>वजिर, ह्लाद> हिलाद, स्नेह>सिनेह, ह्री>हिरी, क्लेश >किलेश। संयुक्त व्यंजन के दोनों वर्णों का स्थान-परिवर्तन ध्वनि-विपर्यय (Metathesis) कहलाता है। उदा० करेणु>कणेरु, मशक> मकस। संयुक्त व्यंजन के दोनों वर्णों में से यदि कोई ऊष्मवर्ण हो तो उसका ह में परिवर्तन और फिर स्थान-परिवर्तन होता है। उदा० तृष्णा> तण्हा, स्नान>नहान, ग्रीष्म> गिम्ह, स्मित> म्हित, आश्चर्य> अच्छरिय, अच्छेर, प्रश्न> पन्ह, युष्मे> तुम्हे, अस्माकं> अम्हाकं, विष्णु>वेण्हु। संयुक्त व्यंजन में स के साथ कोई अनुनासिक व्यंजन -न, -म, -य,-व हो तो भी स्थान-परिवर्तन हो जाता है। उदा० चिह्न > चिन्ह, सायह्न>सायन्ह, जिह्म> जिम्ह, आरुह्य>आरुय्ह, जिह्वा > जिव्हा। संयुक्त व्यंजनों के दो भिन्न वर्णों का यदि समरूप हो जाता

है तो उसे समीकरण (Assimilation) कहते हैं। जब संयुक्त व्यंजन का पहला व्यंजन बाद वाले व्यंजन को अपने सदृश कर लेता है तो उसे पुरोगामी समीकरण (Progressive Assimilation) कहते हैं। उदा० उद्विग्न> उव्विग्ग, शुक्ल> सुक्क, चत्वारः > चत्तारो, स्वप्न> सोप्प और जब बाद का वर्ण पहले वर्ण को अपने सदृश कर लेता है तो उसे पश्चगामी समीकरण (Regressive Assimilation) कहते हैं। उदा० वल्क> वक्क, स्पर्श> फस्स, ऊर्मि> उम्मि, उन्मूलयति> उम्मूलेति। रेफ के साथ व य, ल, भ वर्णों का पश्चगामी समीकरण होता है। उदा० आर्य> अय्य, निर्याति> निय्याति, निर्यामि>निय्याम, सर्व>सब्ब। ऊष्म ध्वनि के साथ य, र, व आदि के होने पर पुरोगामी समीकरण होता है। उदा० मिश्र> मिस्स, अवश्यं> अवस्सं, अश्व> अस्स, श्वेत> सेत। शब्द में दो समान ध्वनियों के विभिन्न रूप भी हो जाते हैं। इसे विषमीकरण (Dissimilation) कहते हैं। उदा० पिपीलिका> किपिल्लिका, चिकित्सति> तिकिच्छति। संयुक्त व्यंजन के किसी एक वर्ण का प्रायः लोप भी हो जाता है। यह लोप शब्द के आरम्भ और मध्य दोनों में मिलता है। शब्द के आरंभ में किसी व्यंजन के लोप को आदि-वर्ण लोप (Apocope) कहते हैं। उदा० स्थान> ठान, स्थूल> थूल, ज्ञान>,ञान, स्खलित> खलित, स्फटिक> फटिक। शब्द के मध्य में प्रयुक्त संयुक्त व्यंजन का वर्ण-लोप मध्यव्यंजन-लोप (Syncope) कहलाता है। उदा० द्विज> दिज, वाक्य> वाक्क। कभी संयुक्त व्यंजन के स्थान पर किसी एक नये वर्ण का प्रयोग मिलता है। उदा० द्युति> जुति, क्षुद्रः> खुद्दो, त्यागः > चागो, ध्यानं > झानं, ज्ञातः> जातो, [illegible]> [illegible], [illegible]: > [illegible], स्पन्दः> फन्दो। कभी-कभी संयुक्त व्यंजनों के दोनों वर्णों अथवा एक वर्ण का परिवर्तन हो जाता है। उदा० [illegible]> [illegible], [illegible]> [illegible], [illegible]> [illegible], आश्चर्य> अच्छरिय, [illegible]> [illegible], [illegible]> [illegible], पुष्प> पुप्फ, [illegible]> [illegible]।

मुख्य प्राकृतों के शब्दों में प्रयुक्त संयुक्त व्यंजन के प्रथम वर्ण -क,-ग,- ड,-त,-प,-श,-स का लोप और बाद वाले शेष वर्ण का द्वित्व-रूप हो जाता है।[१] इसे उपरिलोप-विधि कहा गया है। द्वित्व रूप में प्रत्येक वर्ग के दूसरे और चौथे वर्ण के साथ क्रमशः पहले और तीसरे वर्णों का प्रयोग किया जाता है। यदि संयुक्त व्यंजन का प्रयोग शब्द के आदि में हो और उसका एक वर्ण -र अथवा -ह हो तो द्वित्व-रूप का विकास नहीं होता। उक्त वर्णों के कुछ परिवर्तन ये हैं उदा० भक्त> भत्त, मुग्ध> मुद्धो, खड्ग> खग्गो, उत्पलं> उप्पल, मुग्द> मुग्ग, सुप्त> सुत्तो, गोष्ठी> गोट्ठी।

संयुक्त व्यंजन के अंत का वर्ण यदि -म, -न, -य हो तो उनका लोप हो जाता है और शेष वर्ण का द्वित्व-रूप हो जाता है।[२] इसे अधोलोप-विधि माना गया है। उदाहरण शुष्म> सोस्स, रश्मि> रस्सी, युग्म> जुग्गं, नग्न> णग्गो, सौम्य> सोम्मो, योग्य> जोग्गो।

संयुक्त व्यंजन में प्रयुक्त अंतस्थ वर्णों-र, ल, व अथवा व वर्णों का भी प्रायः लोप हो जाता है और शेष वर्ण का द्वित्व-रूप हो जाता है।[३] उदा० वल्कल> वक्कल, लुब्धक> लुद्धओ, पक्व> पिक्कं, (पक्क), शक्र> सक्को, स्वयं> सयं, कल्य> कल्लं, काव्यं> कव्वं।

संयुक्त व्यंजन -द्र में -र का वैकल्पिक लोप मिलता है।[४] उदा० द्रोह> द्रोहो, दोहो, चन्द्र> चन्द्रो, चन्दो, रुद्र> रुद्रो, रुद्दो।

---

१. उपरि लोपः क-ग-ट-त-द-प-ष-साम् सूत्र सं० १ तृ० परि० प्रा० प्र०
क-ग-ट-ड-त-द-प-श-ष-स-≍पामूर्ध्वं लुक् ,, ७७ द्वि० पा० प्रा० व्या०
२. अधो म-न-याम् ,, २ तृ० परि० प्रा० प्र०
अधो म-न-याम् ,, ७८ द्वि० पा० प्रा० व्या०
३. सर्वत्र ल-व-राम् ,, ३ तृ० परि० प्रा० प्र०
सर्वत्र-ल-वरामवन्द्रे ,, ७९ द्वि० पा० प्रा० व्या०
४. द्रे रो वा ,, ४ तृ० परि० प्रा० प्र०
द्रे रो न वा ,, ८० द्वि० पा० प्रा० व्या०

'सर्वज्ञ' शब्द में प्रयुक्त संयुक्त व्यंजन -ज्ञ का लोप हो जाता है[१] और उसके स्थान पर -ज्ज, -ञ,-ञ का प्रयोग मिलता है। उदा० सर्वज्ञ> सव्वज्जो, इङ्गितज्ञ> इगिग्रज्जो, विज्ञ> विञ्ञो (शौर०) मागधी और पैशाची में—ज्ञ>-ञ्ञ हो जाता है।

शब्दों में प्रयुक्त संयुक्त व्यंजनों के स्थान पर अन्य समीकृत व्यंजनों के प्रयोग भी मिलते हैं। उदाहरण -ष्ट>-ट्ठ।[२]-उदा० यष्टि> लट्ठी, दृष्टि> दिट्ठी। स्थ>-ट्ठ[३], उदा० अस्थि> अट्ठी। स्त> -त्थ[४]- उदा० हस्त> हत्थो, समस्त> समत्थो, वस्तु> वत्थु। कुछ शब्दों में -स्त> -त्थ का प्रयोग नहीं भी मिलता।[५] उदा० स्तम्ब> तम्ब।[५] स्त> ख[६], उदा० स्तम्भ> खम्भो।-स्थ>-ख[७], उदा० स्थाणु>खाणु। स्फ> ख[८], उदा० स्फोटक> खोडओ। इसी प्रकार -र्य,-य्य,-न्य के स्थान पर -ज का प्रयोग मिलता है।[९] उदा० कार्य> कज्जं, शय्या>

---

१. सर्वज्ञ तुल्येषु ञः	सूत्र सं०	५	तृ० परि०	प्रा० प्र०
ज्ञो ञः	,,	८३	द्वि० पा०	प्रा० व्या०
२. ष्टस्य ठः	,,	१०	तृ० परि०	प्रा० प्र०
ष्टस्यानुष्ट्रेष्टासंदष्टे	,,	३४	द्वि० पा०	प्रा० व्या०
३. अस्थिनि	,,	११	तृ० परि०	प्रा० प्र०
ठोस्थि विसंस्थुले	,,	३२	द्वि० पा०	प्रा० व्या०
४. स्तस्य थः	,,	१२	तृ० परि०	प्रा० प्र०
५. न स्तम्बे	,,	१३	,,	,,
स्तस्य थोसमस्त-स्तम्बे	,,	४५	द्वि० पाद	प्रा० व्या०
६. स्तम्भे खः	,,	१४	तृ० परि०	प्रा० प्र०
स्तम्भे स्तो वा	,,	८	द्वि० पा०	प्रा० व्या०
७. स्थाणावहरे	,,	१५	तृ० परि०	प्रा० प्र०
स्थाणावहरे	,,	७	द्वि० पा०	प्रा० व्या०
८. स्फोटके	,,	१६	तृ० परि०	प्रा० प्र०
क्ष्वेटकादौ	,,	६	द्वि० पा०	प्रा० व्या०
९. र्य शय्याभिमन्युपुजः	,,	१७	तृ० परि०	प्रा० प्र०

सेज्जा, अभिमन्यु > अहिमज्जू। मागधी प्राकृत में -र्य > -य्य, -न्य > -ञ्ञ का विकास मिलता है। पैशाची में भी -न्य > -ञ्ञ का प्रयोग मिलता है। उदा० कार्य > कय्य, कन्या > कञ्ञा।

संस्कृत के तूर्य, धैर्य, सौन्दर्य, आश्चर्य, पर्यन्त में -र्य के स्थान पर र का परिवर्तन मिलता है।[1] उदा० तूर्य > तूरं, धर्य > धीरं, सौन्दर्य > सुन्देरं, आश्चर्य > अच्छेरं, पर्यन्त > पेरन्तं। शौरसेनी में आश्चर्य का अच्छरियं रूप मिलता है।

संस्कृत शब्द सूर्य में -र्य के स्थान पर -र का वैकल्पिक प्रयोग मिलता है।[2] उदा०-सूर्य > सूरो, सुज्जो। इसी प्रकार चौर्य आदि शब्दों में -र्य के लिये -रिअं का प्रयोग मिलता है।[3] उदा० -चौर्य > चोरिअं, वीर्य > वीर्यअं, शौर्य > सोरिअं, आश्चर्य > अच्छरिअं। यह परिवर्तन पैशाची प्राकृत की एक सामान्य विशेषता है। उदा० आर्य > अरिय। इसी प्रकार कुछ शब्दों में -र्य का विकास -ल वर्ण के रूप में हुआ है।[4] उदा० पर्यस्त > पल्लत्थं, पर्याण > पल्लाणं, सौकुमार्य > सोअमल्लं। इसी प्रकार -त > -ट[5], उदा० कैवर्तक > केव-

---

च-य्य र्यां जः	सूत्र सं०	२४	द्वि० पा०	प्रा० व्या०
अभिमन्यौ ज ञ्जौ वा	,,	२५	,,	,,
१. तूर्य-धैर्य सौन्दर्याश्चर्य पर्यन्तेषु रः	,,	१८	तृ० परि०	प्रा० प्र०
ब्रह्मचर्य तूर्य सौन्दर्य-शौण्डीर्येयों रः	,,	६३	द्वि० पा०	प्रा० व्या०
धैर्ये वा	,,	६४	,,	,,
२. सूर्ये वा	,,	१६	तृतीय परि०	प्रा० प्र०
धैर्ये वा	,,	४६	द्वितीय पाद	प्रा० व्या०
३. चौर्य समेषु रिअं	,,	२०	तृ० परि०	प्रा० प्र०
आश्चर्ये	,,	६६	द्वि० पाद	प्रा० व्या०
४. पर्यस्त पर्याण सौकुमार्येषु लः	,,	२१	तृ० परि०	प्रा० प्र०
पर्यस्त पर्याण सौकुमार्येल्लः	,,	६८	द्वि० पाद	प्रा० व्या०
५. र्तस्य टः	,,	२२	तृ० परि०	प्रा० प्र०

इश्रो, नर्तकी>नट्टई। धूर्त में -र्त का ट नहीं होता।[१] -त्त> ट[२] उदा० पत्तन> पट्टणं। शब्दों में- र्त के स्थान पर -ट का विकास सर्वत्र नहीं मिलता है। इसके अनेक अपवाद मिलते हैं—उदा० धूर्त> धुत्तो, कीर्ति> कित्ती, वर्तमान> वत्तमाण, वार्ता>वत्ता, वर्तिका>वत्तिआ, आर्त > अत्तो, कर्तरी > कत्तरी, मूर्ति > मुत्ती। इस प्रकार-र्त का या तो समीकृत रूप -त का द्वित्व हो जाता है या -र का लोप हो कर केवल -त बच रहता है। -र्त >-ड,[४] उदा० गर्त > गड्डो, -र्द >ड, उदा० गर्दभ>गड्डहो, संमर्द> संमड्डो, वितर्दि> विअड्डी, विछर्दि> विछड्डी। कुछ शब्दों में -त्य, -थ्य, -द्य के स्थान पर क्रमशः च, छ और ज वर्णों के प्रयोग मिलते हैं।[५] उदा० सत्य > सच्च, नित्य> णिच्च, मिथ्या > मिच्छा, विद्या> विज्जा, वैद्य> वेज्जं। संस्कृत शब्दों में प्रयुक्त संयुक्त व्यंजन -ध्य, ह्य के स्थान पर प्राकृतों में -ज्झ का विकास मिलता है।[६] उदा०मध्य > मज्झ, अध्याय> अज्झाओ, गुह्यक > गुज्झओ, सह्य > सज्झं। 'सह्य'

---

१. नधूर्तादिषु	सूत्र सं	२४	तृ० परि०	प्रा० प्र०
तस्या धूर्तादौ	,,	३०	द्वि० पाद	प्रा० व्या०
२. पत्तने	,,	२३	,,	,,
३. गर्तेड	,,	२५	,, ,,	,,
गर्तेडः	,,	३५	द्वि० पाद	प्रा० व्या०
४. गर्दभ समर्द वितर्दि विछर्दिषुर्दस्य	,,	२६	,,	,,
संमर्द वितर्दि विच्छर्द च्छर्दिकपर्द-मर्दिते र्दस्य	,,	३६	द्वि० पाद	प्रा० व्या०
गर्दभेवा	,,	३७	,,	,,
५. त्य-थ्य-द्यां च-छ-जाः	,,	२७	तृ० परि०	प्रा० प्र०
त्यो चैत्ये	,,	१३	द्वि० पाद	प्रा० व्या
६. ह्य ह्योर्झः	,,	२८	तृ० परि०	प्रा० प्र०
साध्वस ध्य ह्यां झः	,,	२६	द्वि० पाद	प्रा० व्या०

का ध्वनि - विपर्यय के अनुसार 'सम्ह' रूप भी अशोकी-प्राकृत में मिलता है। इसी प्रकार संयुक्त व्यंजन-ष्क, -स्क-क्ष के स्थान पर -ख का विकास हुआ है।[1] उदा०-पुष्कर> पोक्खरो। स्कन्द> खन्दो, स्कन्ध> खन्दो, क्षत> खदो, भास्कर> भाक्खरो। संयुक्त व्यंजन -क्ष के स्थान पर -छ का प्रयोग भी मिलता है।[2] उदा०-अक्षि> अच्छी, लक्ष्मी> लच्छी, क्षीर,> छीरं, क्षुब्धो> छुद्धो, क्षार> छारं, मक्षिका> मच्छिआ, क्षुर> छुरं। कुछ शब्दों में -क्ष संयुक्त व्यंजन के स्थान पर -छ का वैकल्पिक रूप में विकास मिलता है।[3] उदा० क्षमा> छमा, खमा, वृक्ष> वच्छो, रुक्खो, क्षण> छण, खणं। यहाँ पर उपर्युक्त शब्दों में-क्ष> छ के अतिरिक्त-ख का प्रयोग भी मिलता है। इसी प्रकार संयुक्त व्यंजन -ष्म के स्थान पर-म्ह संयुक्तव्यंजन का विकास मिलता है।[4] उदा० ग्रीष्म> गिम्हो, उष्मन्> उम्हा, विस्मय> विम्हओ, अस्माकं> अम्हाकं। उक्त परिवर्तन स, ष> ह और फिर उसका ध्वनि-विपर्यय हो जाने के कारण ही हुआ होगा। कुछ शब्दों में संयुक्तव्यंजन-ह्न,-स्न,-ष्ण,-क्ष्ण,-क्न के स्थान पर -ण्ह का विकास मिलता है।[5] उदा० वह्नि> वण्ही, जह्नु> जण्हु,

---

१. ष्क-स्क-क्षां खः	,,	२९	तृतीय परि०	प्रा० प्र०
क्षः खः क्वचित्तु छ-झौ	,,	३	द्वितीय पाद	प्रा० व्या०
ष्क-स्कयोर्नाम्नि	,,	४	,,	,,
२. अक्ष्यादिषु छः	,,	३०	तृतीय परि०	प्रा० प्र०
छोऽक्ष्यादौ	,,	१७	द्वितीय पाद	प्रा० व्या०
३. क्षमावृक्ष क्षणेषु वा	,,	३१	तृतीय परि०	प्रा० प्र०
क्षमायां कौ	,,	१८	द्वितीय पाद	प्रा० व्या०
ऋक्षे वा	,,	१९	,,	,,
४. ष्म पक्ष्म विस्मयेषु म्हः	,,	३२	तृतीय परि०	प्रा० प्र०
पक्ष्म क्ष्म-ष्म-स्म ह्मां म्हः	,,	७४	द्वितीय पाद	प्रा० व्या०
५. ह्न स्न-ष्ण, क्ष्ण, क्नां ण्हः	,,	३२	तृतीय परि०	प्रा० प्र०

तीक्ष्ण> तेण्हं, प्रश्न> पण्हे, स्नपन> ण्हवणं। इसी प्रकार -ह्न> न्ध[1], उदा० चिह्न> चिन्ध, -ष्प>-फ[2], उदा० पुष्प> पुप्फं, शष्प> सप्फ, निष्पात> निप्फाओ।

शब्द के आदि, मध्य अथवा अंत में प्रयुक्त संयुक्त व्यंजन में -स्प का विकास-फ वर्ण में हुआ है।[3] उदा० स्पर्श> फंसो, स्पन्दन,> फन्दनं, स्पष्ट> फट्ठो, बृहस्पति> भअप्फई। इसी प्रकार -स्प के स्थान पर -सि का विकास भी मिलता है[4], उदा० प्रतिस्पर्द्धिन्> पाडिसिद्धी, -ष्प>-ह,[5] उदा० वाष्प> वाहो (अश्रु) -र्ष> ह,[6] उदा० कार्षापण> काहावणो। शब्दों में प्रयुक्त संयुक्त व्यंजन -श्च,-त्स,-प्स के स्थान पर -छ का विकास मिलता है।[7] उदा० पश्चिम> पच्छिम, आश्चर्य> अच्छेरं, वत्स> वच्छो, लिप्स> लिच्छा, जुगुप्सा> जुगुच्छा, पश्चात्> पच्छा अप्सरा> अच्छरा। श्च> ञ्छ[8], उदा० वृश्चिक> विञ्छुओ। कुछ शब्दों में- त्स के स्थान पर-छ का प्रयोग नहीं

सूक्ष्म-श्न-ष्ण-स्न-ह्न-ह्ण-क्ष्णां ण्हः	सूत्र सं०	७५	द्वि० परि०	प्रा० प्र०
१. चिह्ने न्धः	,,	३४	तृ० परि०	,, प्र०
२. ष्पस्य फः	,,	३५	तृ० परि०	,, प्र०
ष्प स्पयोः फः	,,	५३	द्वि० पाद	,, व्या०
३. स्पस्य सर्वत्र स्थितस्य	,,	३६	तृ० परि	प्रा० प्र०
ष्प-स्पयोः फः	,,	५३	द्वि० पाद	प्रा० व्या०
४. सि च	,,	३७	तृ० परि०	प्रा० प्र०
५. वाष्पेऽश्रुणि हः	,,	३८	तृ० परि०	प्रा० प्र०
वाष्पे हो श्रुणि	,,	७०	द्वि० पाद	प्रा० व्या०
६. कार्षापणे	,,	३९	तृ० परि०	प्रा० प्र०
,,	,,	७१	द्वि० पाद	प्रा० व्या०
७. श्च-त्स-प्सां छः	,,	४०	तृ० परि०	प्रा० प्र०
८. वृश्चिके ञ्छः	,,	४१	,,	,,
वृश्चिके श्चेञ्चुर्वा	,,	१६	द्वि० पाद	प्रा० व्या०

मिलता है।[1] उदा० उत्सुक>उस्सुओ, उत्सव> उस्सओ। -न्म>-म[2] उदा० जन्मन्> जम्मो, मन्मथ> वम्महो। कुछ शब्दों में- म्न,-ज्ञ,-ञ्ज के स्थान पर -ण का विकास मिलता है।[3] उदा०, प्रद्युम्न> पज्जुण्णो, यज्ञ>जण्णो, विज्ञान>विण्णाणं, पञ्चाशत्>पण्णासा, ज्ञान>णाणं, निम्न> णिण्णं, -न्त>-ण्ट,[4] उदा० तालवृन्त> तालवेण्टं, -न्द> -ण्ड[5] उदा० भिन्दिपाल>भिण्डिवालो, -ह्व>भ,-ह[6], उदा० विह्वल >वेब्भलो, वहिलो, -त्म> प, त[7], उदा० आत्मन्>अप्पा, अत्ता। संयुक्त व्यंजन क्म-के स्थान पर -प का प्रयोग मिलता है।[8] उदा० रुक्मिणी>रुप्पिणी। शब्दों में संयुक्त व्यंजन के एक वर्ण के लोप होने पर शेष वर्ण का द्वित्व रूप हो जाता है परन्तु यदि यह शेष वर्ण -ह अथवा -र हो अथवा वह शेष वर्ण शब्द के आरंभ में हो तो उसका द्वित्व नहीं होता।[9] उदा० भुक्त> भुत्तं, अग्नि> अग्गी,

१. नोत्सुकोत्सवयोः	सू० सं० ४२	तृ० परि०	प्रा० प्र०
२. न्मो मः	,, ४३	तृ० परि०	प्रा० प्र०
,,	,, ६१	द्वि० पाद	प्रा० व्या०
३. म्न-ज्ञ-पञ्चाशत्-पञ्चदशेषु णः	,, ४४	तृ० परि०	प्रा० प्र०
म्नज्ञोर्णः, पञ्चशत्पञ्चदश दत्ते	,, ४२, ४३	द्वि० पाद	प्रा० व्या०
४. ताल.वृन्ते ण्टः	,, ४५	तृ० परि०	प्रा० प्र०
,, ,,	,, ३१	द्वि० पाद	प्रा० व्या०
५ भिन्दिपाले ण्डः	,, ४६	तृ० परि०	प्रा० प्र०
कन्दरिका भिदिपाले ण्डः	,, ३८	द्वि० पा०	प्रा० व्या०
६. विह्वले भहौ वा	,, ४७	तृ० परि०	प्रा० प्र०
ह्वो भो वा	,, ५७	द्वि० पा०	प्रा० व्या०
वा विह्वले वौ वश्च	,, ५८	,,	,,
७. आत्मनि पः	,, ४८	तृ० परि०	प्रा० व्या०
८. क्मस्य	,, ४९	परि० ३	प्रा० प्र०
ड्म क्मोः	,, ५२	द्वि० पाद	प्रा० व्या०
९. शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ	,, ५०	परि० ३	प्रा० प्र०
अनादौशेषादेशयोर्द्वित्वम्	,, ८९	द्वि० पाद	प्रा० व्या०

मार्ग> मग्गो, दृष्टि> दिट्ठी, स्तवक> थवओ, स्तम्भ> खम्भो। संयुक्त व्यंजन का शेष वर्ण यदि वर्ग का दूसरा अथवा चौथा महाप्राण व्यंजन हो, तो उसी वर्ग के अल्पप्राण वर्ण के साथ उसका द्वित्व-रूप हो जाता है।[1] उदा० व्याख्यान> वक्खाणं, अर्घ> अग्घो, मूर्छा> मुच्छा, निर्झर> णिज्झरो, लुब्ध> लुद्धो, निर्भर> निब्भरो, दृष्टि> दिट्ठी। कुछ शब्दों में प्रयुक्त मध्य व्यंजन का भी द्वित्व-रूप हो जाता है।[2] इसे स्वतः द्विरुक्ति (Spontaneous-Reduplication) का उदाहरण कहा जा सकता है। उदा० नीड> णेड्डं, नील> णेल्लं, स्रोतं> सोत्तं, प्रेमन्> पॅम्म्, ऋजुक> उज्जुओ, जनक> जण्णओ, यौवन> जोव्वणं, जानु> जाण्णु। संयुक्त व्यंजन -म्र के स्थान पर-म्ब का प्रयोग मिलता है।[3] उदा० आम्र> अम्ब, ताम्र> तम्ब। शब्द में प्रयुक्त व्यंजन -र, -ह का द्वित्व नहीं होता।[4] उदा० धैर्य> धीरं, तूर्य> तूरं, जिह्वा> जीहा। शब्द में प्रयुक्त संयुक्त व्यंजन -ज्ञ के पूर्व यदि -आ अव्यय का प्रयोग हो तो उसका विकास -ण रूप में होता है।[5] उदा० आज्ञा> आणा, आज्ञप्ति> आणत्ती। यदि कोई अन्य अव्यय पूर्व में हो तो उक्त परिवर्तन नहीं मिलता। उदा० संज्ञा> सण्णा, प्रज्ञा> पण्णा।

---

१. वर्गेषु युजः पूर्वः	सूत्र सं०	५१	परि० ३	प्रा० प्र०
द्वितीय तुर्ययोरु परि पूर्वः	,,	९०	पाद २	प्रा० व्या०

उक्त सूत्र में युज् का आशय वर्णमाला के दूसरे और चौथे वर्ण से होता है।

२. नीडादिषु	सूत्र सं०	५२	परि० ३	प्रा० प्र०
३. आम्र ताम्र योर्म्बः	,,	५३	,,	,,
ताम्राम्रे म्बः	,,	५६	,,	प्रा० व्या०
४. न र होः	,,	५४	,,	,,
,, ,, ,,	,,	९३	पाद २	प्रा० व्या०
५. आङो ज्ञस्य	,,	५५	परि० ३	प्रा० प्र०
ञो ञः	,,	८३	पाद २	प्रा० व्या०

प्राकृत शब्दों में अनुस्वार के बाद प्रयुक्त वर्ण का द्वित्व नहीं होता है।[१] उदा० संक्रांत > संकन्तो, सन्ध्या > संझा। समास पदों में वर्ण-लोप हो अथवा किसी अन्य वर्ण का परिवर्तन हो तो द्वित्व का विकास वैकल्पिक रूप में होता है।[२] उदा० नदीग्राम > णइग्गम, णईगामो, कुसुमप्रकर > कुसुप्पअरो कुसुमपअरो, देवस्तुति > देवत्थुई, देवथुई। इसी प्रकार शब्द में प्रयुक्त मध्य-व्यंजन का विकल्प से द्वित्व-रूप होता है।[३] उदा० सेवा>सेव्वा, सेवा, एक> एक्क, एअं, नख > णक्ख, णहो, दैव > देव्व, दइव, त्रैलोक्यं > तेलोअ, निहित> णिहित्त, निहिओणि।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि संयुक्त व्यंजन के किसी एक वर्ण अथवा दोनों वर्णों के लोप और उनके स्थान पर शेष वर्ण का द्वित्व अथवा कोई नये संयुक्त व्यंजन का आदेश हो जाता है अथवा संयुक्त व्यंजन का ध्वनि-विपर्यय हो जाता है। उक्त परिवर्तनों के अतिरिक्त संयुक्त व्यंजन का विभाजन भी कर दिया गया है। इसे स्वरभक्ति के नाम से कहा जाता है क्योंकि किसी स्वर को ही बीच में डाल कर संयुक्त व्यंजन के दोनों वर्णों को विभक्त किया जाता है।[४] संयुक्त व्यंजन का पहला वर्ण जिसमें स्वर का अभाव होता है, वह बाद वाले वर्ण के स्वर को अपना लेता है।[५] उदा० क्लिष्ट > किलिट्ठं,

---

१. न विन्दुपरे	सूत्र संख्या ५६	तृतीय परिच्छेद	प्रा० प्र०
२. समासे वा	,, ५७	,,	,,
,, ,,	,, ९७	द्वि० पाद	प्रा० व्या०
३. सेवादिषु च	,, ५८	तृ० परि०	पा० प्र०
सेवादौ वा	,, ९९	द्वितीय पा०	प्रा० प्र०
४. विप्रकर्षः	,, ५९	तृ० परि०	प्रा० प्र०
५. क्लिष्ट-श्लिष्ट-रत्न-क्रिया-शार्ङ्गेषु तत्स्वरवत् पूर्वस्य	,, ६०	,,	,,
शार्ङ्गे ङात्पूर्वोत्, लात्	,, १००,१०६	द्वितीय पाद	प्रा० व्या०

श्लिष्ट > सिलिट्ठं, रत्न > रदणं, क्रिया > किरिआ, शार्ङ्ग > सारङ्गो। कृष्ण शब्द में-ष्ण संयुक्त व्यंजन का विकास वैकल्पिक रूप में मिलता है।[१] उदा० कृष्ण>कण्हो,कसनो। कुछ शब्दों में संयुक्त व्यंजन के विभाजन में -इ स्वर का प्रयोग मिलता है।[२] उदा० श्री > सिरी, ह्री> हिरी, क्रीत> किरीतो, क्लान्त> किलन्तो, क्लेश> किलेसो, म्लान > मिलाण, स्वप्न> सिविणो, स्पर्श>फरिसो, हर्ष> हरिसो, अर्ह> अरिहो, गर्ह> गरिहो। कुछ शब्दों में संयुक्त व्यंजन का विभाजिन -अ स्वर के द्वारा मिलता है।[३] उदा० क्ष्मा > खमा, श्लाघ्य > सलाहा। स्नेह शब्द में संयुक्त व्यंजन का विभाजन वैकल्पिक रूप में मिलता है।[४] उदा० स्नेह>सनेहो, णेहो। कुछ शब्दों में व्यंजन का विभाजन-उ स्वर के द्वारा होता है।[५] उदा० पद्म> पउम, तन्वी> तनुई, लघ्वी > लहुई, गुर्वी > गुरुइ। सयुक्त व्यंजन के विभाजन में -ई स्वर का भी प्रयोग होता है।[६] -ज्या > जीआ।

सन्धि -रूप में प्रयुक्त स्वरों के परिवर्तन और लोप के भी

---

१. कृष्णे वा	सूत्र सं० ६१	तृतीय परि०	प्रा० प्र०
कृष्णे वर्णेवा	„ ११०	द्वितीय पाद	प्रा व्या०
२. इः श्री ह्री क्रीत क्लान्त-क्लेश म्लान			
स्वप्न स्पर्श हर्षार्ह-गर्हेषु	„ ६२	तृतीय परि०	प्रा० प्र०
ह-श्रीह्री-कृत्स्न क्रिया दिष्टयास्वित्	„ १०४	द्वितीय पाद	प्रा० व्या०
३. अः क्ष्मा-श्लाघयोः	„ ६३	तृतीय परि०	प्रा० प्र०
क्ष्मा श्लाघा रत्नेन्त्यव्यंजनात्	„ १०१	द्वितीय पाद	प्रा० व्या०
४. स्नेहे वा	„ ६४	तृतीय परि०	प्रा० प्र०
स्नेहाग्न्योर्वा	„ १ २	द्वितीय पाद	प्रा० व्या०
५. उः पद्मतन्वी समेषु	„ ६५	तृतीय परि०	प्रा० प्र०
पद्म छद्म मूर्ख द्वारे वा	„ ११२	द्वितीय पाद	प्रा० व्या०
तन्वीतुल्येषु	„ ११३	„	„
६. ज्यायामीत्	„ ६६	तृतीय परि०	प्रा० प्र०
„ „	„ ११५	द्वितीय पाद	प्रा० व्या०

अनेक उदाहरण मिलते हैं।[१] सन्धि अथवा समास-रूप में प्रयुक्त स्वरों के कुछ परिवर्तन ये हैं । उदा० यमुनातट > जउणअंड, जउणाअडं, नदीजल> णइजलं, णईजला, सरोरुह>सरोरुहं, सररुहा, नमस्कार> णमक्कारो, णमेक्कारो, महेन्द्र>महिन्दो, सोऽयं> सोअं, सोअअं, शिरोरोगं> सिरोरोओ, सिररोओ। स्वर-लोप के उदाहरण भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। उदा० राजकुल> राउलं, राअउलं, तवार्द्ध> तुहद्धं तुहअद्धं, ममार्द्ध> महद्धं, महअद्धं, पादपतन > पावडणं, पाअवडणं, पादपीठ> पापीठं, पाअपीठं, चंद्रकला> चंदला, चंद-अला । सहकार>सहारो, सहआरो । अतएव सन्धि अथवा समास रूपों में दीर्घ स्वर के स्थान पर ह्रस्वस्वर -आ> -अ, ओ> -उ,-ए> -इ आदि अथवा प्रयुक्त स्वरों में पूर्व स्वर का लोप हो जाता है ।

इसी प्रकार शब्दों के मध्य में प्रयुक्त व्यंजनों और अक्षरों में से किसी एक व्यंजन अथवा अक्षर का लोप हो जाता है । उदा०उदुम्बरं> उम्बरं में-दु अक्षर का लोप हो गया है ।[२]कालायस शब्द में -य का वैकल्प से लोप मिलता है ।[३] उदा०कालायस> कालासं, कालाअसं, भाजन शब्द में -ज का वैकल्पिक लोप मिलता है।[४]उदा०भाजन>भाणं, भाअणं, यावत् आदि शब्दों में-व का भी वैकल्पिक लोप होता है।[५] उदा०यावत्> जा, जाव, तावत्>ता, ताव, पारावत>पाराओ, पारावो, जीवित>जीअं, जीविअं, एवं> एअ, एव्व । प्राकृत में शब्दों के अन्त्य व्यंजन का लोप बराबर मिलता है।[६] उदा० यशस् >जशो, नभस् > णहं, सरस् > सरो, कर्मन् > कम्मो, यावत्> जाव, पश्चात्>पच्छा, मरुत्>मरू,

---

१. सन्धावचामज् लोप विशेषा बहुलम् सूत्र सं० १ चतुर्थ परिच्छेद प्रा० प्र०
२. उदुम्बरे दोर्लोपः ,, २ ,, ,,
३. कालायासे यस्य वा ,, ३ ,, ,,
४. भाजने जस्य ,, ४ ,, ,,
५. यावदादिपु वस्य ,, ५ ,, ,,
६. अन्त्यस्य हलः ,, ६ ,, ,,

का आगम हुआ है।[१] उदा० विद्युत् > विज्जू, विज्जुली, पीत > पीअलं, पीअं। क्रमदीश्वर के अनुसार पीत शब्द के अंत में -व अक्षर का भी आगम होता है।[२] उदा० पीत > पीअवं। 'वृन्द' शब्द में -व के अनतर -र का आगम वैकल्पिक है।[३] उदा० वृन्द > व्रन्दं, वन्दं करेणु शब्द में स्थिति-परिवृत्ति (वर्णविपर्यय) मिलता है।[४] उदा० करेणु > कणेरु, आलान शब्द में -ल और -न वर्णों का व्यत्यय हो जाता है।[५] उदा० आलान > आणालं। इसी प्रकार -र और -व वर्णों का व्यत्यय कुछ शब्दों से मिलता है। उदा० धर्म > ध्रम, पूर्व > प्रुव, पार्षद > प्रषंड। बृहस्पति शब्द में -ब और -ह के स्थान पर -भ और -अ का परिवर्तन मिलता है।[६] उदा० बृहस्पति > भ, अप्पुई। यहाँ -ह के महाप्राणत्व का प्रभाव पूर्व व्यंजन -ब पर जान पड़ता है। मलिन शब्द में- लि और -न के स्थान पर क्रमशः -इ और -ल वैकल्पिक परिवर्तन लिखता है।[७]-मलिन > मइलं, मलिणं। गृह शब्द का विकास 'घर' के रूप में मिलता है परन्तु पति शब्द बाद में होने पर ऐसा नहीं होता।[८] उदा० गृह > घर परन्तु गृहपति > गहपई, गहवई।

अपभ्रंश

साहित्यिक प्राकृत भाषाओं की अपेक्षा अपभ्रंश भाषाओं में ध्वनि-

---

१. विद्युत् पीताभ्यां लः	सूत्र सं० ६	च० परि०	प्रा० प्र०
२. पीताद्दश्च	,, २६ (क)	,,	,,
३ वृन्दे वो रः	,, २७	,,	,,
४. करेण्वां रणोः स्थिति परिवृत्तिः	,, २८	,,	,,
५. आलाने लणोः	,, २६	,,	,,
६. बृहस्पतौ बहोर्भश्रो	,, ३०	,,	,,
७. मलिने लिनोरिलौ वा	,, ३१	,,	,,
८. गृहे घरोऽपतौ	,, ३२	,,	,,

परिवर्तन और पद-विकास अपेक्षाकृत अधिक विकसित रूप में मिलते हैं। हेमचंद्र ने प्राकृत-व्याकरण के चौथे पाद में अपभ्रंश की विशेषताओं का वर्णन सूत्र सं० ३२९ से ४४६ में किया है। हेमचंद्र द्वारा वर्णित अपभ्रंश का यह रूप व्यापक और सर्वप्रचलित माना गया है जिसे नागर अथवा पश्चिमी अपभ्रंश के नाम से कहा जा सकता है। इसी को शौरसेनी अपभ्रंश भी कहा गया है। परन्तु शौरसेनी अपभ्रंश शौरसेनी प्राकृत के अतिरिक्त कुछ और व्यापक क्षेत्र की भाषा मानी गई है। मार्कण्डेय ने प्राकृतसर्वस्व में अपभ्रंश के २७ भेदों का उल्लेख किया है।[1] परन्तु वे संभवतः उसके लोकप्रचलित रूप थे और कुछ शैली-भेद के साथ व्यापक हो गये थे। साहित्यिक दृष्टि से वय्याकरणों के द्वारा उनके तीन भेद नागर, उपनागर और व्राचड़ किये गये हैं।[2] इनमें नागर रूप ही सर्वप्रतीष्ठित रूप था। अपभ्रंश के तीन भेद पश्चिमी, पूर्वी और दक्षिणी नाम से भी किये गये हैं परन्तु पश्चिमी और पूर्वी भेद तो विशेपताओं की दृष्टि से मान्य हैं, दक्षिणी भेद को पश्चिमी का एक शैली रूप माना जाता है। यहाँ पर अपभ्रंश की ध्वनि संबंधी विशेपताओं को हेमचन्द्र के प्राकृत-व्याकरण के आधार पर मुख्यतया दिया गया है। ये परिवर्तन सूत्र सं० ३२९ तथा ३९६-३९९,४१०-४१२ में मिलते हैं।

अपभ्रंश शब्दों में एक स्वर के लिये विविध स्वरों का प्रयोग मिलता है।[3] अपभ्रंश में शौरसेनी आदि प्राकृतों के सदृश ही कुछ

---

१. व्राचडो लाट वैदर्भावुपनागर नागरौ बावरावन्त्य पाञ्चाल टाक्क मालव कैकयाः। गौडौढ्र वैवपश्चिात्य पाण्ड्य कौन्तल सैंहलाः। कलिङ्ग प्राच्य कार्णाटिकाञ्च द्राविड़गौर्जराः। आमीरो मध्यदेशीयः सूक्ष्म भेदव्यवस्थिताः, सप्तविंशत्यपभ्रंशाः वैतालादि प्रभेदताः। प्राकृत सर्वस्व, २

२. नागरो व्राचडश्चोपनागरश्चेति ते त्र्यः,
अपभ्रंशाः परेसूक्ष्मभेदत्वान्न पृथङ्‌मतः॥ ,,

३. स्वराणां स्वराः प्रायोपभ्रंशे सूत्र सं० ३२९ च० पाद प्रा० व्या०

भिन्नता के साथ स्वरों का प्रयोग होता है। उदा० कश्चित्> कच्चु, काच्च, वेणी> वेण, वीण, बाहु> बाह, वाही, पृष्ठ> पट्ठि, पिट्ठि, पुट्ठि, तृण> तनु, तिणु, सुकृतम्> सुकिदु, सुकिउ, सुकृदु। ऋ> ए, अर, रि, उदा० गृह, गेहु, कृ> अ, इ उ,—कृत> कर, ऋषि> रिसि, लेखा> लिह, लीह, लेह, औ> ओ, अउ, उ, उदा० गौरी> गउरी, गोरी, गौरव> गउरव, रौद्र> रउद, सौख्य> सुक्ख। अपभ्रंश में ए, ओ का ह्रस्व उच्चारण भी होता है[1] और प्रत्येक छंद के अंतिम पद में प्रयुक्त अन्त्य उं, हं, हिं, हुँ का भी ह्रस्व उच्चारण होता है।[2] उदा० सुधि चिन्तिज्जइ माणु (३६६-२), तसु हउँ कलिजुगि दुल्लहहो (३३८-१), अन्नु जु तुच्छउँ तहें धणहे (३५०-१), दइउ घडावइ वणि तरुहुँ (३४०-१), खग्ग विसाहिउ जहिं लहहुँ (३८६-१), तणहँ तइज्जी भङ्गि नवि (८३०-१)। संयुक्त व्यंजन के पूर्व दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाता है। उदा० आख्यान> अक्खाण, आग्नेय> अग्गेय, आर्या> अज्जा आदि। स्त्रीलिंग आकारांत का ह्रस्व रूप हो जाता है। उदा० कमला> कमल, बाला> बाल आदि।

शब्द के प्रारंभ में स्वरलोप के भी उदाहरण मिलते हैं। उदा० अरण्य> रण्ण, अरविन्द> रविन्द, अहकम्> हउं, उपविष्ट> वइट्ठ आदि। शब्दों में अक्षरलोप भी हो जाता है। उदा० एवमेव> एमेव, भविष्यदत्त> भविसयत्त।[*] मध्यवर्ती व्यंजन का लोप और अवशिष्ट स्वर -अ के स्थान पर -य अथवा -व की अपश्रुति (Ablaut) मिलती है। उदा० अनेक> अणेय, अन्धकार> अंधयार, लोक> लोय, अनुराग> अणुराय, कंचुकम> कंचुय, उदय> उवय, चिन्तयति> चिंतवइ आदि। शब्द में स्वर के बाद प्रयुक्त मध्यवर्ती असंयुक्त व्यंजन क, ख, त, थ, प, फ, के स्थान पर प्रायः

---

१. कादि स्थैदोतोरुच्चार-लाघवम् सूत्र सं० ४१० च० पाद प्रा० व्या०

२. पदान्ते उं -हं हिं-हंकाराणाम „ ४११ „ „

ग, घ, द, ध, व, भ व्यंजन मिलते हैं।[1] उदा० विच्छोह गरु < विक्षोभकरं, कडभवं<कटाक्ष, सुघ< सुख, सुवधु< शपथं, कधिदु< कथितं, सभलउं< सफलं। मध्यवर्ती असंयुक्त व्यंजन -म> -वॅ का वैकल्पिक प्रयोग मिलता है।[2] उदा० कमल > कवॅलु, भ्रमर > भवँरु, ग्राम > गाँव, यावत्- जिम > जिवॅ, जेवँ, तावत्-तिम > तिवँ, तेवँ।

शब्दों में प्रयुक्त संयुक्त व्यंजन में दूसरा वर्ण यदि रेफ हो तो उसका विकल्प से लोप मिलता है।[3] उदा० प्रियेण> पियेण (३७९-२), सर्वाङ्गेण> सव्वङ्गे (३९६-४)। शब्द में संयुक्त व्यंजन के किसी एक वर्ण के लिये रेफ का प्रयोग भी मिलता है।[4] उदा० व्यास> व्रासु (३९९-१)।

पुरुषोत्तमदेव ने प्राकृतानुशासन में नागर अपभ्रंश के अंतर्गत कुछ और ध्वनि-परिवर्तन दिये हैं जो हेमचन्द्र द्वारा वर्णित अपभ्रंश के सामान्यरूप के अंतर्गत माने जा सकते हैं। गृध्र आदि शब्दों में ऋ> -इ हो जाता है।[5] ओ>औ उदा० पौरुष>पउरुस मिलता है।[6] छंद के बंधान में दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाता है।[7] स्वरमध्यवर्ती व्यंजन क, ग, च, ज, त, द, प, व, य और व के स्थान पर स्वर-रूप मिलते हैं।[8] ख, घ, थ, भ का विकास -ह में मिलता है।[9]

---

१. अनादौ स्वरादसंयुक्तानां क-ख त थ-प-फां ग, घ द-ध-ब-भाः	सूत्र सं०	३९६	च० पाद	प्रा० व्या
२. मोनुनासिको वो वा	,,	३९७	,,	,,
३. वाधो रो लुक्	,,	३९८	,,	,,
४. अभूतोपि क्वचित्	,,	३९९	,,	,,
५. गृध्रादेः ऋतः इत्वम्	,,	१०	परि० १७	प्राकृतानुशासन
६. अउः पौरुषादिषु	,,	१२	,,	,,
७. गुरुलाघवंच्छन्दोवशात्	,,	१६	,,	,,
८. कगादेः स्वरविशेषता	,,	५	,,	,,
९. ख घ थ भां हः	,,	८	,,	,,

उदा० दुःख> दुह, नख> नह, मुख> मुह, सखि> सहि, सुख> सुह, ओघ> ओह, दीर्घ> दीहर, अथ> अह, कथा > कह, अधर> अहर, धर्म> हम्म, मुक्ताफल>मुत्ताहल, स्वभाव> सहाव आदि। व्यंजन परिवर्तन श, ष> स[1], य>ज[2], न> ण[3]। उदा० शत्>सय, शोभा> सोह, यमुना>जउणा, पर्याप्त> पज्जत्त।

संयुक्त व्यंजन यदि शब्द के आरंभ में होता है तो प्रायः दूसरे वर्ण का लोप हो जाता है अथवा उसका स्वर-भक्ति का रूप हो जाता है। उदा० त्याग> चाय, क्रय> कय, द्रुम> दुम, प्रकाश>पयास, प्रेम> पिम्म, दीप> दीव, क्रिया> किरिया, श्री> सिरी, क्लेश> किलेस आदि। संयुक्त व्यंजन के पहले वर्ण के लोप के भी उदाहरण मिलते हैं। उदा० स्कंभ, > खंभ, स्तन>थण स्पर्श > फंस, स्फटिक> फडिय। संयुक्त व्यंजनों का समीकरण रूप पालि, प्राकृत के सदृश ही अपभ्रंश में भी मिलता है। उदा० युक्त> जुत्त, रक्त> रत्त, अद्य> अज्ज, उत्पन्नः> उप्पण्णु, मित्र> मित्तु, समुज्वल> समुज्जल, अन्य> अन्न, दुर्लभ> दुल्लह, दुर्गम> दुग्गम आदि। शब्दों में संयुक्त व्यंजन के स्थान पर विभिन्न व्यंजनों का भी प्रयोग मिलता है। उदा०-ज्ञ> -ण, उदा० आज्ञा> आण, ज्ञान> नाण, -क्ष> -क्ख, -झ, उदा० अन्तरिक्ष> अन्तरिक्ख, क्षीण> झीण, -ध्य, -ध्व> -झ उदा० ध्यान> झाण, सन्ध्या> संझा. ध्वनि>झुणि।-प्स, >-त्स् > -छ, उदा० अप्सरा> अच्छरा, मत्सर> मच्छर, मत्स्य> मच्छ। संयुक्त व्यंजन के किसी एक वर्ण के लोप होने पर पूर्व अक्षर का अनुस्वार-रूप हो जाता है। उदा० अश्रु> अंसु, जल्पति>जंपइ, दर्शन>दंसण, वक्र>वंक आदि।

अपभ्रंश में आपद्, विपद्, संपद् शब्दों में-द> -इ हो जाता

---

1. शषो सः — सूत्र सं० २ परि० १७ प्राकृतानुशासन
2. यस्य जः — ,, ३ ,, ,,
3. नो णः — ,, ४ ,, ,,

है ।[१] उदा० आपद् > आवइ, विपद् > विवइ, संपद् > संपइ (३३५-१) । कथं, यथा, तथा शब्दों के स्थान पर केम (केवँ), किम (किवं), किह, किध, जेम (जेवँ), जिम (जिवं), जिह, जिध, तेम (तेव), तिम (तिवँ), तिह, तिध (४०१-१५) (३४४-१) रूप मिलते हैं ।[२] यादृश, तादृश, कीदृश और ईदृश के स्थान पर जेहु, तेहु, केहु और एहु (४०२-१) रूप मिलते हैं ।[३] यादृश आदि शब्दों के अंत में जब अ स्वर होता है तो उनके रूप जइसो, तइसो, कइसो और अइसो मिलते हैं ।[४]

यत्र और तत्र शब्दों के लिये अपभ्रंश में जेत्थु, जेत्तु, जत्तु और तेत्थु, तत्तु शब्द प्रयुक्त होते हैं ।[५] इसी प्रकार अत्र>एत्थु और कुत्र> केत्थु शब्द मिलते हैं (४०४-१) ।[६] यावत् > जाम (जावँ), जाउँ, जामहिं, तावत् > ताम (तावं), ताउँ, तामहिं (४०६-१–३) रूप पाये जाते हैं ।[७] यावत् > जेंवड, जेत्तुल, तावत>तेवड, तेत्तुल (४०७-१) के प्रयोग विकल्प से मिलते हैं ।[८] इदम् > एवड्ड, एत्तुलो, किम् > केवड्ड, केत्तुलो रूप मिलते हैं ।[९] 'परस्पर' शब्द में आदि स्वरागम का प्रयोग मिलता है ।[१०] उदा० परस्परं>अवरोप्परु (४०६-१) अपभ्रंश में शब्दों के सजातीय स्वरों का एकादेश हो जाता है । उदा० भण्डार<भाण्डागार, उण्हाल<उष्णकाल ।

---

१. अपाद्विपत्संपदां द इः	सूत्र सं०	४००	च० पा०	प्रा० व्या०
२. कथं यथा तथां थादेरेमेमेहेधा डितः	,,	४०१	,,	,,
३. यादृक्तादृक्कीदृगीदृशां दादेर्डेहः	,,	४०२	,,	,,
४. अतां डइसः	,,	४०३	,,	,,
५. यत्र-तत्रयोस्त्रस्य डिदेत्थ्वत्तु	,,	४०४	,,	,,
६. एत्थु कुत्रात्रे	,,	४०५	,,	,,
७. यावत्तावतोर्वादेर्म उं महिं	,,	४०६	,,	,,
८. वा यत्तदोतोर्डेवडः	,,	४०७	,,	,,
९. वेदं किमोर्यादेः	,,	४०८	,,	,,
१०. परस्परस्यादिरः	,,	४०९	,,	,,

संयुक्त व्यंजन हो तो पहले शब्द के अन्त्य -अ और -आ स्वर का लोप हो जाता है। उदा० वसन्तोत्सव> वसन्तूसव, नीलोत्पल> नीलुप्पल, राय+रईसर>राईसर, एग+इंदिय>एगिंदिय (अमा०), रयण+उज्जल> रयणुज्जल, महोत्सव> महूसव, तहा+एव> तहेव, महा+ओसहि > महोसहि (अमा०) । पहले निर्देश किया जा चुका है कि अगले शब्द के आदि और पहले के अन्त्य स्वरों की सन्धि हो जाती है परन्तु इस सन्धि-रूप में प्राकृत के अगले शब्द के आदि स्वर के अनंतर असंयुक्त व्यंजन का भी प्रयोग प्राय: पाया जाता है।

प्राकृत में स्वरमध्यवर्ती व्यंजन के लोप होने पर पास-पास आने वाले अवशिष्ट स्वरों का प्राय: सन्धि-रूप नहीं होता परन्तु पहले और अगले शब्दों में समान स्वरों के होने पर कभी-कभी उनका दीर्घ रूप हो जाता जाता है। उदा० पाआइक (पादातिक)> पाइक्क, उदुंवर>उंवर। कुछ शब्दों में अ और आ के साथ इ, उ का योग मिलता है। थइर (स्थविर)>थेर, चतुर्दश>चोद्दस, पउम (पद्म)> पोम्म (माहा०)। अन्य प्रकार के शब्दों में भी दोनों स्वरों का योग दीर्घस्वर के रूप में मिलता है। उदा० धम्म+अधम्म > धम्माधम्म, किच्च (कृत्य)+ अकिच्च (अकृत्य)> किच्चाकिच्च, धम्मकहा+अवसाण > धम्मकहावसाण, मुणि+ईसर>मुणीसर, वहु+उदग>वहूदग (अमा०) । समास रूपों में भी इस प्रकार की सन्धि मिलती है। उदा० कुंभकार > कुंभार, कर्मकार>कम्मार, चक्रवाक>चक्काय, देवकुल> देउल, राजकुल> लाउल (मा०), सुकुमार>सूमाल, स्कंधावार>खंधार (अमा०)। वाक्य में प्रयुक्त पदों में प्राय: सन्धि का प्रयोग नहीं मिलता। उदा० एगे आह, एयाओ अज्जाओ। परन्तु न के वाद यदि कोई स्वर हो तो उस स्वर की न के साथ सन्धि हो जाती है। उदा० नास्ति > नत्थि, नातिदूरे>णादिदूरे, अनारंभे> नारंभे ;

पालि, प्राकृत में व्यंजन-संधि का संस्कृत के सदृश कोई व्यापक रूप नहीं मिलता क्योंकि उक्त भाषाओं में शब्द के अन्त्य व्यंजन का प्राय: लोप हो गया है। परन्तु पहले शब्द के अन्त्य व्यंजन का अगले शब्द के आदि स्वर के पूर्व लोप नहीं होता। उदा० यदस्ति> जदत्थि, पुनुरुक्त>पुणरुत्त, पुनरपि>पुणरवि (अमा०)। दुर् और निर् उपसर्गों के अन्त्य व्यंजन का भी लोप नहीं होता। उदा० दुरतिक्रम> दुरइक्कम, निरन्तर> णिरन्तर।

समास पदों में पहले शब्द के अन्त्य व्यंजन का अगले शब्द के आदि व्यंजन के साथ समीकरण हो जाता है। उदा० दुश्चरित> दुच्चरिय, दुर्लभ> दुल्लह, दु:सह > दुस्सह, दूसह। समास शब्दों में यदि किसी वर्ग का चौथा या दूसरा वर्ण हो तो सन्धि होने पर उसी वर्ग का तीसरा या पहला वर्ण हो जाता है। पालि में इसका प्रयोग अधिक मिलता है उदा० सेत+छत्तं > सेतच्छत्तं, नि+ठानं> निट्ठानं। प्राकृत में भी इसका उदाहरण मिलता है। उदा० प्रादुर्भाव> पाउब्भाव (अमा०)। पहले शब्द के अन्त्य स्वर के अनंतर यदि कोई व्यंजन हो तो उसका व्यंजन द्वित्व-रूप हो जाता है। उदा० प + गहो > पग्गहो, दु + कतं > दुक्कतं, दुक्कटं (पालि)।

प्राय: दो शब्दों के मध्य में किसी विशेष ध्वनि के प्रयोग से भी सन्धि का विकास मिलता है। इस विशेष ध्वनि को सन्धि-व्यंजन का नाम दिया गया है। उक्त सन्धि व्यंजनों में म, य, र के उदाहरण मिलते हैं। यह अनुमान किया गया है कि संभवत: उक्त म, र सन्धि-व्यंजन संस्कृत के कुछ मूल शब्दों में नियमित रूप से प्रयुक्त होते थे परन्तु बाद में वे अन्य शब्दों के लिये भी प्रयुक्त कर लिये गये। 'म' का योग सन्धि-व्यंजन के लिये प्राय: किया जाता है। उदा० एकैकम (एकमेकम्)> एक्कमेक्कं, (माहा०) एगएग>

एगमेग (अमा०), गोण+आई (गवादय:)> गोणमाई, आरिय + अणारिय> आरियमणारिय (अमा०)। इसी प्रकार य, र का भी योग किया जाता है। उदा० दु + अंगुल> दुयंगुल, सु+अक्खाए> सुयक्खाए (अमा०)। धि+अत्थु (धिग् अस्तु)> धिरत्थु, सिहि + इव> सिहिरिव, दु+अंगुल > दुरंगुल (अमा०)। वस्तुत: उक्त उदाहरणों में दो शब्दों के मध्य में म, य, र के प्रयोग द्वारा सन्धि का निषेध किया गया है।

अपभ्रंश भाषाओं में भी सन्धियों का नियमन सामान्यत: प्राकृत भाषा के संधि-सिद्धान्तों के ही अनुसार हुआ है। अपभ्रंश के ध्वनि-परिवर्तन का विवेचन करते समय पूर्व-पृष्ठों में कुछ ऐसे उदाहरण आये हैं जो कि अपभ्रंश की संधियों के उदाहरण के रूप में गृहीत हो सकते हैं।



चौथा अध्याय

प्राकृत के पद-रूपों का विकास

प्राचीन आर्य भाषा में संज्ञा, सर्वनाम आदि के रूपों का विकास बहुत ही संपन्न और विविध प्रकार का था। सभी शब्दों के स्वरांत और व्यंजनांत रूपों का विकास एक वचन, द्विवचन, बहुवचन तथा प्रथमा से संबोधन तक की विभक्तियों के अनेकार्थ रूपों में होता था। परन्तु प्राकृत भाषाओं में यह विविधता स्थिर नहीं रही। विभिन्न रूपों के विकास में एकीकरण तथा सरलीकरण का आश्रय लिया गया। शब्दों के अन्त्य व्यंजनों का अधिकांशत: लोप हो गया इसलिये व्यंजनान्त रूप भी प्राय: स्वरांत के सदृश ही हो गये और विविध स्वरांत रूपों में अन्त्य-दीर्घ स्वरों के ह्रस्व हो जाने के कारण भी रूपों में कमी हो गई। इस प्रकार पुलिंग के अन्तर्गत केवल अकारांत, इकारांत और उकारान्त, स्त्रीलिंग के अन्तर्गत आकारान्त, ईकारान्त और अकारांत, नपुंसकलिंग के अन्तर्गत अकारान्त रूप ही शेष मिलते हैं। ध्वनि-परिवर्तन और सादृश्य के द्वारा विविध रूपों का विकास बहुत सरल कर लिया गया था। रूपों की जटिलता का प्राय: लोप हो गया था।

संज्ञा, सर्वनाम आदि के द्विवचन के प्रयोग बहुवचन के रूपों में सम्मिलित हो गये[1]। एक०, बहु० दोनों में चतुर्थी विभक्ति के लिये प्राय:

१ द्विवचनस्य बहुवचनम् सूत्र सं० ६३ परि० ६ प्रा० प्र०

षष्ठी का प्रयोग किया जाने लगा[1] और इस प्रकार द्विवचन और चतुर्थी विभक्ति का लोप हो गया। केवल पालि और शिलालेखी प्राकृत में चतुर्थी विभक्ति के एक वचन का भिन्न प्रयोग मिलता है।

प्राचीन वय्याकरणों के द्वारा लिखे हुए पालि व्याकरण के ग्रन्थ मिलते हैं। कुछ प्राचीन व्याकरण-ग्रंथों में कच्चान, मोग्गल्लान, अग्ग-वंश की कृतियाँ मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त महानिरुत्ति, निरुत्ति-पिटक, कारिका, सम्बन्ध-चिन्ता आदि व्याकरण-ग्रंथ भी उपलब्ध होते हैं। परन्तु इसमें मोग्गल्लान-व्याकरण को ही सबसे अधिक महत्व दिया गया है क्योंकि ग्रन्थ में सूत्रों की वृत्ति और उनकी व्याख्या वय्याकरण के द्वारा स्वयं दी गई है। अतएव यह व्याकरण-ग्रंथ पूर्ण और पुष्ट माना जाता है। भिक्षु जगदीश काश्यप ने अपने पालि महाव्याकरण में उक्त व्याकरण का आधार लिया है। यहाँ पर उक्त ग्रन्थ में उद्धृत मोग्गल्लान-व्याकरण के सूत्रों के आधार पर पालि-भाषा का रूप-विकास दिया गया है। संज्ञा,सर्वनाम आदि रूपों में निम्नलिखित प्रत्ययों का प्रयोग होता है।[2]

पठमा एक०, बहु० में सि -यो, आलपन (संबोधन) में ग -यो, दुतिया एक०, बहु० में अं -यो, ततिया एक०, बहु० में ना -हि, चतुत्थी, छट्ठी एक० बहु० में स -नं, पंचमी एक०, बहु० में स्मा -हि, सत्तमी एक०, बहु० में स्मिं -सु के प्रयोग मिलते हैं।

पुलिंग अकारान्त में -सि > ओ का प्रयोग होता है।[3] उदा० बुद्ध+ओ > बुद्धो। उक्त प्रयोग में कभी-कभी -ए का प्रयोग भी मिलता है।[4] उदा० वनप्पगुम्बे। पु० अका०, प्र० बहु० (यो) में

---

१. चतुर्थ्याः षष्ठी — सूत्र सं० ६४ — परि० ६ — प्रा० प्र०

२. नाम स्मा सियो अंयो नाहि सनं
स्मादि सनं स्मिं सु — १ — काण्ड २ — मोग्गलान व्या०

३. सि स्मो — „ १११ — „ — „

४. सय ने वा — „ ११२ — „ — „

-हा > -आ, द्वि० वहु० (-यो) में -टे > -ए का प्रयोग होता है।[१] उदा० बुद्ध+आ> बुद्धा, बुद्ध+ए> बुद्धे। पु० अका०, तृ० एक० -ना> -एन का प्रयोग मिलता है।[२] उदा० बुद्ध+एन>बुद्धेन। पु० अका० पं० एक० -स्मा> -म्हा, पं० वहु० -हि>-भि, स० एक० स्मिं>-म्हि के वैकल्पिक प्रयोग मिलते हैं।[३] उदा० बुद्धस्मा>बुद्धम्हा, बुद्धेहि> बुद्धेभि, बुद्धस्मि>बुद्धम्हि। पु० अका० च० एक० -स> -आय और ष० एक० में -स्स का प्रयोग होता है।[४] उदा० बुद्ध+आय> बुद्धाय, बुद्धस्स पु० अका० में स० वहु० -सु, तृ० पं० वहु० -हि विभक्ति के पूर्व अंत्य स्वर -अ>-ए हो जाता है।[५] उदा० बुद्धेभि, बुद्धेसु। पु० अका० में प० वहु० नपुं० इका० तृ० वहु० -हि, पु० इका० सं० वहु० -सु के पूर्व मूल शब्द के अन्त्य स्वर -अ >-आ, -इ>-ई हो जाता है।[६] उदा० बुद्धानं, मुनीसु, अग्गीहि। पु० अका० पं० एक० में -टा> -आ, सं० एक० -टे> -ए का भी वैकल्पिक प्रयोग मिलता है।[७] उदा० बुद्धा, बुद्धस्मा, बुद्धे, बुद्धस्मिं। संबोधन एक० में विभक्ति का प्राय: लोप हो जाता है।[८] उदा० बुद्ध, दण्डी। पु० स्त्री० नपुं० अका०, इका०, उका०, संबोधन एक० में मूल शब्द का अन्त्य स्वर प्राय: दीर्घ हो जाता है।[९] उदा० बुद्ध, बुद्धा, हे मुनि, मुनी अकारान्त पुलिंग बुद्ध का रूप-विकास निम्नलिखित होगा।

---

१. अतो यो नं टाटे	सू० सं०	४३	काण्ड २	मोग्गल्लान व्या०
२. अते न	,,	११०	,,	,,
३. स्माहि स्मिन्नं म्हा भि म्हि	,,	९९	,,	,,
४. सस्साय चतुत्थिया, सुन्सस्स	,,	४१,५३	,,	,,
५. सु हि स्व स्से	,,	१००	,,	,,
६. सु नं हि सु	,,	९१	,,	,,
७. स्मा स्मिन्न	,,	४५	,,	,,
८. गसीनं	,,	११९	,,	,,
९. अमू नं वा दीघो	,,	६१	,,	,,

संवोधन एक० -ग के अतिरिक्त अन्य विभक्तियों के पूर्व गाव, गव रूप हो जाता है।[१] उदा० प्र० द्वि० वहु० गाव, गवो आदि। पुलिंग ओका० गो में द्वि० एक० -अं के जुड़ने पर गावु का वैकल्पिक प्रयोग भी होता है।[२] उदा० गावुं। तृतीया एक० -ना का विकल्प से -आ होता है।[3] उदा० गावा। च० प एक० में गो + स> गवं मिलता है।[४] षष्ठी वहु० में गो+नं>गुन्नं, गंव, गोनं रूप मिलते हैं।[५] स० वहु० में -सु के पूर्व गो> गाव, गव हो जाता है।[६] उदा० गावेसु। अस्तु, पुलिंग और नपुंसक इकारान्त, ईकारांत उकारान्त, अकारान्त, ओकारान्त का रूप-विकास निम्नलिखित होगा—

पु० इका० मुनि—

	एक०	वहु०
प०	मुनि	मुनी, मुनयो
दु०	मुनिं	,,
त०	मुनिना	मुनीहि, मुनीभि
पं०	मुनिना, मुनिम्हा, मुनिस्मा	,,
छ०	मुनिनो, मुनिस्स	मुनीनं
स०	मुनिम्हि, मुनिस्मि	मुनिसु, मुनीसु
आल०	मुनि, मुनी	मुनी, मुनयो

नपु० इका० अट्ठि>अस्थि—

प०	अट्ठि	अट्ठीनि, अट्ठी

---

१. गो स्मा ग भि हि नं सु गा व ग वा — सूत्र सं० ६९ काण्ड २ मोग्गल्लान व्या०

२. गा वु म्हि — ,, ७४ ,, ,,

3. ना स्मा — ,, ७३ ,, ,,

४. ग वं मे न — ,, ७१ ,, ,,

५. गुन्नं च नं ना — ,, ७२ ,, ,,

६. सु म्हि वा — ,, ७० ,, ,,

	एक०	बहु०
दु०	अट्ठि	अट्ठीनि, अट्ठी

शेष रूप पुलिंग इकारान्त मुनि के समान होंगे।

पु० उका० भिक्खु <भिक्षु—

प०	भिक्खु	भिक्खू, भिक्खो
दु०	भिक्खु	भिक्खू, भिक्खो
त०	भिक्खुना	भिक्खूहि, भिक्खूभि
पं०	भिक्खुस्मा, भिक्खुम्हा	,, ,,
छ०	भिक्खुनो, भिक्खुस्स	भिक्खूनं
स०	भिक्खुस्मिं, भिक्खुम्हि	भिक्खुसु, भिक्खूसु
आल०	भिक्खु	भिक्खू, भिक्खवे, भिक्खवो

नपु० उका० आयु—

प०	आयु	आयूनि, आयू
दु०	आयुं	,, ,,
आल०	आयु	,, ,,

शेष रूप पुलिंग उकारांत के सदृश होते हैं।

पु० ईका० दण्डी—

प०	दण्डी	दण्डी, दण्डिनो
दु०	दण्डिनं, दण्डिं	,, ,, दण्डिने
त०	दण्डिना	दण्डीहि, दण्डीभि
पं०	दण्डिस्मा, दण्डिम्हा	,, ,,
छ०	दण्डिनो दण्डिस्स	
स०	दण्डिनि, दण्डिस्मिं दण्डिम्हि, दण्डीनं	दण्डिसु, दण्डीसु
आल०	दण्डि, दण्डी	दण्डी, दण्डिनो

नपु० ईका० सुखकारी—

प०	सुखकारि	सुखकारीनि, सुखकारी

राज का वैकल्पिक प्रयोग राजू मिलता है ।[1] उदा० राजूसु, राजूनं, राजूहि । चतुर्थी, षष्ठी एक० (-स) में राज के रञ्ञो, रञ्ञास्स, राजिनो रूप मिलते हैं।[2] च० प० बहु० (-नं) के साथ राज का रूप रञ्ञं होता है।[3] सप्तमी एक० (-स्मिं) में राज के रञ्ञे, राजिनि रूप होते हैं।[4] पुलिंग रूपों में -वन्तु और -मन्तु प्रत्ययांत शब्द भी मिलते हैं। अकारांत और आकारांत शब्दों के बाद -वन्तु प्रत्यय और भिन्न स्वरांत शब्दों के बाद -मन्तु प्रत्यय का योग होता है। उदा० गुणवन्तु (गुणवाला), गतिमन्तु (गतिवाला)। प्र० एक० (-सि) में -न्तु > -आ हो जाता है।[5] उदा० गुणवा। प्रथमा बहु० (-यो) में विकल्प से -न्तो होता है।[6] उदा० गुणवन्तो, गुणवन्ता, द्वि बहु०(-यो) तृ० एक(-ना) प० बहु०(-नं) आदि में -न्तु >-न्त और टा>-टे=ए हो जाता है।[7] उदा० गुणवन्ता, गुणवन्ते, गुणवन्तं, गुणवन्तेन आदि। प्र०एक०(-स) पं० एक०(-स्मा) स० एक०(-स्मिं) तृ० एक०(-ना) के साथ -न्तु, -न्त का क्रमशः -तो, -ता, -ति तथा -ता रूप मिलते हैं।[8] उदा० गुणवतो, गुणवता, गुणवता, गुणवति।

च० प० बहु -नं के साथ विकल्प से -न्त, -न्तु का -तं हो जाता है।[9] उदा० गुणवतं। संबोधन एक० में -न्त -न्तु के -अ, -आ, -अं रूप

---

१. सु नं हि सु	सूत्र सं०	१२६	काण्ड २	मोग्गल्लान व्या०
२. रञ्ञो रञ्ञस्स राजिनो से	,,	२२५	,,	,,
३. राजस्स रञ्ञं	,,	२२३	,,	,,
४. स्मिं म्हि रञ्ञे राजिनि	,,	२२६	,,	,,
५. न्तु स्स	,,	१५३	,,	,,
६. न्त न्तू नं न्तो यो म्हि पठमे	,,	२१७	,,	,,
७. स्वा द्दो न्तु स्स	,,	६३	,,	,,
८. तो ता ति ता स स्मा स्मिं ना सु	,,	२१६	,,	,,
९. तं न म्हि	,,	२१८	,,	,,

होते हैं।[1] उदा०भो गुणव, गुणवा, गुणवं। नपुंसक लिंग में प्र० एक० में -न्तु > -अं, -न्तं हो जाता है।[2] उदा० गुणवं कुलं, गुणवन्तं कुलं। स्त्रीलिंग में -वन्तु > -वती, -वन्ती तथा मन्तु > मती, मन्ती होता है। उदा० गुणवती, गुणवन्ती। अतएव कुछ पुलिंग व्यंजनांत रूप इस प्रकार होंगे—

अत्त<आत्मन्—

	एक०	बहु०
प०	अत्ता	अत्ता, अत्तानो
दु०	अत्तानं, अत्तं	अत्ते, ”
त०	अत्तेन, अत्तना	अत्तेहि, अत्तेभि, अत्तनेहि, अत्तनेभि
पं०	अत्तना, अत्तस्मा, अत्तम्हा	” ”
च० छ०	अत्तनो, अत्तस्स	अत्तानं
स०	अत्तनि, अतस्मिं, अत्तम्हि, अत्ते	अत्तनेसु, अत्तेसु
आल०	अत्त, अत्ता	अत्ता, अत्तानो

राज<राजन्—

	एक०	बहु०
प०	राजा	राजा, राजानो
दु०	राजानं, राजं	राजानो
त०	रञ्ञा, राजेन, राजिना	राजेहि, राजेभि, राजूहि, राजूभि
प०	रञ्ञा, राजम्हा, राजस्मा	” ”
च० छ०	रञ्ञो, रञ्ञस्स, राजिनो, राजस्स	रञ्ञं, राजानं, राजूनं
स०	रञ्ञे, राजिनि, राजस्मिं,	

1. ट टा अं गे ” सूत्र सं० ३२० काण्ड २ मोग्गा० व्या०
   ” ” १५४ ” ”
2. अं ङं. नपुंसके ”

	राजम्हि	राजूसु, राजेसु
आल०	राज, राजा	राजा, राजानो

गुणवन्तु—

प०	गुणवा	गुणवन्तो, गुणवन्ता
दु०	गुणवन्तं	गुणवन्ते
त०	गुणवता, गुणवन्तेन	गुणवन्तेहि, गुणवन्तेभि
पं०	गुणावता गुणवन्तस्मा, गुणवन्तम्हा	" "
च० छ०	गुणवतो, गुणवन्तस्स	गुणवतं, गुणवन्तानं
स०	गुणवति, गुणवन्ते, गुणवन्तस्मिं, गुणवन्तम्हि	गुणवन्तेसु
आल०	गुणवं, गुणव, गुणवा	गुणवन्तो, गुणवन्ता

-तु प्रत्ययांत पुलिंग शब्दों का रूप-विकास अधिकांशतः अन्य पुलिंग सामान्य रूपों के सदृश ही होता है। कुछ रूप भिन्न होते हैं। प्रथमा एक०-सि में-तु अन्त्य स्वर के स्थान पर -आ हो जाता है।[१] उदा- दाता, पिता, माता आदि। च०, प० एक०-स के अतिरिक्त अन्य विभक्तियों में -तु के अन्त्य स्वर का -आर (-आ) हो जाता है।[२] उदा० दातारो, पितरो, दातारा, पितरा आदि। उक्त प्रयोग में -आर रूप के बाद प्र० द्वि० बहु० -यो > -ओ होता है।[३] उदा० दातारो, पितरो। द्वि० बहु० -यो > -ए भी हो जाता है।[४] उदा० दातारो, दातारे। -आर के बाद तृतीया एक० -ना और पंचमी एक० -स्मा के स्थान पर -आ मिलता है।[५] उदा० दातारा, पितरा। -आर के बाद सप्तमी

१. ल्तु पितादीनमासिम्हि सुत्त सं० ५६ काण्ड २ मोग्ग० व्याकरण
२. ल्तु पितादीनमसे " १२४ " "
३. आर ट म्ना " १३३ " "
४. टोटे वा " १३४ " "
५. पि टा ना स्मानं " १३५ " "

एक० -स्मि> -इ और -आर का ह्रस्व रूप -अर हो जाता है।[1] उदा० दातरि। चतुर्थी, पष्ठी एक० -स में विभक्ति का वैकल्पिक लोप भी मिलता है।[2] उदा० दातु, पितु। चतुर्थी, पष्ठी बहु० (-नं) में अन्त्य स्वर का विकल्प से -आर हो जाता।[3] उदा० दातारानं, दातानं, पितरानं, पितुन्नं। उक्त विभक्ति में विकल्प से -आर> -आ भी मिलता है।[4] उदा० दातानं, दातूनं, पितानं, पितुन्नं। सप्तमी बहु० (-सु, तृ० पं० बहु०)-हि में विकल्प से -आर मिलता है।[5] उदा० दातारेसु, दातुसु, पितरेसु, पितुसु, दातारेहि, दातूहि, पितरेहि, पितूहि। संबोधन एक० में -तु के अन्त्य स्वर का -अ और -आ हो जाता है।[6] उदा० भो दात, दाता, भो पित, पिता। पितु, मातु आदि शब्दों में जहाँ अन्त्य स्वर का जहाँ -आर होता है -अर हो जाता है।[7] उदा० पितरो, पितरं, मातरो, मातरं। कुछ -तु प्रत्ययांत शब्दों के रूप इस प्रकार होंगे—

दातु<दातृ

	एक०	बहु०
प०	दाता	दातारो
दु०	दातारं	दातारो, दातारे
त०	दातारा	दातारेहि, दातारेभि, दातूहि, दातूभि
पं०	,,	,,
च० छ०	दातु, दातुनो दातुस्स	दातारानं, दातानं
स०	दातरि	दातारेसु, दातुसु
आल०	दात, दाता	दातारो

---

१. टि स्मि नो,	सुत्त सं०	१७६,	काण्ड २	मोग्ग० व्या०
२. रस्सा रङ सलोपो	,,	१७८	,,	,,
४. नम्हि वा	,,	१६५	,,	,,
५. सुहिस्वा रङ	,,	१६६	,,	,,
६. गे अ च	,,	६०	,,	,,
७. पितादीनमनत्वादी नं	,,	१७६	,,	,,

पितु > पितृ—

	एक०	बहु०
प०	पिता	पितरो
दु०	पितरं	,, पितरे
त०	पितरा	पितरेहि, पितरेभि, पितूहि, पितूभि
पं०	,,	,, ,,
च० छ०	पितु, पितुनो, पितुस्स	पितरानं, पितानं, पितूनं
स०	पितरि	पितरेसु, पितूसु
आ० ल०	पित, पिता	पितरो

पालि में स्त्रीलिंग के आकारांत, इकारांत, ईकारांत, उकारांत और ऊकारांत रूप मिलते हैं। आकारांत में प्र० एक०-सि, संबोधन एक०-ग के प्रत्ययों का लोप हो जाता है।[1] उदा० लता। प्र० बहु०, द्वि० बहु० की विभक्तियों का स्त्रीलिंग के सभी रूपों में विकल्प से लोप मिलता है।[2] उदा० लता, लतायो, रत्ती, रत्तियो, इत्थी, इत्थियो, धेनु, धेनुयो, वधू, वधुयो। स्त्रीलिंग के एक वचन के सभी रूपों में -य अथवा -या का प्रयोग होता है।[3] उदा० लताय, रत्तिया आदि। स्त्रीलिंग में सप्तमी एक०-स्मिं का विकल्प से -यं मिलता है।[4] उदा० लतायं, लताय, रत्तियं, रत्तिया आदि। संबोधन एक० में विकल्प से -ए रूप होता है।[5] उदा० हे लते, लता।

स्त्रीवाचक शब्दों में यकार बाद में हो तो अन्त्य -इ, -ई का विकल्प से लोप मिलता है।[6] उदा० रत्यो, रत्या, रत्यं। सप्तमी एक०

---

1. गसीनं — सू० सं० ११६ काण्ड २ मोग्गल्लान व्याकरण
2. [illegible] — ,, ११७ ,, ,,
3. घपतेकस्मिं नादीनं यया — ,, ४३ ,, ,,
4. यं — ,, १०४ ,, ,,
5. घ ब्रह्मादित्वे — ,, ६२ ,, ,,
6. ये पस्सिवण्णस्स — ,, ११८ ,, ,,

-स्मिं में रत्ति आदि शब्दों के बाद -ओ होता है ।[1] उदा० रत्तो, रत्तियं । स्त्रीवाचक ईकारांत शब्द के बाद -अं का विकल्प से -यं हो जाता है ।[2] उदा० इत्थियं, इत्थिं । स्त्रीवाचक एक० के सभी रूपों में आकारांत और ओकारांत शब्दों को छोड़ कर शेष में दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाता है ।[3] उदा० इत्थिं, इत्थिया, इत्थियो, वधुं, वधुया, वधुयो आदि । स्त्रीलिंग के उक्त रूपों का विकास निम्नलिखित होगा—

लता—	एक०	बहु०
प०	लता	लता, लतायो
दु०	लतं	,, ,,
त०	लताय	लताहि, लताभि
पं०	,,	,, ,,
च० छ०	,,	लतानं
स०	,, , लतायं	लतासु
आल०	लते	लता, लतायो

रत्ति <रात्रि—

प०	रत्ति	रत्ती, रत्तियो, रत्यो
दु०	रत्तिं	,, ,,
त०	रत्तिआ, रत्या	रत्तीहि, रत्तीभि
पं०	,, ,,	,, ,,
च० छ०	,, ,,	रत्तीनं
स०	रत्तियं, रत्यं, रत्तिं, रत्तो	रत्तीसु, रत्तिसु
आल०	रत्ति	रत्ती, रत्तियो, रत्यो

---

१. रत्यादीहि टो स्मिनो — सूत्र सं० ५७ काण्ड २ मोग्ग० व्या०
२. यं पीतो — ,, ७५ ,, ,,
३. यो नु अघो नं — ,, ६६ ,, ,,

इत्थी <स्त्री—

	एक०	बहु०
प०	इत्थी	इत्थी, इत्थियो
दु०	इत्थियं, इत्थिं	,, ,,
त०	इत्थिया	इत्थीहि, इत्थीभि
पं०	,,	,, ,,
च० छ०	,,	इत्थीनं
स०	,, , इत्थियं	इत्थीसु
आल०	इत्थि	इत्थी, इत्थियो

धेनु—

प०	धेनु	धेनू, धेनुयो
दु०	धेनुं	धेनू, धेनुयो
त०	धेनुया	धेनूहि, धेनूभि
पं०	,,	,, ,,
च० छ०	,,	धेनूनं
स०	,, , धेनुयं	धेनूसु
आल०	धेनु	धेनू, धेनुयो

वधू—

प०	वधू	वधू, वधुयो
पु०	वधुं	,, ,,
त०	वधुया	वधूहि, वधूभि
पं०	,,	,, ,,
च० छ०	,,	वधूनं
स०	,, , वधुयं	वधूसु
आल०	वधु	वधू, वधुयो

मातु <मातृ—

प०	माता	मातरो
दु०	मातरं	मातरे, मातरो
त०	मातुया	मातरेहि, मातरेभि

	एक०	बहु०
पं०	मातुया	मातरेहि, मातरेभि
च० छ०	,,	मातरानं, मातानं, मातूनं
स०	मातरि	मातरेसु, मातुसु
आल०	मात, माता	मातरो

मुख्य प्राकृतों में पालि की अपेक्षा संज्ञा आदि रूपों के विकास में सादृश्य का प्रभाव कुछ और व्यापक रूप में मिलता है। पुलिंग अकारांत शब्द प्रथमा एक० (-सु) में -ओ का प्रयोग मिलता है। उदा० वृक्षः > वच्छो, कामः > कामो। पु० अका० प्रथमा बहु० और द्वितीया बहु० (क्रमशः जश् और शस) की विभक्तियों का लोप हो जाता है।[२] उदा० वृक्षाः > वच्छा, वृक्षान् > वच्छे। संभवतः प्रथमा बहु० और द्वितीया बहु० में अन्तर रखने के लिये एक का रूप तो वच्छा ही रहा और दूसरे का वच्छे हो गया। पु० अका० द्वितीया एक० (-अम्) की विभक्ति का लोप हो जाता है।[3] उदा० वृक्षम् >वच्छं पु० अ० तृतीया एक० (-टा) और षष्ठी बहु० (-आम्) की विभक्तियों के स्थान पर-ण का प्रयोग मिलता है।[४] उदा० वृक्षेण>वच्छेण, वृक्षाणां> वच्छाण। पु० अका० तृतीया

१ अत ओत सोः	सूत्र सं० १	परि० ५	प्रा० प्र०
अतः सेर्डोः	,, २	तृ० पाद	,, व्या०
२. जश् शसोर्लोपः	,, २	परि० ५	,, प्र०
जस शसोर्लुक	,, ४	तृ० पाद	,, व्या०
३. अतोऽमः	,, ३	परि० ५	,, प्र०
अमोस्य	, ५	तृ० पाद	,, व्या०
४. टामोर्णः	,, ४	परि० ५	,, प्र०
टा आमोर्णः	,, ६	तृ० पाद	,, व्या०

वहु० (भिस्) की विभक्ति के लिये -हिं य -हि का प्रयोग हुआ है।[१] उदा० वृक्षैः>वच्छेहिं, वच्छेहि। इसी का योग पुलिंग इका० उका०, स्त्री० अका०, ईका०, ऊका० और संख्यावाचक शब्दों में होता है।[२] उदा० अग्गीहिं, वाऊहिं, मालाहिं, णईहिं, वहूहिं, दोहिं, तीहिं, चअहिं आदि। पु० अका० पंचमी एक० (ङ)सि की विभक्ति के लिये-आ-, दो, -दु, -हि के प्रयोग मिलते हैं।[३] उदा० वृक्षात् >वच्छा, वच्छादो, वच्छादु, वच्छाहि। पु० अका० पंचमी वहु (-भ्यस्) की विभक्ति के लिये-हिन्तो, सुन्तो के प्रयोग हुए हैं।[४] उदा० वृक्षेभ्यः> वच्छाहिन्तो, वच्छासुन्तो। पालि और शिलालेखी प्राकृत में यह विकास नहीं मिलता। -भ्यस् के पूर्व अकार वैकल्पिक रूप से दीर्घ स्वर में वदल जाता है। वच्छाहिन्तो, वच्छेहिंतो।[५]

पु० अका० षष्ठी एक० (ङस) की विभक्ति के लिये -स्स का विकास मिलता है।[६] उदा० वृक्षस्य> वच्छस्स। पु० अका० सप्तमी एक० -ङी की विभक्ति का विकास -ए और -म्मि में हुआ है।[७] उदा०

---

१. भिसोहिं	सूत्र संख्या	५	परि० ५	प्रा०	प्र०
भिसो हि हिं हिं	,,	७	तृ० पाद	,,	व्या०
२. शेषोऽदन्तवत्	,,	६०	परि० ६	,,	प्र०
३. ङसेरा-दो-दु-हयः	,,	६	,, ५	,,	,,
ङसेस् त्तो दो-दु हि-हिन्तो लुकः	,,	८	तृ० पाद	,,	व्या०
४ भ्यसो हिन्तो सुन्तो	,,	७	परि० ६	,,	प्र०
भ्यसस् त्तो दो दु हि हिन्तो सुन्तो	,,	९	तृ० पाद	,,	व्या०
५. भ्यसि वा	,,	१३	,,	,,	,,
६. स्सो ङसः	,,	८	परि० ५		प्र०
ङ सः स्सः	,,	१०	तृ० पाद	,,	व्या०
७. ङे रेम्मी	,,	९	परि० ५	प्रा०	प्र०
ङेम्मि ङे:	,,	११	तृ० पाद०	प्रा०	व्या०

-वृक्षे > वच्छे, वच्छम्मि। पु० अका० सप्तमी बहु० (सुप्) का विकास -सु रूप में मिलता है।[1] उदा० वृक्षेषु > वच्छेसु, वच्छेसुं। पु० अका० प्रथमा बहु० जस द्वितीया बहु० शस, पंचमी एक० (ङसि,) षष्ठी बहु० (-आम्) में -आ का योग हो जाता है।[2] उदा० वृक्षा > वच्छा, वृक्षान् > वच्छा, वृक्षात् > वच्छादो, वच्छादु > वच्छाहि, वृक्षाणाम् > वच्छाण, वच्छाणं। पु० अका० षष्ठी एक०, सप्तमी एक० की विभक्तियों को छोड़ कर शेष में संज्ञाओं के अन्त्य -अ के लिये -ए का प्रयोग मिलता है।[3] उदा० वृक्षान् > वच्छे, वृक्षेण > वच्छेण, वृक्षैः > वच्छेहिं, वच्छेहि, वृक्षेषु > वच्छेसु। पु० अका० शब्द में पंचमी एक० (ङसि) और सप्तमी एक -ङि० के पूर्व संज्ञा के अन्त -अ का लोप हो जाता है।[4] उदा० वृक्षात् > वच्छा, वृक्षे > वच्छे।

अतएव प्राकृत में पुलिंग अकारान्त का रूप-विकास इस प्रकार होगा—

वच्छ > वृक्ष	एक वचन	द्विवचन
प्र०	वच्छो	वच्छा
द्वि०	वच्छं	वच्छे, वच्छा
तृ०	वच्छेण	वच्छेहिं, वच्छेहि
पं०	वच्छादो, वच्छादु, वच्छाहि, वच्छा	वच्छाहिन्तो, वच्छासुन्तो, वच्छेहिन्तो, वच्छेसुंतो
च० ष०	वच्छस्स	वच्छाण, वच्छाणं

---

१. सुपः सुः	सूत्र संख्या	१०	परि० ५	प्रा० प्र०
२. जस-शस्-ङस्यांसु दीर्घः	,,	११	,,	,,
जस्-शस् ङसि-त्तो-दो द्वामि दीर्घः	,,	१२	तृ० पाद	प्रा० व्या०
३. ए च सुप्यङिङसोः	,,	१२	परि ५	प्रा० प्र०
टाण शस्येत्	,,	१४	तृ० पा०	प्रा० व्या०
भिस्भ्यस्सुपि	,,	१५	,,	,,
४. क्वचिद् ङसि-ङ्योर्लोपः	,,	१३	परि० ५	प्रा० प्र०

	एक०	बहु०
स०	वच्छे, वच्छम्मि	वच्छेसु, वच्छेसुं
अ०	वच्छ	वच्छा

इकारांत और उकारान्त शब्दों में द्वितीया बहु० (शस्) में -णो का योग मिलता है।[1] उदा० अग्नीन्>अग्गिणो, वायून् >वाउणो। इका० और उका० शब्दों में षष्ठी एक० (-ङस्) का विकास भी -णो में हुआ है।[2]उदा० अग्नेः>अग्गिणो, अग्गिस्स, वायोः>वाउणो, वाउस्स। इका० और उका० शब्दों में प्रथमा बहु० (जस्) में -ओ और -णो मिलते हैं।[3] उदा० अग्नयः>अग्गीओ, अग्गिणो, वायवः> वाउओ, वाउणो। नपुंसक लिंग में भी यही प्रयोग मिलता है। इका० और उका० शब्दों में तृतीया एक० (-टा) में -णा का विकास हुआ है।[4] उदा० अग्निना> अग्गिणा, वायुना> वाउणा। इका० और उका० शब्दों में प्रथमा एक० (सु), तृतीया बहु० (भिस्), सप्तमी बहु० में पूर्व स्वर दीर्घ हो जाता है।[5] उदा० अग्निः > अग्गी, वायुः> वाऊ, अग्निभिः > अग्गीहिं, अग्गीहि, वायुभिः> वाऊहिं, वाऊहि, अग्निषु> अग्गीसु, वायुषु> वाऊसु। नपुसंक लिंग में भी ये ही रूप मिलते हैं। उदा० गिरी, बुद्धी, तरू।

---

१. इदुतोः शसो णो	सूत्र सं०	१४	परि० ५	प्रा० प्र०
२. ङसो वा	,,	१५	,,	,,
ङसि ङसोः पुंक्लीवे वा	,,	२३	तृ० पा०	प्रा० व्या०
३ जसश्च ओ णत्वम्	,,	१६	परि० ५	प्रा० प्र०
जस् शसोर्णो वा	,,	२२	तृ० पा०	प्रा० व्या०
४. टा णा	,,	१७	परि० ५	प्रा० प्र०
टो णा	,,	२४	तृ० पा०	प्रा० व्या०
५. सुभिस् सुप्सु दीर्घः	,,	१८	परि० ५	प्रा० प्र०
अक्लीवे सौ	,,	१९	तृ० पा०	प्रा० व्या०
८. इदुतो दीर्घः	,,	१६	तृ० पा०	प्रा० व्या०

जब कि प्रथमा एक० की विभक्ति (सु) संबोधन के लिये प्रयुक्त होती है तो -ओ, कोई दीर्घ स्वर और अनुस्वार का प्रयोग नहीं किया जाता।[1] उदा० हे वच्छ, हे अग्गि, हे वाऊ, हे वण, हे दिहि, हे महु, हे विलासिणि। इकारांत और उकारांत संज्ञाओं में सप्तमी एक० (ङि), पंचमी एक० (ङसि) में -ए और -आ का क्रमशः प्रयोग नहीं मिलता।[2] उदा० अग्नौ > अग्गिम्मि, वायौ > वाउम्मि, अग्नेः > अग्गीदो, अग्गीदु, अग्गीहि, वायोः > वाऊदो, वाऊदु वाऊहि। इकारान्त और उकारान्त संज्ञाओं के अन्त्य स्वर के लिये यदि पंचमी बहु० (भ्यस्) की विभक्ति बाद में हो तो -ए का प्रयोग नहीं होता।[3] उदा० अग्निभ्यः > अग्गीहिन्तो, अग्गीसुन्तो, वायुभ्यः > वाउहिन्तो, वाऊसुन्तो। अतएव पुलिंग इकारान्त और उकारान्त का रूप-विकास निम्नलिखित होगा—

अग्गि < अग्नि

	एकवचन	बहुवचन
प्र०	अग्गी	अग्गी, अग्गीओ, अग्गिणो, अग्गओ
द्वि०	अग्गिं	अग्गिणो
तृ०	अग्गिणा	अग्गीहिं अग्गीहि
पं०	अग्गीदो	अग्गीदु, अग्गीहि, अग्गीहिन्तो, अग्गीसुंतो
च०ष०	अग्गिस्स, अग्गिणो, अग्गओ	अग्गीणं, अग्गीण
स०	अग्गिम्मि	अग्गीसुं, अग्गीसु
सं०	अग्गि,	अग्गी, अग्गीओ, अग्गिणो, अग्गओ

		एकवचन	बहुवचन
वाउ	प्र०	वाऊ	वाऊ, वाऊओ, वाउणो, वाअओ
	द्वि०	वाउं	वाउणो

---

१. नामन्त्रणे सावोत्वदीर्घ बिन्दवः सूत्र सं० २७ परि० ५ प्रा० प्र०
२. न ङिङस्योरेदातौ " ६१ परिच्छेद ६ प्रा० व्या०
३. ए भ्यसि " ६२ " प्रा० प्र०

	एकवचन	बहुवचन
तृ०	वाउणा	वाऊहिं, वाऊहि
पं०	वाऊदो, वाऊदु, वाऊहि	वाऊहिन्तो, वाऊसुन्तो
च० ष०	वाउणो, वाउस्स, वाअओ	वाऊणं, वाउण
स०	वाउम्मि	वाऊसु, वाऊसुं
सं०	वाउ	वाऊ, वाउणो, वाऊओ, वाअओ

स्त्रीवाचक संज्ञाओं के द्वितीया बहु० (शस्) में -उ और -ओ का प्रयोग मिलता है।[1] उदा० माला:> मालाओ, मालाउ, नदी > नईओ, नईउ, वधू:> वहूओ, वहूउ। स्त्रीवाचक संज्ञाओं में प्रथमा बहु० (जस्) में -उ, -ओ के वैकल्पिक प्रयोग मिलते हैं।[2] उदा० माला:> मालाओ, मालाउ, नद्य:>णईओ, णईउ, णई। स्त्रीवाचक संज्ञाओं में द्वितीया एक० (-अम्) की विभक्ति के पूर्व दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाता है।[3] उदा० मालाम् >मालं,नदीम् >णइं,वधूम् >वहुं। स्त्रीवाचक संज्ञाओं में तृतीया एक० (टा) षष्ठी एक० (ङस्) सप्तमी एक० (ङि) की विभक्तियों के स्थान पर -इ,-ए, -अ और-आ के प्रयोग मिलते हैं।[4] उदा० नद्या, नद्या:, नद्याम्> णईइ, णईए, णईअ, णईआ। परन्तु स्त्रीलिंग की आकारांत संज्ञाओं में -अ और -आ के प्रयोग नहीं मिलते।[5] उदा० मालया, मालाया:, मालायाम्> मालाइ, मालाए, मालाउ। स्त्रीवाचक आकारांत संज्ञाओं में अन्त्य वर्ण -आ

१. स्त्रियां शस उदोतौ	सूत्र सं०	१६	परि० ५	प्रा० प्र०
स्त्रियामुदोतौ वा	,,	२७	तृ० पाद	प्रा० व्या०
२. जसो वा	,,	२०	परि० ५	प्रा० प्र०
३. अमिह्रस्वः	,,	२१	,,	,,
ह्रस्वोमि	,,	३६	तृ० पाद	प्रा० व्या०
४. टा-ङस् ङीनाम इदे ददातः	,,	२२	परि० ५	प्रा० प्र०
टा-ङस् ङेर दादिदेद्वातुङसेः	,,	२६	तृ० परि०	प्रा० व्या०
५. नातोऽदातौ	,,	२३	परि० ५	प्रा० प्र०
नात आत्	,,	३०	तृ० पा०	प्रा० व्या०

और -ई का अनियमित विपर्यय मिलता है।[१] उदा० सहमाना>सहमाणा, सहमाणी, हरिद्रा> हलद्दा, हलद्दी, सूर्पनखा > सुप्पणहा, सुप्पणही, छाया> छाहा, छाही। पुलिंग रूपों में भी यह परिवर्तन मिलता है। उदा० हसमाणी, हसमाणा। स्त्रीवाचक आकारांत संज्ञाओं की संबोधन विभक्ति में प्रथमा एक० -आ के स्थान पर-ए-हो जाता है।[२] उदा० हे माले। स्त्रीवाचक ईकारात और ऊकारान्त संज्ञाओं का संबोधन विभक्ति में ई और -ऊ का ह्रस्व रूप हो जाता है।[३] उदा० हे नइ, हे वहु। नपुंसकसूचक संज्ञाओं में प्रथमा एक वचन (सु) के पूर्व अन्त्य स्वर दीर्घ नहीं होता।[४] उदा० दधि> दहि, मधु> महुं, हविस्> हविं। नपुंसकसूचक संज्ञाओं में प्रथमा बहु० (जस्), द्वितीया बहु० (शस्)में -इ का प्रयोग होता है और पूर्व का स्वर दीर्घ हो जाता है।[५] उदा० वनानि> वणाइ, दधीनि> दहीइ, मधूनि> महूइ। नपुंसकसूचक संज्ञाओं में प्रथमा एक० (सु) में अनुस्वार का प्रयोग होता है।[६] उदा० वणं, दहिं, महुं। अतएव स्त्रीवाचक संज्ञाओं ईकारान्त,- अकारांत, आकारांत तथा नपुंसकसूचक अकारांत का रूप-विकास प्राकृत भाषाओं में इस प्रकार होगा—

नदी > णई

	एक०	बहु०
प्र०	णई	णईओ, णईउ, णई

१. आदीतौ बहुलम्	सूत्र संख्या	२४	परि० ५	प्रा० प्र०
प्रत्यये ङीर्न वा	,,	३०	तृ० पा०	प्रा० व्या०
२. स्त्रियामात एत	,,	२८	परि० ५	प्रा० प्र०
वाप ए	,,	४१	तृ० पाद	प्रा० व्या०
३. इदूतोर्ह्रस्वः	,,	२९	परि० ५	प्रा० प्र०
,, ,,	,,	४२	तृ० पाद	प्रा० व्या०
४. न नपुंसके	,,	२५	परि० ३	प्रा० प्र०
५. इज् जस् शसोर् दीर्घश्च	,,	२६	,,	,,
६. सोर्बिन्दुर्नपुंसके	,,	३०	,,	,,

	एक०	बहु०
द्वि०	णइं	णईओ, णईउ, णई
तृ०	णईइ, णईअ, णईआ, णईए, णईउ	णईहिं, णईहि
पं०	णईदो णईदु, णईहि, णईई णईअ, णईआ, णईउ	णईहिन्तो, णइसुन्तो
च०,ष०	णईइ, णईआ, णईअ, णईआ, णईउ णईए	णईणं, णईण
स०	णईइ, णईअ, णईआ, णइए णईउ	णईसु, णईसुं
सं०	णइ	णईओ, णईउ, णई

माला

प्र०	माला	माला, मालाओ, मालउ
द्वि०	मालं	,,
तृ०	मालाअ, मालाइ, मालाए	मालाहि, मालाहिं
पं०	मालाअ, मालाइ, मालाए मालत्तो, मालाओ, मालाउ मालाहिंतो	मालत्तो, मालाओ, मालाउ मालाहिन्तो, मालासुन्तो
च० ष०	मालाअ, मालाइ, मालाए	मालाण, मालाणं
स०	,,	मालासु, मालासुं
सं०	माले, माला	माला, मालाओ, मालाउ

वधू > वहू

प्र०	वहू	वहूओ, वहूउ, वहू
द्वि०	वहुँ	वहूओ, वहूउ, वहू
तृ०	वहूई, वहूअ, वहूआ वहूए, वहूउ	वहूहि, वहूहिं

	एक वचन	बहु वचन
पं०	वहूदो, वहूदु, वहुश्र, वहूहि, वहूश्रो, वहूए वहूउ	वहूहिन्तो, वहूसुन्तो ,,
ष०	वहूई, वहूश्र, वहूश्रा, वहूए वहूउ	वहूणं, वहूण
स०	वहूई, वहूश्र, वहूश्रा, वहूए वहुउ	वहूसु, वहूसं
सं०	वहु	वहूश्रो, वहूउ, वहू

वन (नपु०) > वण

प्र०	वणं	वणाइं, वणाइ
द्वि०	,,	,,
तृ०	वणेण	वणेहिं, वणेहि
प०	वणादो, वणादु, वणाहि	वणासुन्तो, वणेसुंतो,
ष०		वणाहिन्तो, वणेहिन्तो
	वणस्स	वणाणं, वणाण
स०	वणे, वणम्मि	वणेसु
सं०	वण	वणाइं, वणाइ, वणाई

संस्कृत ऋकारान्त शब्दों में विभक्तियों (सुप्) के पूर्व-ऋ का विकास -आर मिलता है ।[1] उदा० भर्तृ > भत्तार, भत्तारो, भत्तारे । मातृ शब्द के -ऋ का विकास -आ मिलता है और इसका रूप-विकास स्त्रीवाचक आकारांत रूप के सदृश होता है ।[2] उदा० मातृ > माश्रा, मातरम् > माश्रं, मात्रा, मातुः । मातरि > माश्राइ, माश्राए, माश्राउ । ऋकारान्त शब्दों में प्रथमा

---

१. ऋत आरः सुपि — सूत्र संख्या ३१ : परि० ५ प्रा० प्र०
आरः स्यादौ — ,, ४५ तृ० पाद ,, व्या०
२. मातुरात् — ,, ३२ परि० ५ ,, प्र०
आ अरा मातुः — ,, ४६ तृ० पाद ,, व्या०

बहु० (जस्), द्वितीया बहु० (शस्) तृतीया एक० (टा), षष्ठी एक० (ङस्), सप्तमी बहु० (सुप) में ऋ>उ का प्रयोग मिलता है।[1] उदा० भर्तृ-भर्तारः>भत्तुणो,भर्तॄन् >भत्तुणो, भत्तारे,भर्त्रा>भत्तुणा, भत्तारेण, भर्तुः>भत्तुणो, भत्तारस्स, भर्तृषु>भत्तुसु, भत्तारेसु। क्रमदीश्वर के अनुसार उक्त विभक्तियों में भर्तृ > भट्टि हो जाता है। पितृ, भ्रातृ और जामातृ शब्दों में विभक्तियों के जुड़ने के पूर्व ऋ > अ हो जाता है।[2] उदा० पितरम् > पिअरं, पिता > पिअरेण, भ्रातरम् > भाअरं भ्रात्रा > भाअरेण, जामातरम् >जामाअरं, जामात्रा >जामाअरेण। पितृ, भ्रातृ, जामातृ शब्दों में प्रथमा एक० (सु) में-ऋ>-आ का वैकल्पिक प्रयोग मिलता है।[3] उदा० पितृ, पिता> पिआ, पिअरो, भ्राता> भाआ, भाअरो, जामातृ, जामाता> जामाआ, जमाअरो। अतएव पुलिंग ऋकारान्त का रूप-विकास इस प्रकार होगा—

भर्तृ— एक०	बहु०
प्र० भत्तारो	भत्तारा, भत्तुणो, भत्तू, भट्टिणो
द्वि० भत्तारं	भत्तारो, भत्तुणो, भत्तू, भट्टिणो
तृ० भत्तारेण, भत्तुणा, भट्टिणा	भत्तारेहि, भत्तारेहिं
पं० भत्तारादो, भत्तारादु, भत्ताराहि	भत्ताराहिन्तो, भत्तारासुन्तो
ष० भत्तारस्स, भत्तुस्स, भत्तुणो, भट्टिणो	भत्ताराणं, भत्ताराण
स० भत्तारे, भत्तारम्मि	भत्तारेसु, भत्तारेसुं, भत्तूसु भत्तूसुं
सं० भत्तार	भत्तारा, भत्तुणो, भत्तू, भट्टिणो

1. उर् जश् टाङस् सुप्सु वा — सूत्र संख्या ३३ — परि० ५ — प्रा० प्र०
   ऋतामुदस्यमौसु वा — ,, ४४ — तृ० पाद — ,, व्या०
2. पितृ भ्रातृ जामातृणामरः — ,, ३४ — परि० ५ — ,, प्र०
   नाम्न्यरः — ,, ४७ — तृ० पाद — ,, व्या०
3. आच सौ — ,, ३५ — परि० ५ — ,, प्र०
   आ सौ न वा — ,, ४८ — तृ० पाद — ,, व्या०

भ्रातृ—	एक वचन	बहु वचन
प्र०	भाआ, भाअरो	भाअरा
द्वि०	भाअरं	भाअरे
तृ०	भाअरेण	भाअरेहिं, भाअरेहि
पं०	भाआरादो,भाअरादु,भाअराहि	भाअराहिन्तो, भाअरासुन्तो
	भाअरस्स	भाअराणं, भाअराण
स०	भाअरे, भाअरम्मि	भाअरेसुं, भाअरेसु
सं०	भाअ, भाअर,	भाअरा

ऋकारान्त शब्दों का विकास स्त्रीवाचक आकारांत के सदृश होता है। व्यंजनांत राजन् शब्द के प्रथमा एक० (सु) में अन्> आ का प्रयोग मिलता है।[1] उदा० राजन्- राजा> राआ। संबोधन में राजन् में अनुस्वार का वैकल्पिक प्रयोग होता है।[2] उदा० हे राअं, हे राअ। राजन् शब्द में प्रथमा बहु० (जस्), द्वितीया बहु० (शस्), षष्ठी एक० (ङस्) रण्णो के लिये-णो का प्रयोग होता है।[3] उदा० राजानः> राआणो, राज्ञः> राआणो, राज्ञः> राइणो। क्रमदीश्वर के अनुसार -णो का वैकल्पिक प्रयोग होता है। उदा० राजानः > राइणो, राआ। राज्ञः > राइणो, राआणो, राज्ञः > राअस्स। राजन् शब्द में द्वितीया बहु० (शस्) में -ए का वैकल्पिक प्रयोग किया जाता है।[4] उदा० राज्ञः> राए, राइणो, राआणो, राआणो। राजन् शब्द में षष्ठी बहु० (आम्) के लिये-णं का प्रयोग मिलता है।[5] उदा

१, राज्ञश्च	सूत्र संख्या ३१	परि० ६	प्रा० प्र०
राज्ञः	,, ४६	तृ० पाद	,, व्या०
२, आमन्त्रणे वा विन्दुः	,, ३७	परि० ५	,, प्र०
३, जश् शस् ङसां णो	,, ३८	,,	,,
जस्-शस् ङसि, ङसांणो	,, ५०	तृ० पाद	,, व्या०
४, शस् एत्	,, ३६	परि० ५	,, प्र०
५, आमो णं	,, ४०	,,	,,

राज्ञाम्> राआणं। राजन् में तृतीया एक० (टा) में -णा का प्रयोग होता है।[१] उदा० राज्ञा> राइणा, रण्णा। राजन् में षष्ठी एक० (ङस्) और तृतीया एक० (टा) के अन्त्य व्यंजन का या तो लोप हो जाता है या वैकल्पिक रूप से उसका द्वित्व हो जाता है।[२] उदा० राज्ञः> राइणो, रण्णो, राज्ञा> राइणा, रण्णा। राजन् के अन्त्य व्यंजन का यदि द्वित्व नहीं होता तो तृतीया एक० (टा०) और षष्ठी एक० (ङस्) के पूर्व -इ का योग हो जाता है।[३] उदा० राज्ञा> राइणा, राज्ञः> राइणो। राजन् में षष्ठी एक० (ङस्) के अतिरिक्त अन्य विभक्तियों में भी णो या -णं हो तो -ज> -अ जाता है।[४] उदा० राज्ञः>राआणो, राज्ञाम्> राआणं। अन्य विभक्तियों में राजन् का विकास पुलिंग अकारांत के सदृश होता है। अस्तु, राजन् का रूप विकास निम्नलिखित होगा—

	एक०	बहु०
प्र०	राआ	राआणो, राआ
द्वि०	राअं	राआणो राए, राआणे
तृ०	राइणा, रण्णा	राएहि, राएहि
पं०	राआ, राआदो, राआदु, राआहि	राआहिन्तो, राआसुन्तो, राएहिन्तो, राएसुन्तो
ष०	राइणो, रण्णो, राणो, राअस्स	राअणं, राआण
स०	राए, राअम्मि	राएसुं, राएसु
सं०	राअ, राअं	राआणो, राआ

१. टाणा	सूत्र सं० ४१	परि० ५	प्रा० प्र०
टोणा	,, ५१	तृ० पाद	,, व्या०
२. ङसश्च् द्वित्वं वान्त्यलोपश्च	,, ४२	परि० ५	,, प्र०
३. इदद्वित्वे	,, ४३	,,	,, ,,
इणममामा	,, ५३	तृ० पाद	,, व्या०
४. आ णोणमोर ङसि	,, ४४	परि० ५	,, प्र०
इर्जस्य णो णा ङौ	,, ५२	तृ० पाद	,, व्या०

आत्मन् शब्द का विकास अप्पाण मिलता है।[1] अप्पाणो, अप्पा, अत्ता आदि। आत्मन् शब्द का परिवर्तन जब अप्पाण रूप में नहीं होता तो उसका रूप-विकास राजन् के सदृश होता है परन्तु इसमें विभक्ति के पूर्व -ई का योग या अन्त्य व्यंजन का द्वित्व नहीं होता। अप्पण का रूप-विकास पु० अकारांत के सदृश होता है।[2] ब्रह्मन् आदि शब्दों का रूप-विकास भी आत्मन् के सदृश होता है।[3] उदा० ब्रह्मन् > बह्मा, ब्रह्माणो, युवन् > जुवा, जुआणो, अध्वन् > अद्धा, अद्धाणो। आत्मन् (अत्ता, अप्पा) शब्द का रूप-विकास इस प्रकार होगा—

	एक०	बहु०
प्र.	अत्ता, अप्पा, अप्पाणो	अत्ता, अताणो, अप्पा, अप्पाणो, अप्पाणा
द्वि.	अत्तं, अप्पं, अप्पाणं	अप्पाणो, अप्पाणे, अप्पाणा
तृ.	अत्तणा, अप्पणा, अप्पाणेण	अत्तेहिं, अत्तेहि, अप्पेहिं, अप्पेहि, अप्पाणेहिं, अप्पाणेहि
पं.	अत्ता, अत्तादो, अत्तादु, अत्ताहि, अप्पा, अप्पाणहि, अप्पादो, अप्पादु, अप्पाहि, अप्पाणा, अप्पाणादो, अप्पाणादु	अत्ताहिन्तो, अत्तासुन्तो, अप्पाहिन्तो, अप्पासुन्तो, अप्पाणाहिन्तो, अप्पाणासुन्तो, अप्पाणेहिन्तो, अप्पाणेसुन्तो
ष०	अत्तस्स, अत्तणो, अप्पस्स, अप्पणो, अप्पाणस्स	अत्ताणं, अत्ताण, अप्पाणं, अप्पाण, अप्पाणाणं, अप्पाणाण
स.	अत्ते, अत्तम्मि, अप्पे, अप्पम्मि, अप्पाणे, अप्पाणम्मि	अत्तेसुं, अत्तेसु, अप्पेसुं, अप्पेसु, अप्पाणेसुं, अप्पाणेसु

१, आत्मनोऽप्पाणो वा	सूत्र सं० ४५	परि० ५	प्रा० प्र०
२, इत्व द्वित्व वज्ज राजवदनादेशे	,, ४६	,,	,, ,,
पुंस्यन् आणो राजवच्च	,, ५६	तृ० पाद०	,, व्या०
३. ब्रह्माद्या आत्मवत्	,, ४७	परि० ५	,, प्र०

एक वचन	वहु वचनं
सं. अत्तं, अत्त, अप्पं, अप्प, अप्पाण	अत्ता, अत्ताणो, अप्पा, अप्पाणो, अप्पाणा

सर्वनाम और संख्यावाचक शब्दों का रूप-विकास—

प्राकृत में संज्ञा के विभिन्न रूपों में ध्वनि-परिवर्तन और सादृश्य के कारण जो सरलता प्राप्त होती है वह सर्वनाम आदि रूप के विकास में भी मिलती है। उनमें वहुत अधिक भिन्नता नहीं मिलती। संस्कृत की जिन विभक्तियों का योग संज्ञा रूपों में होता है प्राय: उन्हीं का योग सर्वनाम आदि रूपों में भी पाया जाता है। इसीलिये संज्ञा, सर्वनाम आदि रूपों में पर्याप्त समानता मिलती है।

प्रारंभिक प्राकृत पालि में सर्वनामों का रूप-विकास संज्ञा-रूपों के सदृश होता है। कुछ ही रूपों की विभिन्नता मिलती है। पुरुष-वाचक सर्वनामों में उत्तम पु०, मध्यम पु० के प्रयोग तीनों लिंगों में समान होते हैं। उत्तम पु० अम्ह (अहं) का प्रथमा एक० (सि) में अहं रूप होता है।[1] प्र० वहु० यो में मयं अस्मा, अम्हे रूप मिलते हैं।[2] प्रथमा से लेकर चतुर्थी और षष्ठी वहु०-में अम्ह का णो और तुम्ह (मध्यम पु०) का वो रूप होता है।[3] तृ० एक० ना और च० प० एक०(स) में अम्ह का 'मे' और तुम्ह का 'ते' विकल्प से मिलता है।[4] द्वि० एक० (अं) में अम्ह का मं, ममं और 'तुम्ह' का (तं, तवं) होता है।[5] द्वितीया वहु (यो) अम्ह का अम्हं, अम्हाकं, अम्हे और तुम्ह के तुम्हं तुम्हाकं,

१ सि म्ह हं	सूत्र संख्या २१२	काण्ड २	मोग्गल्लान व्या०
२. मय मस्माम्ह स्स	,, २११	,,	,,
३. योनं हि स्व पञ्चम्या वो नो	,, २३५	,,	,,
४. ते मे ना से	,, २३६	,,	,,
५. अम्हि तं मं तवं ममं	,, २२८	,,	,,

तुम्हें मिलते हैं।[१] तृतीया० एक० (-ना), पंचमी एक० (-स्मा) में अम्ह का मया और तुम्हे का तया होता है।[२] चतुर्थी, षष्ठी एक० (स) अम्ह का 'मम, मय्ह', तुम्ह का 'तव, तुम्हं' मिलता हैं।[३] चतुर्थी, षष्ठी बहु०(-स,-नं)में अम्ह का अस्माकं, अम्हाकं, ममं, मम होते हैं।[४] षष्ठी बहु० में अम्ह का अम्हं, अम्हाकं, तुम्ह का तुम्हं, तुम्हाकं मिलते हैं।[५] सप्तमी एक०(-स्मिं) में अम्ह का मयि और तुम्ह का तयि हो जाता है।[६] सप्तमी बहु० (-सु) में अम्ह का वैकल्पिक प्रयोग अस्मा मिलता है।[७] उदा० अस्मासु, अस्मासु। प्र० एक०(-सि) और द्वि० एक०(-अं) में तुम्ह का त्वं, तुवं मिलते हैं।[८] तुम्ह के तया और तयि के (-त>-त्व) वैकल्पिक प्रयोग होते हैं।[९] उदा० त्वया, तया, त्वयि, तयि। तुम्ह का पंचमी एक -स्मा> -म्हा मिलता है।[१०] प्रथम पुरुष सर्वनामों के दो रूप दूरवर्ती असु (वह) और पार्श्ववर्ती एतं, इम (यह) निश्चयवाचक सर्वनामों के अनुसार मिलते हैं और इनके रूप तीनों लिंगों में कुछ भिन्न होते हैं।

द्वितीया विभक्ति में इन, एत का न रूप हो जाता है।[११]-स्सं, -स्सा,

१ तुतिये योम्हिच	सूत्र सं०	२३३	का० २	मोग्ग० व्या०
२. ना स्मा सु तया मया	,,	२३०	,,	,,
३ तव मम तुम्हं मय्हं से	,,	२३१	,,	,,
४ नं से स्व स्मा कं म मं	,,	२१२	,,	,,
५. डं, ङा कं नम्हि	,,	२३२	,,	,,
६ स्मि म्हि तु म्हा म्हानं तयि मयि	,,	२२८	,,	,,
७. सुम्हा म्ह स्सा स्मा	,,	२०५	,,	,,
८, तुम्ह स्स तुवं त्वमम्हि च	,,	२१४	,,	,,
९. तया तयो नं त्व वा तस्स	,,	२१५	,,	,,
१०. स्मा म्हि त्व म्हा	,,	२१६	,,	,,
११. इमे तान मेना न्वादे से दुतियायं	,,	१९९	,,	,,

-स्साय के पूर्व एत, इम आदि के अन्त्य स्वर-अ>-इ मिलता है।[१] उदा० एतिस्सं, एतिस्सा, एतिस्साय आदि। पुलिंग तथा स्त्री० में -प्र० एक० (सि) में इम>अयं हो जाता है।[२] उदा० अयं पुरिसो, अयं इत्थी, पु० तथा नपुं० में तृ० एक० (ना) में इम>अन, इमि मिलता है।[३] उदा० अनेन, इमिना। पु० तथा नपुं० में सप्तमी बहु० (सु)- ष० बहु० (नं०), तृ० पं० बहु०-(हि) में इम>-ए का वैकल्पिक प्रयोग किया जाता है।[४] उदा० एसु, इमेसु, एसं इमेसं, एहि, इमेहि। पु० एक० (सि), द्वि० एक० (अं) में इम> इदं का वैकल्पिक प्रयोग मिलता है।[५] पुलिंग तथा स्त्री० में प्र० एक० (सि) में असु>असु होता है।[६] उदा० असु पुरिसो, असु इत्थी। उक्त प्रयोग में-क के आगम होने पर भी अमु>असु मिलता है।[७] उदा० असुको, अमुको, असुका, अमुमा आदि। पुलिंग में प्र० द्वि० बहु०-यो का अमु के बाद लोप मिलता है।[८] उदा० अमू पुरिसा चतुर्थी एक० (स) में अमु में-नो विभक्ति का प्रयोग नहीं होता।[९] उदा० अमुस्स। नपुं० में प्र० एक० (सि,) द्वि० एक (अं) में अमु> अदुं का वैकल्पिक प्रयोग मिलता है।[१०] अस्तु, पुरुषवाचक सर्वनाम के रूपों का विकास निम्नलिखित होगा—

१. स्स स्सा स्सा येस्वि तरे कञ्ञेतिमा न मि	सद्द सं०	५४	का० २	मोग्ग० व्या०
२. सि म्ह नपुंसक स्सा यं	,,	१२६	,,	,,
३. ना म्ह नि मि	,,	१२८	,,	,,
४. इम स्सा नित्थियं टे	,,	१२७	,,	,,
५ इम रिसदं वा	,,	२०३	,,	,,
६. मस्सा मुस्स	,,	१३१	,,	,,
७. के वा	,,	१३२	,,	,,
८. लोपो मुस्मा	,,	८८	,,	,,
९. न नो सस्स	,,	८९	,,	,,
१०, अमु स्सा दुं	,,	२०४	,,	,,

अम्ह (अस्मद्)—

	एक०	बहु०
प०	अहं	मयं, अस्मा, अम्हे, नो
पु०	मं, ममं	अम्हं, अम्हाकं, अम्हे, नो
त०	मया, मे	अम्हेहि, अम्हेभि, नो
पं०	मया	,, ,,
छ०	मम, मय्हं, अम्हं, ममं, मे	अम्हाकं, अम्हं, अम्हे, नो
स०	मयि	अस्मासु, अम्हेसु

तुम्ह (युष्मद्)—

प०	त्वं, तुवं	तुम्हे, वो
पु०	तं, तवं, त्वं तुवं	,, ,, ,तुम्हं, तुम्हाकं
त०	त्वया, तया, ते	तुम्हेहि, तुम्हेभि, वो
पं०	,, ,, , त्वम्हा	,, ,,
छ०	तव, तुय्हं, तुम्हं, ते	तुम्हाकं, तुम्हे, वो
सं०	त्वयि, तयि	तुम्हेसु

एत (एतद्) पु०

प०	एसो	एते
दु०	एतं, एनं	,, एने
त०	एतेन	एतेहि, एतेभि
पं०	एतम्हा, एतस्मा,	,, ,,
च० छ०	एतस्स	एतेसं, एतेसानं
स०	एतम्हि, एतस्मि	एतेसु

एत (एतद्) नपुं०

प०, दु०	एतं	एते, एनानि

शेष रूप पुंलिंग एत के सदृश होते हैं।

एत-(तद्)-स्त्री०

	एक०	बहु०
प०	एसा	एता, एतायो
दु०	एतं	,, ,,
त०	एताय	एताहि, एताभि
प०	,,	,, ,,
छ०	,, एतिस्साय, एतिस्सा	एतासं, एतासानं
स०	एतिस्सं, एतस्सं, एतासं	एतासु

इम (इदम्) पु०

प०	अयं	इमे
दु०	इमं	,,
त०	अनेन, इमिना	एहि, एभि, इमेहि, इमेभि
पं०	अस्मा, इमस्मा, इमम्हा	,, ,,
छ०	अस्मा, इमस्स	एसं, एसानं, इमेसं, इमेसानं
स०	अस्मिं, इमस्मिं, इमन्दि	एसु, इमेसु

इम-नपु० प० दु० इदं, इमं इमे, इमानि

शेष रूप पुल्लिंग इम के सदृश होते हैं।

इम (इदम्) स्त्री०

प०	अयं	इमा, इमायो
दु०	इमं	,,
त०	इमाय	इमाहि, इमाभि
पं०	,,	,, ,,
छ०	,, , अस्साय, अस्सा, इमिस्साय, इमिस्सा	इमासं, इमासानं
स०	अस्सं, इमिस्सं, इमासं	इमासु

अमु (अदस्)–पु०

प०	असु, अमु	अमू, अमुयो
दु०	अमुं	,, ,,

त०	अमुना	अमूहि, अमूभि
पं०	,, अमुम्हा, अमुस्मा	,, ,,
छ०	अमुस्स, अमुनो	अमूसं, अमूसानं
स०	अमुम्हि, अमुस्मि	अमूसु

अमु (अदस्) नपुं०

प० दु०	अदुं, अमुं	अमू, अमूनि

शेष रूप पुलिंग अमु के सदृश होते हैं।

अमु (अदस्) स्त्री०

प०	असु, असु	अमू, अमुयो
दु०	अमुं	,, ,,
त०	अमुया	अमूहि, अमूभि
पं०	,,	,, ,,
छ०	,, अमुस्सा	अमूसं, अमूसानं
स०	अमुस्सं, अमुयं	अमूसु

सर्व आदि के प्रथमा बहु० (जस्) में- ए का प्रयोग मिलता है[1] उदा० सर्वे> सव्वे, ये> जे, ते > ते, के> के, कतरे> कदरे। सर्व आदि के सप्तमी एक० (-ङि) में- स्सि, -म्मि, -त्थ विभक्तियों का प्रयोग मिलता है।[2] उदा० सर्वस्मिन> सव्वस्सिं, सव्वम्मि, सव्वत्थ, इतरस्मिन्> इअरस्सिं, इअरम्मि, इअरत्थ।

इदम्, एतद्, किम्, यद्, तद् शब्दों में तृतीया एक० (टा) में वैकल्पिक रूप से -इणा का प्रयोग होता है।[3] उदा० अनेन>

---

१. सर्वादेर्जस एत्वम्	सूत्र संख्या	१	परिच्छेद ६	प्रा० प्र०
अतः सर्वादेर्जेर्जसिः	,,	५८	तृ० पाद	,, व्या०
२. ङे स्सि-म्मि-त्थाः	,,	२	परि० ६	,, प्र०
,, ,,	,,	५९	तृ० पाद	,, व्या०
३. उदमेतत् कियत्तद्भ्यष्टा इणा वा	,,	३	परि० ६	,, प्र०

इमिणा, इमेण, एतेन> एदिणा, एदेण; केन> किणा, केण, येन> जिणा, जेण, तेन> तिणा, तेण। इदम् आदि शब्दों के षष्ठी बहु० (-आम्) में वैकल्पिक रूप से- एसि का प्रयोग मिलता है।[1] उदा० एषाम्> इमेसि, इमाण, एतेषाम्> एदेसिं, एदाण, केषाम्> केसिं, काण, येषाम्> जेसिं, जाण, तेषाम्> तेसिं, ताण। किम्, यद् और तद् शब्दों में षष्ठी एक० (ङस्) में वैकल्पिक रूप से -आस का योग पाया जाता है।[2] उदा० कस्य> कास, कस्स, यस्य> जास, जस्स, तस्य> तास, तस्स। किम्, यद् और तद् शब्दों के स्त्रीवाचक रूपों में षष्ठी एक० (ङस्) में -स्सा का प्रयोग हुआ है।[3] उदा० कस्याः> किस्सा, (कीसे, कीआ, कीए, कीअ, कीइ, कीउ)। यस्याः> जिस्सा, (जीसे, जीआ, जीए, जीअ, जीइ, जीउ), तस्याः> तिस्सा, (तीसे, तीआ, तीए, तीअ, तीइ, तीउ)।

किम्, यद् और तद् शब्दों के सप्तमी एक० (ङि) में वैकल्पिक रूप से -हिं का प्रयोग मिलता है।[4] उदा० कस्मिन्> कहिं, (कस्सि, कम्मि, कत्थ)। यस्मिन्> जहिं (जस्सिं, जम्मि, जत्थ), तस्मिन्> तहिं, तस्सिं, तम्मि, तत्थ)।

उपर्युक्त किम्, यद् और तद् शब्दों का समयवाची अर्थ में सप्तमी एक० (ङि) में वैकल्पिक रूप से -आहे और -इआ का

---

१. आम एसिं	सूत्र सं० ४	परि० ६	प्रा० प्र०
आमो डेसिं	,, ६१	तृ० पाद	,, व्या०
२. किं यत्तद्भ्यो ङस आसः	,, ५	परि० ६	,, प्र०
किंतद्भ्यो ङसः	,, ६३	तृ० पाद	,, व्या०
३. इद्भ्यः स्सा से	,, ६	परि० ६	,, प्र०
ईद्भ्यः स्स से	,, ६४	तृ० पाद	,, व्या०
४. ङेर्हिं	,, ७	परि० ६	,, प्र०
नवानिदमेतदो हिं	,, ३०	तृ० पाद	,, व्या०

प्रयोग मिलता है।[1] उदा० कहा> काहे, कइआ, कहि, यदा> जाहे, जइआ, जहिं, तदा> ताहे, तइआ, तहिं।

उपर्युक्त सर्वनामों में पंचमी एक० (ङसि) में -त्तो और -दो का प्रयोग होता है।[2] उदा० कस्मात्> कत्तो, कदो, यस्मात्> जत्तो, जदो, तस्मात्> तत्तो, तदो। तद् सर्वनाम के पंचमी एक० (ङसि) में वैकल्पिक रूप से -ओ का योग होता है।[3] उदा० तत्> तो, तत्तो, तदो। उक्त सर्वनाम तद् में षष्ठी एक० (ङस्) में वैकल्पिक रूप से 'से' का विकास मिलता है।[4] उदा० तस्य, तस्याः> से, पुल्लिंग में तास, तस्स रूप भी मिलते हैं। तद् शब्द में षष्ठी बहु० (-आम्) में वैकल्पिक रूप से 'सिं' का प्रयोग होता है।[5] उदा० तेषां, तासां> सिं, ताण, ताणं, तेसिं।

हेमचन्द्र ने उक्त प्रयोग का उल्लेख इदम्, एतद्, तद् के सब लिंगों में किया है। किम् सर्वनाम का विभक्तियों के जुड़ने के पूर्व -क रूप हो जाता है।[6] उदा० को, के, केण, केहिं। इदम् सर्वनाम का विभक्तियों के जुड़ने के पूर्व इम रूप हो जाता

---

१. आहे इआ काले	सूत्र संख्या ८	परिच्छेद ६	प्रा० प्र०
ङे, डाहे डाला इआ काले	,, ६५	तृ० पाद	,, व्या०
२. त्तो दो ङसेः	,, ९	परि० ६	,, प्र०
३. तद ओश्च	,, १०	,,	,, ,,
तदो डोः	,, ६७	तृ० पाद	,, व्या०
४. ङसा से	,, ११	परि० ६	,, प्र०
ईद्भ्यः स्सा से	,, ६४	तृ० पाद	,, व्या०
५. आमा सिं	,, १२	परि० ६	,, प्र०
किमः कः	,, १३	,,	,, व्या०
किमः कस्त्र तसोश्च	,, ७१	तृ० पाद	,, व्या०
६. किमो डिणो-डीसौ	,, ६८	,,	,, व्या०

है[1] और पंचमी बहु० (भ्यस्) में -इणा जुड़ जाता है। उदा० इमो-इमे, इमेण, इमेहिं, इमिणा, एदिणा, किणा, जिणा, तिणा। इदम् सर्वनाम का षष्ठी एक०-स्स और सप्तमी एक०-स्सि के पूर्व वैकल्पिक रूप से -अ मिलता है।[2] उदा० अस्य> अस्स, इमस्स अस्मिन्> अस्सिं, इमस्सिं। इदम् सर्वनाम में सप्तमी एक० (ङि) में वैकल्पिक रूप से-इ का योग हुआ है।[3] उदा० अस्मिन्> इह, अस्सिं, इमस्सिं, इमम्मि। इमत्थ रूप का प्रयोग नहीं होता। सप्तमी एक० (ङि) में इदम् का -त्थ रूप नहीं मिलता है।[4] इदम् सर्वनाम का प्रथमा एक० (सु) द्वितीया एक० (अम्) का नपुंसक लिंग में विभक्तियों के जुड़ने के पूर्व इदम् इणम् और इणमो रूप हो जाता है।[5]

एतद् सर्वनाम का प्रथमा एक० (सु) में -ओ का वैकल्पिक प्रयोग मिलता है।[6] उदा० एषः>एस, एसो। एतद् सर्वनाम का पंचमी एक० (ङसि) में वैकल्पिक रूप से -त्तो का योग होता है।[7] उदा० एतस्मात् >एत्तो, एदादो, एदादु, एदाहि। एतद् शब्द में -त

१. इदमः इम	सूत्र संख्या १४	परि ६	प्रा० प्र०
,, ,,	,, ७१	तृ० पाद	,, व्या०
इदमेतत्किं-यत्त द्भयष्टो डिणा	,, ६६	तृ० पाद	,, व्या०
२. स्सिं-स्सिमोरद्वा	,, १५	परि० ६	,, प्र०
स्सिं-स्सयोरत्	,, ७४	तृ० पाद	,, व्या०
३. ङेर्देन हः	,, १६	परि० ६	,, प्र०
ङेर्मेनहः	,, ७५	तृ० पाद	,, व्या०
४. न त्थः	,, १७	परि० ६	,, प्र०
,,	,, ७६	तृ० पाद	,, व्या०
५. नपुंसके स्वभोरिदमिणमिणमो	,, १८	परि० ६	,, प्र०
क्लीवे स्यमेदमिणमो च	,, ७९	तृ० पाद	,, व्या०
६. एतदः सावोत्वं वा	,, १९	परि० ६	,, प्र०
७. त्तोङ सेः	,, २०	,,	,, ,,
वैतदो ङसेस्तो त्ताहे	,, ८२	तृ० पाद	,, व्या०

-का-त्तो और-त्थ के पूर्व लोप हो जाता है।[1] उदा० एतस्मात्>एत्तो, एतस्मिन>एत्थ। तद् और एतद् का पुलिंग और स्त्रीलिंग में -त्त के स्थान पर-स का प्रयोग प्रथमा एक० की विभक्ति (सु) के पूर्व होता है।[2] उदा० स: पुरुष>सो पुरिसो, सा-महिला>सा-महिला, एसो, एस, एसा। हेमचन्द्र के अनुसार नपुंसक लिंग में भी -स का रूप मिलता है।[3] अदस् सर्वनाम के -द् के लिये-मु का प्रयोग विभक्तियों के जुड़ने के पूर्व मिलता है और इसका विकास उकारान्त संज्ञा के अनुसार होता है।[4] उदा० असौ पुरुष:>अमू पुरिसो, असौ महिला>अमू महिला, अमी पुरुषा:>अमूओ पुरिसा, अमू: महिला:>अमूओ महिलाओ। अद: वनम्>अमुं वणं, अमूनि वनानि>अमुइं वणाइं। अदस् सर्वनाम के-द के लिये प्रथमा एक० (सु) में वैकल्पिक रूप से सभी लिंगों में,-ह का योग मिलता है।[5] उदा० अह पुरिसो, अह महिला, अह वणां। अदस् का सप्तमी एक० (ङि) में इयम्मि, अयम्मि रूप मिलता है।[6]

उपर्युक्त सर्वनामों के पुलिंग स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंगों के रूप इस प्रकार होंगे—

सर्व>सव्व-पुलिंग—

	एक०	बहु०
प्र०	सव्वो	सव्वे

---

१. त्तोत्थयोस्तलोपः	सूत्र सं० २१	परि० ६	प्रा० प्र०
त्थे च तस्य लुक्	,, ८२	तृ० पाद	,, व्या०
२. तदेतदोः सः सावनपुंसके	,, २२	परि०६	,, प्र०
३. तदश्च तः सोऽक्लीबे	,, ८६	तृ० पाद	,, व्या०
४. अदसो दो मुः	,, २३	परि ६	,, प्र०
मुः स्यादौ	,, ८८	तृ० पाद	,, व्या०
५. हश्च सौ	,, २४	परि० ६	,, प्र०
वादसो दस्य होनोदाम्	,, ८७	तृ० पाद	,, व्या०
६. म्मावयेऔ वा	,, ८९	,,	,, व्या०

	एकवचन	वहु वचन
द्वि०	सव्वं	सव्वे
तृ०	सव्वेण	सव्वेहिं, सव्वेहि
पं०	सव्वादो, सव्वादु, सव्वाहि	सव्वाहिन्तो सव्वासुन्तो
ष०	सव्वस्स	सव्वाणं, सव्वाण
स०	सव्वस्सि, सव्वम्मि, सव्वत्थ	सव्वेसुं, सव्वेसु

सव्व-स्त्रीलिंग

प्र०	सव्वा	सव्वाओ, सव्वाउ, सव्वा
द्वि०	सव्वं	„ „
तृ०	सव्वाइ, सव्वाए	सव्वाहिं, सव्वाहि
प०	„ सव्वादो, सव्वाहि सव्वाहि	सव्वाहिन्तो सव्वासुन्तो
ष०	सव्वाइ, सव्वाए	सव्वाणं, सव्वाण
स०	„	सव्वासुं, सव्वासु

सव्व नपु०

प्र०, द्वि०	सव्वं	सव्वाइं, सव्वाइ, सव्वाणि

शेष रूप पुलिंग के सदृश विकसित होते हैं।

इदम् (इम) पुलिंग—

प्र०	इमो	इमे
द्वि०	इमं	„
तृ०	इमेण, इमिणा	इमेहि, इमेहिं
पं०	इमादो, इमादु, इमाहि	इमाहिन्तो इमासुन्तो
च० ष०	इमस्स, अस्स	इमाणं, इमाण, मेसि
स०	इमस्सिं, इमम्मि, अस्सिं, इह	इमेसु, इमेसु

इमा (इदम्) - स्त्रीलिंग

	एक०	बहु०
प्र०	इमा	इमाओ, इमाउ, इमा
द्वि०	इमं	,,
तृ०	इमाइ, इमाए	इमाहिं, इमाहि

शेष रूप स्त्रीलिंग सर्व के अनुसार विकसित होते हैं।

इम (इदम्)-नपुं०

प्र० द्वि०	इदं, इणं, इणमो	इमाइ, इमाइ, इमाणि

शेष रूप पुलिंग के सदृश होते हैं।

किम्-पुलिंग

प्र०	को	के
द्वि०	कं	,,
तृ०	केण, किणा	केहि, केहिं
पं०	कदो, कत्तो	काहिन्तो, कासुन्तो
ष०	कस्स, कास	काणं, काण, केसिं
स०	कस्सिं, कम्मि, कत्थ, कहिं, कस्सि	केसु, केसुं

किम् - स्त्रीलिंग

प्र०	का	काओ, काउ, कीओ, कीउ
द्वि०	कं	,,
तृ०	कीणा, काए, काइ, कीए, कीइ, कीअ, कीआ	काहिं, काहि, कीहिं, कीहि
पं०	कादो, कादु, कादो कीदु, कीए	काहिन्तो, कासुंतो, कीहिन्तो, कीसुन्तो
ष०	कस्सा, किस्सा, कासे, कीसे, कीए, कीइ, कीअ, कीआ, काइ, काए	कासां, केसिं, कासिं, काणं, काण, कीणं, कीण

	एक०	बहु०
स०	काए, काइ, कीए, कीइ, कीआ, कीअ काहे, कइआ	कासुं, कासु, कीसुं, कीसु

किम् - नपु०

प्र० द्वि०	कं	काइं, काइ, काणि

शेष रूप पुलिंग के सदृश विकसित होते हैं।

यद्-पुलिंग		स्त्रीलिंग
प्र०	जो	जे
द्वि०	जं	,,
तृ०	जेण, जिणा	जेहिं, जेहि
पं०	जत्तो, जदो	जाहिन्तो, जासुन्तो
ष०	जस्स, जास	जाणं, जाण, जेसिं
स०	जस्सिं, जम्मि, जत्थ, जहिं, जाहे, जइआ, जस्सि	जेसुं, जेसु

यद्-स्त्रीलिंग

प्र०	जा	जाअरे, जाउ, जीअरे, जीउ
द्वि०	जं	,,
तृ०	जीणा, जाए, जाइ, जीइ जीए, जीअ, जीआ	जाहिं, जाहि, जीहिं, जीहि
पं०	जादो, जादु, जीदो, जीदु	जाहिन्तो, जीसुन्तो, जीहिन्तो, जीसुन्तो
ष०	जस्सा, जिस्स, जासे, जीसे, जीए, जीइ, जीअ, जीआ, जाइ, जाए	जासां, जेसिं, जासिं, जीसिं, जाणं, जाण, जीणं, जीणा,
स०	जाए, जाइ, जीए, जीइ, जीअ, जीआ, जाहे, जइआ	जासुं, जासु, जीसुं, जीसु

यद्—नपुं०

	एक०	बहु०
प्र० द्वि०	जं	जाइं, जाइ, जाणि

शेष रूप पुलिंग के सदृश विकसित होते हैं।

तद्-पुलिंग

	एक०	बहु०
प्र०	सो	ते
द्वि०	तं	,,
तृ०	तेण, तिणा	तेहिं, तेहि
पं०	तत्तो, तदो, तो	ताहिन्तो, तासुन्तो
प०	तस्स, तास, से	तेसिं, ताणं ताण, सि
स०	तस्सिं, तम्मि, तत्थ, वहिं, ताहे, तइआ, तस्सि	तेसुं, तेसु

तद्—स्त्रीलिंग

	एक०	बहु०
प्र०	सा	ताओ, ताउ, तीओ, तीउ
द्वि०	तं	,,
तृ०	ताइ, ताए, तीए, तीइ तीअ, तीआ, तीणा	ताहिं, ताहि, तीहिं, तीहि
पं०	,, तादो, तादु, तीदो, तीदु	ताहिन्तो, तासुन्तो, तीहिन्तो तीसुन्तो
प०	तस्सा, तिस्सा, तासे, तीसे, ताए, ताइ, तीए, तीइ, तीअ, तीआ, से	तासां, तेसिं, तासि, तीसिं, ताणं, ताण, तीणं, तिण, सिं
स०	ताए, ताइ, तीए, तीइ, तीअ, तीआ, ताहे, तइआ	तासुं, तासु, तीसुं, तीसु

एतद्—नपुं०

	एक०	बहु०
प्र० द्वि०	नं	ताइं, ताइ, ताणि

शेष रूप पुलिंग के सदृश मिलते हैं।

एतद्-पुल्लिग

प्र०	एस, एसो	एदे
द्वि०	एदं	,,
तृ०	एदेण, एदिणा	एदेहिं, एदेहि
पं०	एत्तो, एदादो, एदादु, एदहि	एदाहिन्तो, एदासुन्तो
ष०	एदस्स	एदेसिं, एदाणं, एदाण
स०	एदस्सिं, एदम्मि, एत्थ, इत्थ	एदेसुं, एदेसु

एतद्—स्त्रीलिंग

प्र०	एसा	एदाओ, एदाउ
द्वि०	एदाइ, एदाए	एदाहिं, एदाहि

शेष रूप सर्व, इदम् (स्त्री०) के सदृश प्रयुक्त होते हैं।

एतद्—नपुं०

प्र० द्वि०	एदं	एदाइं, एदाइ, एदाणि

शेष रूप पुलिंग के समान मिलते हैं।

अदस्-पुलिंग

प्र०	अमू, अह	अमूओ, अमुणो
द्वि०	अमु	अमू, अमुणो, अमू
तृ०	अमुणा	अमूहिं, अमूहि
पं०	अमूदो, अमूदु, अमूहि	अमूहिन्तो, अमूसुन्तो
ष०	अमुणो, अमुस्स	अमूणं, अमूण
स०	अमुस्सिं, अमुम्मि, अमुत्थ	अमूसुं, अमूसु

अदस्—स्त्रीलिंग

	एक०	बहु०
प्र०	अमू , अह	अमूओ, अमूउ, अमू
द्वि०	अमुं	,,
तृ०	अमूए, अमूइ, अमूअ, अमूआ	अमूहिं, अमूहि
पं०	,, अमूदो, अमूदु, अमूहि	अमूहिन्तो, अमूसुन्तो
ष०	अमूए, अमूइ, अमूअ, अमूआ	अमूणं, अमूण
स०	,,	अमूसुं, अमूसु

अदस्—नपुं०

प्र०	अह, अमुं	अमूइं, अमूइ, अमूणि
द्वि०	अमुं	अमूइ, अमूणि

शेष रूप पुलिंग के समान मिलते हैं।

पुरुषवाचक सर्वनामों का रूप-विकास प्राकृत-प्रकाश में सूत्र संख्या २६–५३ में मिलता है। एक पद के लिये अनेक रूपों के प्रयोग मिलते हैं।[1] युष्मद् के प्रथमा एक वचन (सु) में तं, तुमं और हेमचन्द्र के अनुसार तुं, तुवं, तुह का विकास मिलता है।[2] युष्मद् के द्वितीया एक वचन (अम्) में तुं, तुमं, तं के प्रयोग मिलते हैं।[3] युष्मद् के प्रथमा बहुवचन (जस्)

---

१. पदस्य	सूत्र सं० २५		परिच्छेद ६	प्रा०	प्र०
२. युष्मदस्तं तुमं	,,	२६	,,	,,	,,
युष्मदस्तं तुं, तुवं, तुह, तुमं सिना	,,	९०	तृ० पाद	,,	व्या०
३. तुं चामि	,,	२७	परि० ६	,,	प्र०
तं तुं तुमं तुवं तुह तुमे तुए अमा	,,	९२	तृ० पाद	,,	व्या०

में तुज्झे और तुम्हे का विकास हुआ है।[१] युष्मद् के द्वितीया वहुवचन (शस्) में तुज्झे, तुम्हें और वो के प्रयोग मिलते हैं।[२] युष्मद् के तृतीया एक वचन (टा) और युष्मद् के सप्तमी एक वचन (ङि) में क्रमश: त्वया, त्वयि > तइ, तए, तुमए, तुये के प्रयोग मिलते हैं।[३] युष्मद् के पष्ठी एक वचन (ङस्) में ते > तुमो, तुह तुज्झ, तुम्ह, तुम्म का प्रयोग मिलता है।[४] क्रमदीश्वर के अनुसार तुव, तुम्म के प्रयोग भी होते हैं।

भारतीय वय्याकरणों के अनुसार तृतीया एक०—आङ् का रूप पाश्चात्य वय्याकरणों के द्वारा निर्देशित—टा है। युष्मद् के तृतीया एक० (आङ्) में त्वया > ते और युष्मद् के पष्ठी एक० (ङस्) में तव > ते मिलते हैं।[५]

युष्मद् के तृतीया एक० (आङ्) में त्वया > तुयाइ का वैकल्पिक प्रयोग मिलता है।[६] युष्मद के तृतीया वहु० (भिस्) में युष्माभि: > तुज्झेहिं,

---

१. तुज्झे तुम्हे जसि	सूत्र संख्या	२८	परि० ६	प्रा० प्र०
भे तुब्भे तुज्झ तुम्ह तुम्हे उय्हे जसा	,,	९१	तृ० पाद	,, व्या०
२. वो च शसि	,,	२९	परि० ६	,, प्र०
३. टाङ्योस्तइ तए तुमए तुये	,,	३०	,,	,, ,,
तुमे तुमए तुमाइ तइ तए ङिना	,,	१०१	तृ० पाद	,, व्या०
४. ङसि तुमो तुह तुज्झ तुम्ह तुम्मा:	,	३१	परि० ६	,, प्र०
तइ तुव तुम तुह तुब्भा ङसी	,,	९९	,,	,, व्या०
५. आङि च ते दे	,,	३२	परि० ६	,, प्र०
भे दि दे ते तइ तए तुमं तुमइ तुमए तुमे तुमाइ टा	,,	९४	तृ० पाद	,, व्या०
तइ तु ते तुम्हं तुह तुहं तुव तुम तुमे तुमो तुमाइ दि दे इ ए तुब्भोब्भोय्हा ङसा	,,	९९	तृ० पाद	,, ,,
६. तुमाइ च	,,	३३	परि० ६	,, प्र०

तुम्हेहिं, तुम्हहि के प्रयोग मिलते हैं।[1] क्रमदीश्वर के अनुसार तुम्मेहिं, तुम्मेहि का विकास तुम्हेहिं या तुम्हेहि के आधार पर हुआ है इसलिये तुज्झेहिं, तुम्हेहि के अनुस्वार रहित रूप के भी प्रयोग होते हैं। युष्मद् के पंचमी एक० (ङसि) में तत्तो, तइत्तो, तुमादो, तुमादु, तुमाहि रूप मिलते हैं।[2] युष्मद् के पंचमी वहु० में युष्मद > तुम्हाहिन्तो, तुम्हासुन्तो रूप मिलते हैं।[3] युष्मद के षष्ठी वहु० में युष्माकम् , वः > वो, तुज्झाणं तुम्हाणं का प्रयोग होता है।[4]

युष्मद् के सप्तमी एक० (ङि) में तुमम्मि का वैकल्पिक प्रयोग मिलता है।[5] क्रमदीश्वर के अनुसार तुमम्मि और तुमस्सि दोनों रूप मिलते हैं। युष्मद् के सप्तमी वहु० (सुप) में युष्मासु > तुज्झेसु, तुम्हेसु रूप मिलते हैं।[6] अतएव मध्यम पुरुष सर्वनाम युष्मद् का रूप-विकास इस प्रकार होगा—

युष्मद्—

	एक०	वहु०
प्र०	त्वं, तुवं	तुम्हे

---

1. तुज्झेहिं तुम्हेहिं तुम्मेहिं भिसि — सूत्र संख्या ३४ परि० ६ प्रा० प्र०
   भे तुब्भेहिं उज्झेहिं उम्हेहिं तुम्हेहिं
   उम्हेहिं भिसा — ,, ९५ तृ० पाद ,, व्या०
2. ङसौ तत्तो तइत्तो तुमादो
   तुमादु तुमाहि — ,, ३५ परि० ६ ,, प्र०
3. तुम्हाहिन्तो तुम्हासुन्तो भ्यसि — ,, ३६ ,, ,,
4. वो भे तुज्झाणं तुम्हाणमामि — ,, ३७ ,, ,,
   तुवो भे तुब्भं तुब्भाण तुवाण तुमाण
   तुहाण उम्हाण आमा — ,, १०० तृ० पाद ,, व्या०
5. ङौ तुमम्मि — ,, ३८ परि० ६ ,, प्र०
   तु तुव तुम तुह तुब्भा ङौ — ,, १०२ तृ० पाद ,, व्या०
6. तुज्झेसु तुम्हेसु सुपि — ,, ३९ परि० ६ ,, प्र०

	एक०	वहु०
द्वि०	तं, तवं, त्वं	तुम्हाकं, तुम्हे
तृ०	त्वया, तया	तुम्हेहि, तुम्हेभि
पं०	,,	,,
ष०	तव, तुम्हं, तुम्हं	तुम्हाकं, तुम्हं
स०	त्वयि, तयि	तुम्हेसु

उत्तम पुरुष सर्वनाम अस्मद् का प्रथमा एक० (सु) में अहम् > हं, अहं, अहयं रूप मिलते हैं।[1] मागधी में अहअं के विकसित रूप हके, हगे, अहके और तृतीया में हकं मिलते हैं। अस्मद् के द्वितीया एक० (अम्) में माम् > अहम्मि और प्रथमा एक० में भी अहम् > अहम्मि मिलता है।[2] हेमचन्द्र के अनुसार णे, णं, मि, अम्मि अम्ह, मम्ह आदि रूप मिलते हैं। अस्मद् के द्वितीया एक० (अम्) में माम्, मा > मं, ममं का विकास मिलता है।[3] अस्मद् के प्रथमा वहु० (जस्) में वयम् और अस्मद् के द्वितीया वहु० (शस्) में अस्मान्, नः > अम्हे का प्रयोग मिलता है।[4] हेमचन्द्र ने अम्हो, अम्ह, णे रूप भी दिये हैं।

अस्मद् के द्वितीया वहु० (शस्) में अस्मान्, नः > णो का प्रयोग

---

१. अस्मदो हमहमहअं सौ — सूत्र संख्या ४० परि० ६ प्रा० प्र०
अस्मदो म्मि अम्मि अम्हि हं अहं अहयं सिना — ,, १०५ तृ० पाद ,, व्या०
२. अहम्मि मि च — ,, ४१ परि० ६ ,, प्र०
३. मं ममं — ,, ४२ ,, ,, ,,
णे णं मि अम्मि अम्ह मम्ह मं ममं मिमं अहं अमा — ,, १०७ तृ० पा० ,, व्या०
४. अम्हे जश्शसोः — ,, ४३ परि० ६ ,, प्रा०
अम्हे अम्हो अम्ह णे शसा — ,, १०८, तृ० पा० ,, व्या०
हुपि — ,, १०३ ,, ,, ,,

मिलता है।[१] हेमचन्द ने णे का प्रयोग भी दिया है। अस्मद् के तृतीया एक० (आङ) में मया> मे, ममाइ के प्रयोग मिलते हैं।[२] हेमचन्द्र ने मि, ममं, ममए, मइ, मए, मयाइ, णे के भी उदाहरण दिये हैं। अशोकी प्राकृत में ममया, ममिया रूप मिलते हैं। अस्मद् के सप्तमी एक० और तृतीया एक० में क्रमशः मयि > मइ और मया > ममए के प्रयोग मिलते हैं।[३] अस्मद् के तृतीया बहु० भिस् में अस्माभिः>अम्हेहिं का प्रयोग मिलता है।[४] क्रमदीश्वर के अनुसार अम्हेहि का अनुस्वार रहित रूप ही मिलता है। हेमचन्द्र ने अम्हाहि, अम्ह, णे रूप भी दिये हैं। अस्मद् के पंचमी एक० (ङसि) में मत्> मत्तो, मइत्तो, ममादो, ममादु, ममाहि रूप मिलते हैं।[५] हेमचन्द्र ने ममत्तो, मज्झत्तो रूप भी साथ में दिये हैं। अस्मद् के पंचमी बहु० (भ्यस्) में अस्मत्> अम्हाहिन्तो, अम्हासुन्तो रूप मिलते हैं।[६] हेमचन्द्र ने ममाहिन्तो, ममासुन्तो आदि रूप भी दिये हैं। अस्मद् के षष्ठी एक० में मम, मे> मे, मम, मह, मज्झ रूपों का

---

१. णो शसि	सूत्र सं० ४४	परि० ६	प्रा० प्र०
२ आङि मे ममाइ	,, ४५	,,	,, ,,
३ ङौ च मइ मए	,, ४६	,,	,, ,,
मि मे ममं ममए ममाइ मइ मए मयाइ णे टा	,, १०९	तृ० पाद	,, व्या०
४. अम्हेहिं भिसि	,, ४७	परि० ६	,, प्र०
अम्हे हि अम्हाहि अम्ह अम्हे णे भिसा	,, ११०	तृ० पाद	,, व्या०
५. मत्तो मइत्तो ममादो ममादु ममाहि ङसौ	,, ४८	परि० ६	,, प्र०
मइ मम मह मज्झ ङसौ	,, १११	तृ० पाद	,, व्या०
६. अम्हाहिन्तो अम्हासुन्तो भ्यसि	,, ४९	परि० ६	,, प्र०
ममाम्हौ भ्यसि	,, ११२	तृ० पाद	,, व्या०

प्रयोग होता है।[1] मध्यएशिया के लेखों में महिय रूप मिलता है। मह्यं > मज्झ > महि, महिय संभावित रूप हो सकते हैं। हेमचन्द्र ने महं, मज्झं, अम्ह, अम्हं रूप साथ में और दिये हैं। अस्मद् के षष्ठी बहु० (आम) में अस्माकम्, नः > अम्हाणं, अम्हे, अम्ह, मज्झ, णो रूपों के प्रयोग मिलते हैं।[2] कुछ हस्तलिखित प्रतियों में णो > णे मिलता है। क्रमदीश्वर के अनुसार मज्झ रूप नहीं होता। हेमचन्द्र ने णो, णे, मज्झ, अम्ह, अम्हं, अम्हे, अम्हो, अम्हाण, ममाण और महाण रूप भी दिये हैं। अस्मद् के सप्तमी एक० (ङि) में मयि > ममम्मि रूप मिलता है।[3] क्रमदीश्वर के अनुसार ममंसि रूप भी होता है। हेमचन्द्र ने अम्हम्मि, महम्मि, मज्झम्मि रूप भी दिये हैं। अस्मद् के सप्तमी बहु० (सुप्) में अस्मासु > अम्हेसु रूप का प्रयोग होता है।[4] हेमचन्द्र ने ममेसु, ममसु, मज्झेसु, अम्हसु, महेसु, महसु, मज्झसु रूप और दिये हैं।

अतएव उत्तमपुरुष अस्मद् सर्वनाम का रूप-विकास इस प्रकार होगा।

	एक०	बहु०
अस्मद्-प०	अहं, हं, अहयं, अहम्मि, मि	अम्हे, वयं (शौर०)

---

1. मे मम मह मज्झ ङसि सूत्र सं० ५० परि० ६ प्रा० प्र०
   मे मइ मम मह महं मज्झ मज्झं अम्ह अम्हं ङसा ,, ११३ तृ० पाद ,, व्या०
2. मज्झ णो अम्ह अम्हाणमम्हे आमि ,, ५१ परि० ६ ,, प्र०
   णे णो मज्झ अम्ह अम्हं अम्हे अम्हो अम्हाण ममाण महाण मज्झाण आमा ,, ११४ तृ० पाद ,, व्या०
3. ममम्मि ङौ ,, ५२ परि० ६ ,, प्र०
   अम्ह मम मह मज्झा ङौ ,, ११३ तृ० पाद ,, व्या०
4. अम्हेसु सुपि ,, ५३ परि० ६ ,, प्र०
   सुपि ,, ११७ तृ० पाद ,, व्या०

	एक०	बहु०
द्वि०	मं, ममं, अहम्मि, मि	अम्हे, णो, णे
तृ०	मे, मए, मइ, ममाइ	अम्हेहिं, अम्हेहि
पं०	मत्तो, मइत्तो, ममादो, ममादु, ममाइ	अम्हाहिन्तो, अम्हासुन्तो
ष०	मे, मम, मह, मज्झ	णो, अम्ह, अहाणं, अम्हे मज्झु, अम्हो
स०	मइ, ममम्मि, ममस्सिं	अम्हेसु

हेमचन्द्र ने संज्ञा आदि रूपों के विकास के अनंतर तृतीय पाद में सूत्र सं० १३१-१३७ में प्राकृत की वाक्य-रचना की कुछ विशेषताएँ भी दी हैं। चतुर्थी एक० बहु० के लिये षष्ठी एक० बहु० का प्रयोग होता है।[1] उदा० मुणिस्स, मुणीण, देवस्स, देवाण। अकारांत च० एक में इसका वैकल्पिक प्रयोग मिलता है।[2] उदा० देवस्स, देवाय परन्तु बहुवचन में वही प्रयोग होता है। देवाण। वध शब्द में अकारांत के बाद चतुर्थी एक० में-आइ और षष्ठी विभक्ति में वैकल्पिक प्रयोग मिलता है।[3] उदा० वहाइ, वहस्स, वहाय। द्वितीया, तृतीया आदि के स्थान पर भी षष्ठी का प्रयोग कभी-कभी होता है।[4] उदा० धणस्स, लद्धो (द्वि०) चोरस्स वीहई (तृ०) आदि। द्वितीया, तृतीया के स्थान पर सप्तमी का भी प्रयोग मिलता है।[5] उदा० गामे वसामि, नयरेन जामि (द्वि०), मइ वेविरीय मलिआइं, तिसु तेसु अलंकिआ पुहवी (तृ०)। पंचमी के स्थान पर भी प्रायः

---

१. चतुर्थ्याः षष्ठी	सूत्र सं०	१३१	तृ० पाद	प्रा० व्या०
२. तादर्थ्यङेर्वा	,,	१३२	,,	,,
३. वधाड्डाइश्च वा	,,	१३३	,,	,,
४. क्वचिद् द्वितीयादेः	,,	१३४	,,	,,
५. द्वितीया तृतीययोः सप्तमी	,,	१३५	,,	,,

तृतीया और सप्तमी का प्रयोग होता है।[1] उदा० चोरेण वहिइ अन्तेउरे रमिउमागओ राया। सप्तमी के लिये कभी-कभी द्वितीया का प्रयोग मिलता है।[2] उदा० विज्जुज्जोयं भरइ रत्तिं। अर्धमागधी में सप्तमी के लिये तृतीया का प्रयोग पाया जाता है। उदा० तेणं कालेणं, तेणं समएणं। प्रथमा के स्थान पर प्रायः द्वितीया का प्रयोग होता है। उदा० चउवीसं पि जिणवरा।

संख्यावाचक शब्दों का रूप-विकास भी संज्ञा आदि के सदृश ही होता है। संज्ञा, सर्वनाम रूपों में जिन विभक्तियों का योग होता है प्रायः उन्हीं का प्रयोग संख्यावाचक शब्दों के विकास के लिये भी किया जाता है। संख्यावाचक शब्द एक का विकास एकवचन में एक्क, एग रूप में पाया जाता है। शेष का प्रयोग बहुवचन के अनुसार होता है। संख्यावाचक शब्द द्वि का विकास विभक्तियों के जुड़ने के पूर्व दो या वे के रूप में मिलता है।[3] उदा० द्वाभ्याम्>दोहि, द्वयोः>दोसु। हेमचन्द्र ने प्र० द्वि० बहु० में दुवे, दोण्णि, वेण्णि रूप दिये हैं। संख्यावाचक शब्द त्रि का परिवर्तन विभक्तियों के जुड़ने के पूर्व 'ति' रूप में मिलता है[4] और इसका रूप विकास-इकारान्त संज्ञा के अनुसार होता है। उदा० त्रिभिः> तीहिं, त्रिषु> तीसु। त्रि के प्रथमा बहु० (जस्) के त्रयः, द्वितीया बहु० (शस्) के त्रीन् > तिण्णि का विकास मिलता है।[5] द्वि के प्रथमा बहु० (जस्) द्वौ, द्वितीया बहु० (शस्)

१. पंचम्यास्तृतीया च	सूत्र सं० १३६	तृ० पाद	प्रा० व्या०
२. सप्तम्या द्वितीया	,, १३७	,,	,, ,,
३. द्वेर्दो	,, ५४	परि० ६	,, प्र०
४. द्वेर्दुवे दोण्णि वा	,, ५७	,,	,, ,,
द्वेर्दो वे	,, ११९	तृ० पाद	,, व्या०
दुवे दोण्णि वेण्णि च जस्-शसा	,, १२०	,,	,, ,,
५. त्रेस्तिः	,, ५५	परि० ६	,, प्र०

का प्रयोग वैकल्पिक रूप में दुवे और दोण्णि मिलता है।[१] उदा०- द्वौ> दुवे, दोण्णि, स्त्रीलिंग, नपु० में द्वे> दुवे, दोण्णि। चतुर् के प्रथमा वहु० चत्वार: और द्वितीया वहु० चत्वार: के लिये चत्तारो और चत्तारि रूप मिलते हैं।[२] उदा० चत्वार: >चत्तारो, चत्तारि। हेमचन्द्र ने पु० वहु० में चउरो रूप भी दिया है। स्त्रीलिंग चतस्र:, नपु० चत्वारि > चत्तारो, चत्तारि, षष्ठी वहु० (आम्) द्वि, त्रि और चतुर् शब्दों के बाद ण्हं का प्रयोग होता है।[३] उदा० द्वयो:> दोण्हं, त्र्यणाम्, तिसृणाम् > तिण्हं, चतुर्णाम्, चतसृणाम्> चतुण्हं, चउण्ह। क्रमदीश्वर के अनुसार दोण्हं में अनुस्वार नहीं होता। हेमचंद्र ने भी साथ में विना अनुस्वार के रूप के उदाहरण दिये हैं। दोण्ह, तिण्ह आदि।

कुछ संख्यावाचक शब्दों का रूप-विकास निम्नलिखित होगा—

द्वि०—

	वहु०
प्र०	दो, दुवे, दोण्णि, वेण्णि
द्वि०	,,
तृ०	दोहिं, वेहिं
प०	दोहिन्तो, दोसुन्तो, वेहिन्तो, वेसुन्तो
ष०	दोण्हं, वेण्हं, दोण्ह, वेण्ह
स०	दोसु, वेसु

---

१. तिण्णि जश्शसस्भ्याम्	सूत्र सं० ५६	परि० ६	प्रा० प्र०
त्रेस्तिण्णि:	,, १२१	तृ० पाद	,, व्या०
२. चतुरश्चत्तारो चत्तारि	,, ५८	परि० ६	,, प्र०
चतुरश्चत्तारो चउरो चत्तारि	,, १२२	तृ० पाद	,, व्या०
३. एपामामो ण्हं	,, ५६	परि० ६	,, प्र०
संख्याया आमो ण्ह ण्हं	,, १२३	तृ० पाद	,, व्या०

	त्रि—	चतुर्—
	बहु०	
प्र०	तिण्णि	चत्तारो, चउरो, चत्तारि
द्वि०	,,	,,
तृ०	तीहिं	चतूहिं, चतूहि, चऊहिं, चऊहि
पं०	तीहिन्तो, तीसुन्तो	चतूसुन्तो, चतूहिन्तो, चऊसुन्तो, चऊहिन्तो
ष०	तिण्हं, तिण्ह	चतुण्हं, चउण्हं, चतुण्ह, चउण्ह
स०	तीसु	चतूसु, चऊसु

	पञ्च— पुलिंग	स्त्री०	षट्— पुलिंग	स्त्री०
प्र०	पञ्च	पञ्चा	छ	छाओ
द्वि०	,,	,,	,,	,,
तृ०	पञ्चहिं	पञ्चाहिं	छहिं	छाहिं
ष०	पञ्चण्णं, पञ्चण्हं	—	छण्णं	—
स०	पञ्चसुं, पञ्चसु	पञ्चासुं	छसु	—

	सप्तम्—	अष्टम्—
प्र०	सत्त	अढ, अठ
द्वि०	,,	,,
तृ०	सत्तहिं	अट्ठहिं
ष०	सत्तण्हं	अट्ठण्हं, अट्ठण्ह
स०	सत्तसु	अट्ठसु

	नवम्—	दशम्—
प्र०	णव	दस, दह
द्वि०	,,	,,
तृ०	णवहिं	दसहिं, दसहि, दशेहिं
ष०	णवण्हं, णवण्ह	दसानं, दसण्हं, दसण्ह, दशान
स०	णवसु	दससु

संस्कृत की संख्याओं का प्राकृत में निम्नलिखित रूप उपलब्ध होता है—

एकादश> एक्कारस, इक्कारस (अमा०), एआरह (माहा०) । द्वादश > दुवादस (अ० प्रा०), वारस, दुवालस (अमा०), वारह (माहा०) । त्र्योदश > त्रैदस (अ० प्रा०), तेरस, तेरह । चतुर्दश > चोदस, चोद्दस, चोद्दह । पंचदश > पएणरस (अमा०, जै० माहा०) षोडस् >सोलस, सोळस । सप्तदश>सत्तरस । अष्टदश् > अट्ठारस । एकोनविंशति, ऊनविंशति> एगुणवीसं, अउणवीसं । विंशति> वीसं, वीसा, वीसई, वीसइ । एकविंशति> एक्कवीसइ, द्वाविंशति> वावीसं । त्रिविंशति > तेवीसं । चतुर्विंशति> चउव्वीसं । पंचविंशति> पणवीसं, पणुवीसं, पनुवीसा- (हि) । षड्विंशति> छव्वीसं । सप्तविंशति> सत्तवीसं, सत्ताविसं, सत्तावीसा । अष्टविंशति> अट्ठावीसं अट्ठावीसा । एकोनत्रिंशत्, ऊनत्रिंशत् > उणतीसं, उणतीसइ, त्रिंशत् > तीसं, तीसा । एकत्रिंशत् > एक्कतीसं, इक्कतीसं । द्वात्रिंशत् > वत्तीसं, वत्तीसा, (दो सोळह -माहा०) । त्रित्रिंशत् > तेत्तीसं, तायत्तीसा, तावत्तीसयं (अमा०) चतुर्त्रिंशत् > चोत्तीसं । पंचत्रिंशत् > पणतीसं । षड्त्रिंशत् > छत्तीसं, छत्तीसा । सप्तत्रिशंत् > सत्ततीसं । अष्टत्रिंशत > अट्ठतीसा, अट्ठतीसं । ऊनचत्वारिंशत् > उणतालीसं, उणचत्तालीसा । चत्वारिंशत् > चत्तालीसा, चत्तालीस, चालीसा । एकचत्वारिंशत् > एक्कचत्तालीसा, इकतालीसं । द्वाचत्वारिंशत् > वायालीसं । त्रिचत्वारिंशत् > तेतालीसा, तेतालीसं । चतुर्चत्वारिंशत् > चौतालीसा, चौवालीसा । पंचचत्वारिंशत् > पणचालीस, पणचालीसं, पन्नतालीसा । षट्चत्वारिंशत् > छत्तालीसं, छयतालीसा । सप्तचत्त्वारिंशत् > सत्तालीसं, सत्तअत्तालीसं । अष्टचत्वारिंशत् > अट्ठअत्तालीसं । ऊनपंचाशत् > उणपंचासा, उणवंचासा । पंचाशत् > पएणासं, पएणासा, । षष्टि > सट्ठि,

(भ्यस्) में -अ> -हुँ मिलता है।[१] उदा० गिरिशृङ्गेभ्यः> गिरि-
सिङ्गहुँ (३३७-१) । षष्ठी एक० (ङस्) में -अ > -सु, हो, स्सु
रूप होते हैं।[२] उदा० परस्य > परस्सु, तस्य> तसु, दुर्लभस्य>
दुल्लहहो, सुजनस्य >सुअणस्सु (३३८-१) । षष्ठी बहु० (आम्)
में अकारांत शब्दों के लिये -हुँ रूप का योग होता है।[३] उदा०
तृणानां>तणहँ (३३९-१) । इकारांत, उकारांत शब्दों के षष्ठी बहु० में
-हु और -हँ के प्रयोग मिलते हैं।[४] उदा० तरुणां>तरुहुँ, शकुनीनां>
सउणिहँ (३४०-१) । सप्तमी एक० में भी -हुँ का प्रयोग मिलता
है । उदा० द्वयोंदिशो > दुहुँदिसिहिं (३४०-२) । इकारान्त और
उकारांत शब्दों में पंचमी एक (ङसि), पंचमी बहु० (भ्
और सप्तमी एक० (ङी) में क्रमशः -हे, -हुँ और -हि के प्रयोग
हैं।[५] उदा० गिरेः >गिरिहे, तरोः>तरुहे, तरुभ्यः>तरुहुँ,
भ्यः > सामिहुँ, कलौ > कलिहि (३४११ २) । अ
शब्दों में तृतीया एक० में एकार के साथ -ण अथव
स्वार का प्रयोग मिलता है।[६] उदा० दयित> दइएँ, पव
पवसन्तेण (३३३-१) । इकारांत और उकारांत शब्दों के
एक० में -एँ, -ण अथवा अनुस्वार होता है।[७] उदा० अ
अग्गिएँ, वातेन>वाएँ, अग्निना> अग्गिं (३४३-१), अ
अग्गिण (३४३-२) । प्रथमा और द्वितीया एक० बहु० (

	सूत्र सं०	३३७	च० पा०
१ भ्योस हुँ	,,	३३८	,,
२. ङस सु-हो स्सवः	,,	३३९	,,
३. आमो हं	,,	३४०	,,
४. हुं चेदुद्भयाम्	,,	३४१	,,
५. ङसि भ्यस, ङीनां हेहु हयः	,,	३४२	,,
६. आट्टो णानुस्वारौ	,,	३४३	,,
७. एं चेदुतः	,,		

अम्, जस्) की विभक्तियों का प्राय: लोप मिलता है।[1] उदा० अश्वा:> घोड़ा, निशिता:> निसिआ, खड्गा:> खग्ग (३३०-४), चक्रिमाणं> वंकिम, निजकशरान्> निअय-सर (३४४-१)। षष्ठी की विभक्तियों का भी प्राय: लोप हो जाता है।[2] उदा० गजानाम् > गय (३४५-१)।

संबोधन बहु० में संज्ञा-रूपों के साथ -हो का योग होता है।[3] उदा० हे तरुणा: > तरुणहो, हे तरुण्य:> तरुणिहो (३४६-१)। सप्तमी बहु० (सुप) और तृतीया बहु० (भिस्) में -हिं का योग मिलता है।[4] उदा० गुणै: > गुणहिं (३३५-१), त्रिषु मार्गेषु> तिहिँ मग्गेंहिं (३४७-१)। -स्त्रीलिंग के रूपों में प्रथमा और द्वितीया बहु० में -उ और -ओ के प्रयोग मिलते हैं।[5] उदा० अङ्गुल्य: > अङ्गुलिउ, जर्जरिता: > जज्जरियाउ (३३३-१)। सुन्दर सर्वाङ्गी विलासिनी:> सुन्दरसव्वाङ्गाउ विलासिणीओ (३४८-१)। स्त्रीवाचक शब्दों में तृतीया एक० (टा) में -ए का प्रयोग होता है।[6] उदा० चन्द्रिकया> चन्दिमएँ (३४९-१), मरकतकान्त्या> मरगय-कन्तिएँ (३४९-२)। पंचमी और षष्ठी एक० (ङस, ङसि) में स्त्री-वाचक संज्ञाओं के साथ -हे का योग मिलता है।[7] उदा० मध्याया:> मज्झहे, जल्पनशीलाया: > जम्पिरहे, रोमावल्या:> रोमावलिहे, रागाय:> रायहे आदि (३५०-१), बालाया:> बालहे (३५०-२)। स्त्रीवाचक संज्ञाओं के पंचमी और षष्ठी बहु० (भ्यस्, आम्) में

---

१ स्यम्-जस्-शसां लुक्	सूत्र सं०	३४४	च० प०	प्रा० व्या०
२. षष्ठया:	,,	३४५	,,	,,
३. आमन्त्र्ये जसो होः	,,	३४६	,,	,,
४. भिस्सुपोर्हि	,,	३४७	,,	,,
५. स्त्रियां जस् शसोरुदोत्	,,	३४८	,,	,,
६. ट ए	,,	३४९	,,	,,
७. ङस् ङस्योर्हे	,,	३५०	,,	,,

-हु का प्रयोग मिलता है।[1] उदा० चयस्याभ्यः, वयस्यानां > वयंसिअहु। स्त्रीवाचक संज्ञाओं के सप्तमी एक० (ङि) में -हि होता है।[2] उदा० मह्यां > महिहि।

नपुंसक संज्ञा रूपों के प्रथमा और द्वितीया बहु० (जस्, शस्) में -हं का प्रयोग होता है।[3] उदा० कमलानि> कमलहँ, अलिकुलानि> अलिउलइं, करिगण्डानि > करिगण्डाइं (३५३-१)। नपुंसक अकारांत रूपों के प्रथमा और द्वितीया एक० (सु, अम्) में -उ का प्रयोग मिलता है।[4] उदा० तुच्छकं> तुच्छउं (३५०-१), भग्नकं > भग्गउं, प्रसृतकं > पसरिअउं (३५४-१)।

उक्त नियमों के अनुसार अपभ्रंश में संज्ञा के पुलिंग, स्त्रीलिंग तथा नपुंसक लिंग के रूपों का विकास इस प्रकार होगा—

देव—

पु० अका०	एक०	बहु०
प्र०	देव, देवा, देवु, देवो	देव, देवा
द्वि०	देव, देवा, देवु	,,
तृ०	देवे, देवें, देवेण	देवेहि, देवहिं
पं०	देवहे, देवहु	देवहुँ
ष०	देव, देवसु, देवस्सु, देवहो, देवह	देव, देवहँ
स०	देवे, देवि	देवहिं
सं	देव, देवा, देवु, देवो	देव, देवा, देवहो

गिरि—पुलिंग इका०

प्र०	गिरि, गिरी	गिरि, गिरी

---

१. भ्यसामोर्हुः	सूत्र सं०	३५१	च० पा०	प्रा० व्या०
२. ङेर्हि	,,	३५२	,,	,,
३. क्लीवे जस् शसोरिं	,,	३५३	,,	,,
४. कान्तस्यात उं स्यमोः	,,	३५४	,,	,,

	एक०	बहु०
द्वि०	गिरि, गिरी	गिरि, गिरी
तृ०	गिरिएँ, गिरिण, गिरिं	गिरिहिँ
च०	गिरिहे	गिरिहुँ
प०	गिरि, गिरिहे	गिरि, गिरिहँ, गिरिहुँ
सं०	गिरिहि	गिरिहुँ
सं०	गिरि, गिरी	गिरि, गिरी, गिरिहो

पुलिंग उकारांत रूपों का विकास इकारांत के सदृश होता है।

नपुंसकलिंग अकारांत, इकारांत, उकारांत—कमल, वारि, मधु]

प्र०, द्वि०	कमल, कमला	कमल, कमला, कमलइं, कमलाइं
	वारि, वारी	वारि, वारी, वारिइं, वारीइं
	महु, महुं	महु, महु, महुइं, महूइ

शेष रूप पुलिंग के सदृश होते हैं।

नपुंसक संज्ञा के व्यंजनांत, क-तुच्छक

प्र० द्वि० तुच्छउँ। शेष रूप नपुंसक अकारांत कमल के सदृश होते हैं।

मुग्धा > मुद्धा स्त्रीलिंग अका०

प्र०	मुद्ध, मुद्धा	मुद्धाउ, मुद्धाओ
द्वि०	"	"
तृ०	मुद्धए (मुद्धइ)	मुद्धहिँ
पं०	मुद्धहे (मुद्धहि)	मुद्धहु
प०	"	"
स०	मुद्धहि	मुद्धहिँ
सं०	मुद्ध, मुद्धा	मुद्ध, मुद्धा, मुद्धहो, मुद्धाहो

स्त्रीवाचक इकारान्त मति, ईकारान्त तरुणी, उकारान्त वधू का रूप-विकास भी उक्त आकारान्त मुद्धा के सदृश होता है।

सर्वनाम के रूपों का विकास प्रायः संज्ञा के सदृश ही होता है परन्तु कुछ रूपों में भिन्नता भी मिलती है। अकारान्त सर्वनामों के पंचमी एक० (ङस्) में -ह्रॉं का प्रयोग होता है।[1] उदा० यस्मात् > जहाँ, कस्मात् > कहाँ, तस्मात् > तहाँ। पंचमी एक० में किम् के स्थान पर किहे रूप मिलता है।[2] उदा० कस्माद् > किहें, तस्याः > तहें (३५६-१)। अकारान्त सर्वनामों के सप्तमी एक० में-हि का प्रयोग होता है।[3] उदा० यत्र, यस्मिन् >जहिं, तत्र, तस्मिन् > तहिं (३५७-१), एकस्मिन् > एक्कहि, अन्यस्मिन् > अन्नहिं (३५७-२), क्व-> कहिं (३५७-४)। यत्, तत्, किम् सर्वनामों के अकारान्त रूपों के षष्ठी एक० में -आसु का वैकल्पिक प्रयोग मिलता है।[4] उदा० यस्य (यस्मै) > जासु, तस्य >तासु (३५८-१), कस्य > कासु (३५८-२)। यत्, तत्, किम् के स्त्रीवाचक रूपों के षष्ठी एक० में-अहे का योग वैकल्पिक रूप में मिलता है।[5] उदा० यस्याः कृते > जहे करेउ, तस्याः कृते > तहे करेउ, कस्याः कृते > कहेकरेउ, यत् और तत् का प्रथमा और द्वितीया एक० (सु, अम्) में क्रमशः ध्रुं, त्रं का वैकल्पिक प्रयोग मिलता है।[6] उदा० यत् -तद् रणे करोति > ध्रु, त्रं रणि करदि (३६०-१)। इदम् के नपुंसक रूप के प्रथमा, द्वितीया एक० (सु, अम्) में इमु रूप होता है।[7] उदा० इदं कुलम् > इमु कुलु। एतद्-स्त्रीलिंग का प्रथमा और द्वितीया एक० में एह और पुलिंग का एहो और नपुंसक का एहु रूप हो जाता है।[8] उदा० एषा-

१. सर्वादेङ सेर्हों	सूत्र सं० ३५५	च० पाद	प्रा० व्या०
२. किमोडिहेवा	,, ३५६	,,	,,
३. ङे हिं	,, ३५७	,,	,,
४. यत्तत्किम्यो ङसो डासुर्न वा	,, ३५८	,,	,,
५. स्त्रियां डहे	,, ३५०	,,	,,
६. यत्तदः स्यमोध्रुं त्रं	,, ३६०	,,	,,
७. इदम इमुः क्लीबे	,, ३६१	,,	,,
८. एतदः स्त्री-पु-क्लीबे एह एहो-एहु	,, ३६२	,,	,,

कुमारी>एहकुमारी, एषः नरः > एहो नरु, एतत् मनोरथ> एहु मणोरह (३६२-१) । एतद् का प्रथमा और द्वितीया बहु० में एइ रूप होता है।[1] उदा एते> एइ (३३०-४) । अदस् का प्रथमा और द्वितीया बहु० (जस्, शस्) में ओइ रूप मिलता है।[2] उदा० अमूनि> ओइ (३६४-१) ।

इदम् का विभक्तियों के पूर्व-आय रूप मिलता है।[3] उदा० इमानि> आयइँ (३६५-१), एतेन> आएण (३६५-२), अस्य> आयहो (३६५-३) । सर्व का विभक्तियों के पूर्व-साह रूप का वैकल्पिक प्रयोग होता है।[4] उदा० सर्वः> साहु (३६६-१ , ३४९-१) । किम् स्थान पर काइँ और कवण का वैकल्पिक प्रयोग मिलता है।[5] उदा० किं>काइँ (३६७-१, ३५०-२) । केन>कवणेण (३६७-२) । युष्मद् का प्रथमा एक० (सु) में तुहुँ का प्रयोग होता है।[6] उदा० त्वं> तुहुँ (३६८-१) । उक्त सर्वनाम का प्रथमा और द्वितीया बहु० (जस्, शस्) में तुम्हें और तुम्हइं रूप मिलते हैं।[7] उदा० युष्मे> तुम्हे, युस्माकं> तुम्हइं । तृतीया एक० (टा), सप्तमी एक० बहु० (ङि), द्वि० एक० (अम्) में पइं, तइं रूप मिलते हैं।[8] उदा० त्वया> पइँ (३०७-१) । त्वया> तइँ (३७०-२), त्वयि> पइँ (३७०-३), त्वां> पइँ (३७०-४) । तृतीया बहु० (भिस्)

---

१ एइर्जस् शसोः	सूत्र सं०	३६३	च० पाद	प्रा० व्या०
२. अदस ओइ	,,	३६४	,,	,,
३. इदम आयः	,,	३६५	,,	,,
४. सर्वस्य साहो वा	,,	३६६	,,	,,
५. किमः काइं-कलणौ वा	,,	३६७	,,	,,
६. युष्मद् सौ तुहुं	,,	३६८	,,	,,
७. जस् शसोस्तुम्हे तुम्हइं	,,	३६९	,,	,,
८. टाङ्यमा पइं तइं	,,	३७०	,,	,,

में तुम्हेहिं रूप हो जाता है।[१] उदा० युष्माभिः> तुम्हेहिं (३७१-१) पंचमी और षष्ठी एक० (ङसि, ङस) में तउ, तुज्झ, तुध्र रूप मिलते हैं।[२] उदा० तव> तउ, तुज्झ, तुध्र (३७२-१)। पंचमी और षष्ठी वहु० (भ्यस्, आम्) में तुम्हहं रूप होता है।[३] सप्तमी वहु० (सुप्) में तुम्हासु रूप मिलता है।[४] उदा० सर्वनाम अस्मद् का उत्तम पुरुष प्रथमा एक० में हउँ रूप होता है।[५] उदा० अहं> हउँ (३३८-१)। उक्त सर्वनाम का प्रथमा, द्वि० वहु० (जस्, शस्) में अम्हे और अम्हइं रूप होते हैं।[६] उदा० वयं> अम्हे (३७६-१-२) तृतीया एक० (टा), द्वितीया एक० (अम्), सप्तमी एक० (ङि) में 'मइं' रूप मिलता है।[७] उदा० मया> मइं (३७७-१), मम> मइँ (३७०-४)। तृतीया वहु० (भिस्) में अम्हेहिं होता है।[८] उदा० अस्माभिः> अम्हेहिं (३७१-१) पंचमी, षष्ठी एक० (ङसि, ङस्) में महु, मज्झु दोनों रूप मिलते हैं।[९] उदा० मम > महु (३६९-१), माम > मज्झु (३७९-२)। पंचमी, षष्ठी वहु० (भ्यस्, आम्) में अम्हइं रूप मिलता है।[१०] उदा० अस्माकं > अम्हइं, अस्मदीयाः > अम्हइं (३७९-२)। सप्तमी वहु० (सुप्) में अम्हासु रूप होता है।[११]

१. भिसा तुम्हेहिं	सूत्र सं०	३७१	च० पाद	प्रा० व्या०
२. ङसि ङस्भ्यां तउ तुज्झ तुध्र	,,	३७२	,,	,,
३. भ्यसाम्भ्यां तुम्हहं	,,	३७३	,,	,,
४. तुम्हासु सुपा	,,	३७४	,,	,,
५. सावस्मदो हउं	,,	३७५	,,	,,
६. जस् शसोरम्हे अम्हइं	,,	३७६	,,	,,
७. टा ङ्यमा मइं	,,	३७७	,,	,,
८. अम्हेहिं भिसा	,,	३७८	,,	,,
९ महु मज्झु ङसि ङस्भ्याम्	,,	३७९	,,	,,
१०. अम्हइं भ्यसाम्भ्याम्	,,	३८०	,,	,,
११. सुपा अम्हासु	,,	३८१	,,	,,

उदा० अस्मासु स्थितं > अम्हासु ठिअं। अस्तु, अस्मद् और युष्मद् पुरुषवाचक सर्वनामों का रूपविकास निम्नलिखित होगा—

अस्मद्—

	एक०	बहु०
प्र०	हउँ	अम्हे, अम्हइँ
द्वि०	मइँ	,, ,,
तृ०	,,	अम्हेहिँ
पं०	महु, मज्झु	अम्हहँ
ष०	,, ,,	,,
स०	मइँ	अम्हासु

युष्मद्—

प्र०	तुहुँ	तुम्हे, तुम्हइँ
द्वि०	पइँ, तइँ	,, ,,
तृ०	,,	तुम्हेहिँ
पं०	तउ, तुज्झ, तुध्र (तुहु)	तुम्हहँ
ष०	,,	,,
स०	पइ, तइँ	तुम्हासु

पाँचवाँ अध्याय

प्राकृत में क्रिया पदों का विकास

प्राकृत में क्रिया आदि रूपों के विकास में सादृश्य का प्रभाव संज्ञा आदि रूपों की अपेक्षा और भी अधिक व्यापक रूप में मिलता है। द्विवचन का लोप, कर्तृ-वाच्य और कर्म-वाच्य के रूपों का प्राय: एकीकरण, आत्मनेपद के रूपों का ह्रास, विविध काल रूपों में अनुरूपता, क्रिया के विभिन्न धातु रूपों में ध्वनि-परिवर्तन के कारण समानता आदि प्राकृत के क्रिया-विकास की कुछ मुख्य विशेषताएँ हैं। संस्कृत धातुएँ ९ गणों में विभाजित थीं—भ्वादि, रुधादि, दिवादि, तुदादि, ज्यादि, क्र्यादि, स्वादि, तनादि, चुरादि। इन गणों के अनुसार ही विभक्तियों के जुड़ने के पूर्व धातु में परिवर्तन होता था। परन्तु इन सब में भ्वादि रूप की ही व्यापकता प्राकृत के क्रिया पदों के विकास में मिलती है। काल-रचना में लट् (वर्तमान), लोट् (आज्ञा) विधि, लृट् (भविष्य) रूप के ही अधिक प्रयोग मिलते हैं। वर्तमान का प्रयोग सभी कालों और विधि का प्रयोग सभी कालों और वाच्यों के लिये मिलता है। संस्कृत के लङ् (भूत), लृङ्, लुट (भविष्य), आर्शीलिंग, लिट्, लुङ् (भूत) के प्रयोग मुख्य प्राकृतों में प्राय: नहीं मिलते हैं। सहायक क्रियाओं के साथ कृदन्त रूपों का व्यवहार अधिक मिलता है। अतएव सादृश्य और ध्वनि-विकास के कारण क्रिया के रूप अधिक सरल हो गये थे।

पालि में क्रिया के रूपों का विकास संस्कृत की अपेक्षा अल्प और सरल रूपों में पाया जाता है क्योंकि संज्ञा आदि के सदृश द्विवचन का लोप, विविध काल भेदों का एकीकरण, परस्मैपद और भ्वादि गण के रूपों की सर्वव्यापकता मिलती है। परन्तु उदाहरण के तौर पर परस्मैपद रूपों के साथ आत्मने पद का भी उल्लेख कर दिया गया है। वर्तमान काल (लट्)[1] में √ (भू) (होना) का रूप-विकास निम्नलिखित होगा—

	एक०	बहु०
√ भू-परस्मैपद—		
प० पु०	भवति, होति	भवन्ति, होन्ति
म० पु०	भवसि, होसि	भवथ, होथ
उ० पु०	भवामि, होमि	भवाम, होम
आत्मनेपद—		
	भवते	भवन्ते
	भवसे	भवव्हे
	भवे	भवम्हे

भूतकाल में प्राय: दो रूप परिसमाप्त्यर्थक भूत (लङ्) और अनद्यतनभूत (लुङ्) व्यापक मिलते हैं। लङ्[2] का निम्नलिखित रूप-विकास होगा—

	एक०	बहु०
√ भू-परस्मैपद—		
प० पु०	अभवि, अभूवा, भवि	अभवुं, अभवु, भवुं
म० पु०	अभवो, अहुवो, भवो	अभवत्थ, अहुवत्थ, भवत्थ
उ० पु०	अभविं, अभवं, भविं	अभवम्हा, अहुवम्हा, भवम्हा

---

१. वत्तमाने ति अन्ति, सिथ, मिम
ते अन्ते, सेम्हे, एम्हे — सत्र सं० १ काण्ड ६ मोग्ग० व्या०

२. भूते इउं, ओत्थ, इंम्हा,
आउ, सेव्हं, अम्हे — ,, ४ ,, ६ ,,

आत्मनेपद—

	एक०	बहु०
	अभवा	अभवू
	अभवसे	अभव्हं
	अभव	अभम्हे

उक्त रूप में लङ् के अतिरिक्त लुंग आदि में धातु से पूर्व -अ का विकल्प से आगम हो जाता है।[1] उक्त रूप और लुंग आदि में आ, ई, उ, म्हा, स्सा, स्स म्हा के ह्रस्व रूप का वैकल्पिक प्रयोग मिलता है।[2] उदा० अभवु, अभविम्ह, अभविस्स, अभविस्सम्ह। लुंग[3] का रूप-विकास इस प्रकार होगा—

√ भू परस्मैपद -

	एक०	बहु०
प० पु०	अभवा, भवा, अभव	अभवू, अभवुं
म० पु०	अभवो, भवो	अभवत्थ, भवत्थ, अभवुत्थ
उ० पु०	अभव, अभवं	अभवम्हा, भवम्हा, अभवुम्हा

आत्मनेपद—

	अभवत्थ	अभवत्थुं
	अभवसे	अभवम्हं
	अभविं	अभवम्हसे

भविष्य काल में[4] लृट् के रूप ही व्यापक मिलते हैं। इसका रूपविकास इस प्रकार होगा—

---

१ आई स्सादि स्वत्र वा — सूत्र सं० १५ — का० ६ — मोग्ग० व्या०

२. आई अम्हा स्सा स्सम्हानं वा — ,, ३३ — ,, — ,,

३. अनज्जतने आक, ओत्थ, अम्हा

✓ भू परस्मैपद—

	एक०	बहु०
प० पु०	भविस्सति	भविस्सन्ति
म० पु०	भविस्ససि	भविस्सथ
उ० पु०	भविस्सामि	भविस्साम

आत्मनेपद—

	भविस्सते	भविस्सन्ते
	भविस्ससे	भविस्सव्हे
	भविस्सं	भविस्साम्हे

विधि लिंग[1] का रूप निम्नलिखित होगा—

✓ भू परस्मैपद—

प० पु०	भवे, भवेय्य	भवेय्युं, भवुं
म० पु०	,, भवेय्यासि	भवेय्याथ
उ० पु०	,, भवेय्यामि	भवेय्याम

आत्मनेपद—

	भवेथ	भवेरं
	भवेथो	भवेय्यव्हो
	भवेय्यं	भवेय्याम्हे

उक्त प्रयोग में -एय्यं, एय्यासि, एय्यं का विकल्प से -ए रूप भी होता है।[2] एय्युं प्रत्यय का विकल्प से -उं और -एय्याम का विकल्प से एमु रूप होता है।[3]

१. हेतु फलेस्वेय्य, एय्युं एय्यासि, एय्याथ, एय्यामि, एय्याम, एथ एरं, एथो एय्यव्हो, एय्यं एय्याम्हे	सूत्र सं० ८	का० ६	मोग्ग व्या०
२. एय्येय्यासेय्यन्नं हे	,, ११	,,	,,
३. एय्युं स्सुं	,, ४७	,,	,,
एय्याम स्सेमु च	,, ७८	,,	,,

आज्ञा (लोट्)[१] का रूप इस प्रकार होगा—

	एक०	बहु०
प० पु०	भवतु	भवन्तु
म० पु०	भवाहि, भव	भवथ
उ० पु०	भवामि	भवाम

आत्मनेपद—

भवतं	भवन्त
भवस्सु	भवव्हो
भवे	भवामसे

उक्त प्रयोग में हि, मि, में प्रत्ययों से पूर्व अ > आ हो जाता है।[२] उदा० भवाहि। उक्त रूप में अकार के बाद -हि का विकल्प से लोप मिलता है।[३] उदा० भव। पालि में कृदन्त रूपों का भी प्रयोग संस्कृत के सदृश ही होता है। भाववाच्य और कर्मवाच्य में धातु के अनन्तर -तव्व और -अनीय प्रत्ययों का प्रयोग होता है।[४] उदा० मया हसितव्वं, मया हसनीयं। उक्त प्रयोग में -घ्यण् प्रत्यय का भी योग मिलता है जिसका अवशिष्ट रूप -य होता है।[५] -घ्यण प्रत्यय का योग होने पर अकारांत धातु का एकार रूप हो जाता है।[६] उदा० धनिकेहि दलिद्दानं दानं देय्यं। विशेषण के सदृश भी उक्त प्रत्ययों का प्रयोग मिलता है। उदा० दानीयो ब्राह्मणो, सिनानिय चुण्णं। उक्त प्रत्ययों के योग होने पर इकारांत और उकारांत धातुओं का

---

१. तु अन्तु, हिथ, मिमा, तं अन्तं रस्सुव्हो, ए आमसे — सूत्र सं० १० काण्ड ६ मोग्ग० व्या०
२. हिमि दे स्व स्स — ,, ५७ ,, ,,
३. हिस्स तो लोपो — ,, ४८ ,, ,,
४. भावकम्मेसु तब्बानीया — ,, २७ ,, ,,
५. घ्यण — ,, २८ ,, ,,
६. आस्सेच — ,, २६ ,, ,,

क्रमशः एकार और ओकार हो जाता है।[१] उदा० चेतव्वं, चयनीयं, चेय्यं, सोतव्वं।

निमत्तार्थक प्रत्यय -तुं, -ताये, -तवे मिलते हैं।[२] उदा० कातुं गच्छति, कत्ताये गच्छति, कातवे गच्छति। -तुं, -तूनं, -तव्व, -तवे प्रत्यय के योग होने पर √ कृ धातु का कर > कार हो जाता है।[३] उदा० कातवे। √ रुध आदि धातुओं में अन्त्य स्वर के उपरांत विभक्ति जुड़ने के पूर्व -अ प्रत्यय का आगम हो जाता है।[४] उदा० रुन्धितुं, रुज्झितुं। पूर्वकालिक कृदंत -तून, -त्वान, -त्वा के रूप मिलते हैं।[५] उदा० सो सोतून याति, सो सुत्वान याति, सो सुत्वा याति। धातु के समास रूप होने पर -त्वा के स्थान पर -प्य और प्य > य, तुं, यान होते हैं।[६] उदा० अभिभूय (अभिभवित्वा), अभिहट्ठुं (अभिहरित्वा), अनुमोदियान (अनुमोदित्वा)। इसी प्रकार -क्तवा के लिये -त्त्व, -न आदि प्रत्ययों का भी योग मिलता है।

मुख्य प्राकृतों में पठ् धातु का प्रथम पु० एक० आत्मनेपद -त और प्रथम पु० एक० परस्मैपद -ति के स्थान पर क्रमशः -इ और -ए का विकास मिलता है।[७] उदा० पठति, पठते > पठइ, पठए। मध्यम पुरुष एक० आत्मनेपद -थास् और मध्यम पु० एक० परस्मैपद

---

१. युवण्णा न मेओव्व च्च ये सूत्र सं० ८२ कांड ६ मोग्ग० व्या०
२. तुं ताये तवे भावे भविस्सति क्रियायं तदत्थायं ,, ६१ ,, ,,
३. तुं तून तव्वे सुवा, करस्सातवे ,, ११६, ११८ ,, ,,
४. मं वा रुधादीनं ,, ६३ ,, ,,
५. पुब्वेक कत्तुकानं ,, ६३ ,, ,,
६. प्यो वा त्वास्स समासे, तुं याना ,, १६४, १६५ ,, ,,
७. त-ति योरिदेतौ ,, १ परि० ७ प्रा० प्र०
त्यादीनामद्यत्रयस्याद्यस्ये चे चौ ,, १३६ तृ० पाद ,, व्या०

-सिय् के लिये -सि और -से के प्रयोग मिलते हैं।[1] उदा० पठसि, पठसे> पठसि, पठसे। उत्तम पुरुष एक० आत्मने पद -इह और उत्तम पु० एक० परस्मैपद -मिय् के स्थान पर -मि का प्रयोग मिलता है।[2] उदा० पठामि, पठे> पठामि। वर्तमान काल प्रथम पुरुष के बहुवचन में -न्ति, मध्यम पुरुष में -इ और -इत्था और उत्तम पुरुष में -मो,-मु और -म मिलते हैं।[3] उदा० पठन्ति> पठन्ति, पठथ> पठइ, पठित्था, पठाम> पठामो, पठामु, पठामो। क्रमदीश्वर के अनुसार -इत्थ की अपेक्षा -थ का ही प्रयोग होता है।

उपर्युक्त रूपों में प्रथम पु० एक० आत्मनेपद में -ए और मध्यम पु० एक० आत्मनेपद में -से का प्रयोग केवल अकारांत रूपों में ही मिलता है।[4] उदा० रमए, पठए, रमसे, पठसे परन्तु होइ का होए और होसि होता है, होए, होसे नहीं होता। मध्यम पुरुष एक-वचन के रूपों में -थास् और सिप् के प्रयोग होने पर अस् धातु का लोप हो जाता है।[5] उदा० सुप्तः असि> सुत्तोसि। अशोक के लेखों में सन्ति और वा अव्यय के लिये अस्ति का प्रयोग मिलता है।

---

१ थास्सियो सिसे	सूत्र सं०	२	परि० ७	प्रा० प्र०
द्वितीयस्य सिसे	,,	१४०	तृ० पाद	,, व्या०
२. इहमिपोर्मिः	,,	३	परि० ७	,, प्र०
तृतीयस्य मिः	,,	१४१	तृ० पाद	,, व्या०
३. न्ति-हेत्थ-मो-मु-मा-बहुषु	,,	४	परि० ७	,, प्र०
बहुष्वाद्यस्यन्ति न्ते इरे	,,	१४२	,,	,, व्या०
मध्यमस्येत्था हचौ	,,	१४३	,,	,, ,,
तृतीयस्य मो-मु-मा	,,	१४४	,,	,, ,,
४. अत ए से-	,,	५	परि० ७	,, प्र०
अत एवैच् से	,,	१४५	तृ० पाद	,, व्या०
५. अस्तेर्लोपः	,,	६	परि० ७	,, प्र०
सिनास्तेः सिः	,,	१४६	तृ० दाद	,, व्या०

√अस् धातु के लोप होने पर -मि, -मो, -मु, -म प्रत्ययों में -म् के अनंतर -ह का प्रयोग मिलता है।[1] उदा० गतः अस्मि > गओम्हि, गताः स्म > गअम्हो, गअम्हु, गअम्ह।

भाव-वाच्य और कर्म-वाच्य की विभक्ति -यक के लिये -ईअ और -इज्ज का प्रयोग मिलता है।[2] उदा० पठ्यते > पठीअइ, पठिज्जइ। जब कि धातु के अन्त्य व्यंजन का द्वित्व रूप हो जाता है तो -यक के स्थान पर -ईअ और -इज्ज रूप नहीं मिलते।[3] उदा० हस्यते > हस्सइ, गम्यते > गम्मइ। √गम् धातु में जब अन्त्य व्यंजन का द्वित्व नहीं होता तो उक्त प्रयोग मिलते हैं। उदा०-गमीअइ, गमिज्जइ।

वर्तमानकालिक कृदंत शतृ और शानच् के लिये -न्त और -माण प्रत्यय जुड़ते हैं।[4] उदा० पठत्, पठमान > पठन्तो, पठमाणो, हसत्, हसमान् > हसन्तो, हसमाणो।

स्त्रीवाचक शब्दों में शतृ और शानच् के लिये -न्त, -माण के अतिरिक्त -ई का भी योग मिलता है।[5] उदा० हसन्ता > हसई, हसन्ती, हसमाणा, वेयमाण > वेवई, वेवन्ती, वेवमाणा। हेमचन्द्र के अनुसार हसमाणी रूप भी मिलता है। वर्तमानकालिक रूपों में धातु के अनन्तर -हि के योग से भविष्य-काल के रूप बनाये जाते हैं।[6]

१. मिमोमुमानमधो हश्च	सूत्र सं० ७	परि० ७	प्रा० प्र०
मिमो मौर्म्हि म्हो म्हा वा	,, १४७	तृ० पाद	,, व्या०
२. यक-ईअ-इज्जौ	,, ८	परि० ७	,, प्र०
ईअ इज्जौ क्यस्य	,, १६०	तृ० पाद	,, व्या०
३. नान्त्य-द्वित्वे	,, ९	परि० ७	,, प्र०
४. न्त-माणौ-शत-शानचोः	,, १०	,, ,,	,,
न्त माणौ, शत्रानशः	,, १८०,१८१	तृ० पाद	,, व्या०
५. ई च स्त्रियाम्	,, ११	परि० ७	,, प्र०
,, ,,	,, १८२	तृ० पाद	,, ,,
६. धातोर्भविष्यति हिः	,, १२	परि० ७	,, प्र०
भविष्यति हिरादिः	,, १६६	तृ० पाद	,, ,,

उदा० भविष्यति> होहिइ, भविष्यन्ति> होहिन्ति, हसिष्यति> हसिहिइ, हसिष्यन्ति> हसिहिन्ति। वर्तमानकालिक रूपों में धातु के अनंतर -स्सा, -हा, -हि के योग से भविष्यकाल उत्तमपुरुष के रूपों का विकास हुआ है।[1] उदा० भविष्यामि> होस्सामि, होहामि, होहिमि, भविष्यामः> होस्सामो, होहामो, होहिमो, होस्सामु, होहामु, होहिमु।

भविष्यकाल के उत्तम पु० एक० -मि विभक्ति के स्थान पर -स्सं का वैकल्पिक प्रयोग मिलता है।[2] उदा० भविष्यामि>होस्सं। क्रमदीश्वर के अनुसार होहिस्सं, होस्सामि, होहामि, होहिमि रूप मिलते हैं। भविष्यकाल के उत्तमपु० वहु० -मो, -मु, -म के स्थान पर -हिस्सा और -हित्था के वैकल्पिक प्रयोग मिलते हैं।[3] उदा० भविष्यामः> होहिस्सा, होहित्था, होहिमो, होहिमु, होस्सामो, होस्सामु, होहामो, होहामु। भविष्यकाल के उत्तम पु० एक० कृ आदि के स्थान पर काहं आदि रूप मिलते हैं।[4] उदा० करिष्यामि> काहं, दास्यामि> दाहं, श्रोष्यामि> सोच्छं, वक्ष्यामि> वोच्छं, गमिष्यामि> गच्छं, रोदिष्य मि> रोच्छं,

---

१. उत्तमे स्सा हा च	सूत्र सं० १३	परि० ७	प्रा०	प्र०
मि मो मु मे स्सा हा ना वा	,, १६७	तृ० पाद	,,	व्या०
२. मिना स्सं वा	,, १४	परि० ७	,,	प्र०
मेः स्सं	१६६	तृ० पाद	,,	व्या०
३ मोमुमैहिंस्सा हित्था	,, १५	परि० ७	,,	प्र०
मिमो मुमे स्सा हा ना वा	,, १६७	तृ० पाद	,,	व्या०
४. कृ-दा-श्रु-वच्चि-गमि-रुदि दृशि-विदि रूपाणां काहं दाहं ,, सोच्छं वोच्छं गच्छं रोच्छं दच्छं वेच्छं	१६	परि० ७	,,	प्र०
श्रु गमि रुदि विदि दृशि, मुचि वचि छिदि भिदि भुजां सोच्छं गच्छं रोच्छं वेच्छं, दच्छं मोच्छं वोच्छं छेच्छं भेच्छं भोच्छं	,, १७१	,,	,,	प्र०

द्रक्ष्यामि> दच्छं, वेद्यामि> वेच्छं। क्रमदीश्वर के अनुसार विदि और उसका विकसित रूप वेच्छं नहीं मिलता। उसके अनुसार मोद्यमि> मोच्छं, भोद्यामि> भोच्छं भी मिलते हैं। भविष्यकाल के सभी पुरुषों में श्रु आदि का परिवर्तन सोच्छं आदि में होता है परन्तु अनुस्वार का बराबर और -हि का वैकल्पिक रूप से लोप हो जाता है।[1] उदा० श्रोष्यति> सोच्छिइ, सोच्छिहिइ श्रोष्यन्ति> सोच्छिहिन्ति, सोच्छिन्ति, श्रोस्यसि>सोच्छिसि, सोच्छिहिसि,श्रोष्यथ> सोच्छित्था, सोच्छिहित्था, श्रोष्यामि> सोच्छिमि, सोच्छिहिमि, श्रोष्यामः> सोच्छिमो, सोच्छिहिमो। इसी प्रकार से और धातुओं का भी विकास होता है। उदा० वोच्छिइ, वोच्छिहिइ आदि। क्रमदीश्वर के अनुसार सोच्छइ, सोच्छहिसि, सोच्छेसि, सोछिन्ति, सोच्छिहिन्ति रूप भी मिलते हैं। विधि और लोट् रूप के एक० में प्रथम पु०. मध्यम पु० और उत्तम पु० के लिए क्रमशः -उ, -सु, -मु का प्रयोग होता है।[2] उदा० हसतु> हसउ, हस > हससु, हसानि > हसामु, (हसमु)। हेमचन्द्र के अनुसार -हि के साथ -सु का प्रयोग भी होता है। उदा० देहि, देसु। अकारान्त धातुओं में ये दोनों रूप मिलते हैं। उदा० हसेज्जासु, हसेज्जहि। विधि, और लोट् रूपों के बहु० में प्रथम पु०, मध्यम पु० और उत्तम पु० के लिए क्रमशः न्तु, -ह और -मो रूप मिलते हैं।[3] उदा० हसन्तु> हसन्तु, हसथ> हसह, हसाम> हसामो।

१. श्रुवादीनां त्रिष्वप्यनुस्वारवर्ज्ज- हिनोपश्च वा	सूत्र सं०	१७	परि० ७	प्र०	प्र०
सोच्छादय इजादिषु हिलुक् च वा	,,	१७२	तृ० पाद	,,	व्या०
२. उसुमु विध्यादिष्वेकवचने	,,	१८	परि० ७	,,	प्र०
दुसुमु विध्यादिष्वेकस्मि- स्त्र्याणाम्	,,	१७३	तृ० पाद	,,	व्या०
३. न्तुहमो बहुषु	,,	१६	परि० ७	,,	प्र०
बहुषु न्तु ह मो	,,	१७६	तृ० पाद	,,	व्या०
कृ दो हं	,,	१७०	,,	,,	,,

वर्तमान काल (लट्) और भविष्य काल (लृट्) तथा लोट् आदि में -ज्ज, -ज्जा के वैकल्पिक प्रयोग मिलते हैं।[1] उदा० भवति> होज्ज, होज्जा, होइ, हसति> हसेज्ज, हसेज्जा, हसइ, भविष्यति> होज्ज, होज्जा, होहिइ, भवतु> होज्ज, होज्जा, होउ। वर्तमान काल, भविष्य-काल और आज्ञादिक रूपों में धातु और विभक्ति के मध्य में -ज्ज और -ज्जा के वैकल्पिक प्रयोग मिलते हैं।[2] उदा० भवति> होज्जइ, होज्जाइ, भविष्यति> होज्जहिइ, होज्जाहिइ, भवतु> होज्जउ, होज्जाउ। हेमचन्द्र के अनुसार भवति, भवेत, भवतु, अभवतभव, अभूत, बभूव. भूयात, भविता, भविष्यति रूपों के लिये होज्ज और होज्जा के प्रयोग मिलते हैं। स्वरान्त धातुओं में -ज्ज और-ज्जा के प्रयोग धातु और विभक्ति के बीच बराबर मिलते हैं। हेमचन्द्र ने होज्जइ, होज्जेइ और विधि में होज्जाइ रूप दिये हैं। केवल स्वरान्त धातुओं में विभक्ति और धातु के बीच -ज्ज और -ज्जा का योग होता है और यह एकाक्षर रूप होता है।[3] व्यंजनांत धातुओं में स्वर के योग से द्व्यक्षर रूप हो जाते हैं। उदा० हप> हस-हसइ, त्वर>तुवर-तुवरइ। भूतकाल (लङ् आदि) में धातु के अनंतर -इअ का प्रयोग होता है।[4] उदा० अभवत् > हूवीअ, अहसत् > हसीअ। हेमचन्द्र ने स्वरांत रूपों में- हो, -हीअ और व्यंजनांत रूपों में -ईअ का प्रयोग दिया है। उदा० काहो, काहीअ, हुवीअ आदि। भूतकाल (लङ्, लुङ्, लिट्) के लिये

---

१. वर्तमान भविष्यदनद्यतनयोर्ज्ज-ज्जा वा	सूत्र संख्या	२०	परि० ७	प्रा० प्र०
वर्तमाना-भविष्यंत्योश्च ज्ज ज्जा वा	,,	१७७	तृ० पाद	, व्या०
२. मध्ये च	,,	२१	परि० ७	,, ,,
मध्ये च स्वरान्ताद्वा	,,	१७८	तृ० पाद	,, व्या०
३ नानेकाचः	,,	२२	परि० ७	,, प्रा०
४. ईअ भूते	,,	२३	,,	,, ,,

एकाक्षर धातुओं में -हीअ का प्रयोग किया जाता है।[1] उदा० अकरोत, अकार्षीत, चकार> काहीअ, अभूत्, अभवत्, बभूव> होहीअ। भूतकाल के प्रथम पु० एक० में √अस् धातु का आसि और क्रमदीश्वर के अनुसार आसी रूप मिलते हैं। उदा० आसीत्> आसि, आसी। हेमचन्द्र ने सभी पुरुषों और वचनों में आसि और अहोसि रूप दिये हैं। प्रेरणार्थक रूपों (णिजन्त) में धातु के पहले अक्षर के अन्त्य -अ>-आ हो जाता है। उदा० कारयति> कारेइ, हासय> हासेइ। प्रेरणार्थक रूपों (णिजन्त) में -आवे का प्रयोग भी मिलता है।[2] उदा० हासयति>हसावेइ, हासेइ। हेमचन्द्र ने -इ, -ए, -आव और -आवे रूप दिये हैं। उदा० दरिसइ, कारेइ, करावइ, करावेइ। कर्म और भाव वाच्य के प्रयोग में भूतकालिक कृदन्त- क्त के स्थान पर-आवि का वैकल्पिक प्रयोग मिलता है।[3] उदा० कारित> कदाविअं, कारिअं. हासित> हसाविअं; हासिअं, कार्यते>कराविज्जइ, कारिज्जइ, हास्यते> हसाविज्जइ, हासिज्जइ। क्रमदीश्वर के अनुसार -हासाविअं भी मिलता है। भाववाच्य आदि तथा-णिच् के लिये -क्त रूपों में-ए-और -आवे के प्रयोग नहीं मिलते।[4] उदा० कारित> कारिअं, कराविअं, कार्यते> कारिज्जइ, कराविज्जइ। वर्तमान काल उत्तम पु० एक० में -मिप् के पूर्व अकारांत धातुओं के अन्त्य -अ के स्थान पर वैकल्पिक

---

१. एकाचो होअ	सूत्र सं०	२४	परि० ७	प्रा० प्र०
सी ही हीअ भूतार्थस्य	,,	१६२	तृ० पाद	,, व्या
व्यंजनादीअः	,,	१६३	,,	,, ,,
२ आवे च	,,	२७	परि० ७	,, प्र०
णेरदेदावावे	,,	१४६	तृ० पाद	,, व्या०
३. आविः क्तकर्म भावेषु वा	,,	२८	परि० ७	,, प्र०
४. नैदावे	,,	२६	,,	,, ,,
लुगावी क्त-भाव कर्मसु	,,	१५२	तृ० पाद	,, व्या०

रूप से -आ मिलता है।[1] उदा० हसामि, हसमि, हसेमि। हेमचन्द्र ने भी जाणामि, जाणमि, हसामि, हसमि आदि रूप दिये हैं। वर्तमान-काल के उत्तम पु० बहु० में अन्त्य-अ के स्थान पर -इ और -आ मिलते हैं।[2] उदा० हसिमो, हसामो; हसिमु, हसामु। भूतकालिक कृदन्त के प्रत्यय -क्त के पूर्व धातु के अन्त्य-अ के लिये-इ का प्रयोग होता है।[3] उदा० हसित> हसिअं, पठित> पठिअं। क्रियार्थक संज्ञा के प्रत्यय -क्त्वा, -तुमुन और भविष्य कृदन्त के प्रत्ययों -तव्य का योग होने पर - धातुओं के अन्त्य - अ के स्थान पर - ए का विकास मिलता है। उदा० हसित्वा > हसेऊण, हसिऊण। हसितुं > हसेउं, हसिउं। हसितव्यं > हसेअव्वं, हसिअव्वं, हसिष्यति> हसेहिइ, हसिहिइ, हसिष्यन्ति> हसेहिन्ति, हसिहिन्ति। किसी भी काल और पुरुष में धातु के अन्त्य -अ के स्थान पर -ए का वैकल्पिक प्रयोग मिलता है।[5] उदा० हसति> हसेइ, हसइ, हसतु> हसेउ, हसउ। हेमचन्द्र ने वर्तमान शतृ आदि रूप में -अ> -ए दिया है। उदा० हसेन्तो, हसन्तो आदि। हेमचन्द्र ने -ज्जा, -ज्ज के पूर्व -अ>-ए दिया है।[6] उदा० हसेज्जा, हसेज्ज, होज्जा, होज्ज।

---

१. अत आ मिपि वा	सूत्र सं. ३०	परि० ७	प्रा० प्र०
मौ वा	,, १५४	,,	,, व्या०
२. इच्च बहुषु	,, ३१	परि० ७	,, प्र०
इच्च मो मु मे वा	,, १५५	तृ० पाद	,, व्या०
३. क्ते	,, ३२	परि० ७	,, प्र०
,,	,, १५६	तृ० पाद	,, व्या०
४. ए च क्त्वातुमुन्तव्य-भविष्यत्सु	,, ३३	परि० ७	,, प्र०
एच्च क्त्वा तुम् तव्य-भविष्यत्सु	,, १५७	तृ० पाद	,, व्या०
५. लादेशे वा	,, ३४	परि० ७	,, प्र०
वर्तमाना पंचमी शतृषु वा	,, १५८	तृ० पाद	,, व्या०
६. ज्जा ज्जे	,, १५९	,,	,, ,,

क्रमदीश्वर के अनुसार हसेअन्तो, हसन्तो, हसेमाणी, हसमाणी, भुवन्तं, भुवेन्तं रूप मिलते हैं।

संस्कृत के विविध गणों की अपेक्षा प्राकृत में केवल दो गण-अगण और एगण के प्रयोग मिलते हैं। इनमें भी अगण रूप ही व्यापक है। नाम धातुओं तथा कुछ अन्य शब्दों में एगण रूप मिलता है, परन्तु दोनों गणों में विभक्तियों का प्रयोग प्राय: समान होता है। एगण—कथ>कध (शौ०), कह (माहा०) का उदाहरण निम्नलिखित है—

लट् (वर्तमान)

	एक०	बहु०
प्र० पु०	कधेदि, कहेइ	कधेन्ति, कहेन्ति
म० पु०	कधेसि, कहेइ	कधेध, कहेह
उ० पु०	कधेमि, कहेमि	कधेमो, कहेमो

√हस् धातु का विकास विविध कालों और पुरुषों के अनुसार निम्नलिखित होगा—

लट् (वर्तमान)

	एक०	बहु०
प्र०	हसइ, हसए, हसेइ, हसेज्ज, हसेज्जा	हसन्ति, हसेन्ति
म०	हससि, हसेसि, हससे	हसेह, हसेत्था, हसेथ, हसह, हसित्था, हसथ
उ०	हसामि, हसमि, हसेमि	हसेमु, हसेमो, हसेम, हसामु, हसामो, हसाम, हसिमो, हसिमु, हसिम

लोट् (आज्ञा)

प्र०	हसउ, हसेउ, हसेज्ज, हसेज्जा	हसन्तु, हसेन्तु
म०	हससु, हसेसु	हसह, हसेह
उ०	हसमु, हसेमु	हसामो, हसेमो हसमो

विधिलिंग—

विधिलिङ का प्रयोग अमा०, जै० माहा० में अधिक होता है, माहाराष्ट्री तथा अन्य प्राकृतों में कम होता है। इसके व्यापक रूप संस्कृत दिवादि गण के प्रत्यय -यात् -यास्, -याम् से संबंधित हैं। उदा०—

	एक०	बहु०
प्र० पु०	वट्टेज्जा, वट्टेज्ज	वट्टेज्जा, वट्टेज्ज
म० पु०	वट्टेज्जासि, वट्टेज्जसि, वट्टेज्जासु, वट्टेज्जसु, वेट्टेजाहि, वट्टेज्जहि	वट्टेज्जाइ, वट्टेज्जइ
उ० पु०	वट्टेज्जा, वट्टेज्ज	वट्टेज्जाम

विधिलिंग के कुछ प्रयोग शौरसेनी आदि प्राकृतों में संस्कृत के भ्वादि गण के प्रत्यय -एत्, -एस्, -एयम् के सदृश मिलते हैं। उदा०—

	एक०	बहु०
प्र० पु०	वट्टे	वट्टे
म० पु०	,,	,,
उ० पु०	,, वट्टेअं	,,

लृट् (भविष्य)

प्र०	हसिस्सदि, हसिस्सइ (माहा०) हसेहिइ, हसिहिइ (अमा०), हसेज्ज, हसेज्जा	हसिस्सन्ति हसिहिन्ति (अमा०), हसेहिन्ति
म०	हसिस्ससि हसिहिसि (माहा०, अमा०), हसिहिसे	हसिस्सध, हसिस्सह (माहा०) हसिहित्था, हसिहिह, हसिहिथ
उ०	हसिस्सं, हसेस्सं, हसिस्सामि (अमा०) हसिहिमि, हसेहिमि, हसेहामि, हसेस्सामि	हसिहिस्सा, हसिहित्था, हसेहित्था, हसेहिस्सा, हसिहिमो, हसिस्सामो, हसिहामो, हसेहिमो, हसेस्सामो, हसेहामो

लङ् (भूत का०)		बहु०
प्र०	असिं, अअंिं	अहुम्हा, अहुवम्हा, अहुवाम
म०	अपुच्छसि,	पुच्छित्थो, अहुवत्थ
प्र०	आसी, आसि	आसुं, अभाविंसु (अमा०)

आसीत् > आसी का प्रयोग भूतकाल के सभी पुरुषों और वचनों में मिलता है।

लुंग (भूत का०)		
पु०	अहोसि, अहुँ,	अहुवम्हा, अहुम्हा
म०	अहू	अहुवत्थ
प्र०	होत्था (अमा०), अहु, अहू, अहोसि	अहू, अहुँ, अहेसुं

√भू-

		एक०	बहु०
लट्-	प्र०	होइ	होन्ति
	म०	होसि	होथ, होह
	उ०	होमि	होमु, होम, होमो
लोट्-	प्र०	होउ	होन्तु
	म०	होसु, होहि	होह
	उ०	होमु	होमो
लृट्०-	प्र०	होहिइ	होहिन्ति
	म०	होहिसि, होहिसे	होहिह, होहित्था, होहिथ
	उ०	होस्सं;होहामि, होस्सामि,होहिमि	होस्सामो,होहामो,होहिमो, होहिस्सा, होहित्था, होस्सामु, होहामु,होहिमु, होस्साम, होहाम, होहिम
लङ्-	प्र०	होहीअ, हुवीय	

√अस्

लट्-	प्र०	अत्थि	सन्ति, अत्थि
	म०	सि, अत्थि	ह, त्था, अत्थि
	उ०	म्हि, अत्थि	म्हो, म्हु, म्ह, अत्थि
लङ्-	प्र०	असि, आसी, अहोसि	आसि, अहोसि
	म०	,, ,,	,, ,,
	उ०	,, ,,	,, ,,

आसी, अहोसि के प्रयोग सभी पुरुषों और वचनों में समान मिलते हैं।

प्राकृत में कर्मवाच्य के रूप धातु के अनंतर -इज्ज, -ईअ जोड़ने से बनते हैं। उदा० √हस्, √गम्-हसिज्जइ, गमिज्जइ (माहा०), हसीअदि, गमीअदि (शौ०), प्र० पु० पुच्छीअदि (शौ०), पुच्छिज्जइ (माहा०) म० पु० पुच्छीअसि (शौर०) पुच्छिज्जसि (माहा०), उ० पु० पुच्छीआमि (शौ०) पुच्छिज्जामि (माहा०)। प्रेरणार्थक रूप अकारांत धातु के अनंतर -अय > -ए के योग से बनाया जाता है। -उदा० हासेइ < हासयति, कारेति < कारयति। आकारांत धातुओं में संस्कृत -पय> -वे हो जाता है। उदा० निर्वापयति > णिव्वावेदि और इसी ढंग पर अन्य धातुओं में भी धातु के अनंतर -आ लगाकर -वे जोड़ दिया जाता है। उदा० पृच्छयते>पुच्छावेदि, हसावेइ, हासावेइ।

प्राय: क्त्वांत प्रत्यय के लिये शौ० में -दूण, माहा०, मा० में -ऊण, अमा० में -त्ता, -त्ताणं प्रत्यय मिलते हैं—उदा०

हसेऊण, हसिऊण का रूप हसिदूण (शौ०), हसित्ता (अमा०), कदुअ < कृत्वा, क्त्वान्त प्रत्यय गदुअ < गत्वा। भूतकालिक कृदंत-क्त का रूप हसिअं, प्रेरणार्थक रुप हासिअं, हसाविअं, हसेउं, हसिउं (शौ०), तुमुन प्रत्ययांत रुप हसिदुं गन्तुं, गमिदुं, गच्छिदुं (शौ०), कारिदुं, कादुं, काउं, तव्यान्त रूप हसेअव्वं, हसिअव्वं मिलते हैं।

शतृ और शानच् कृदन्तों के कर्तृ वाच्य में निम्नलिखित प्रयोग मिलते हैं।

शतृ के पुलिंग वर्तमान रूपों में हसन्तो, हसेन्तो, स्त्रीलिंग में हसई, हसन्ती, पुलिंग भविष्य में हसिस्सिन्तो, स्त्री० में हसिस्सन्ता, नपुं० में हसिस्संतं मिलते हैं। शानच् के वर्तमान पुं० रूपों में हसमाणो हसमाणो, स्त्री० में हसमाणी, नपु० में हसमाण, भविष्य पु० में हसिस्समाणो, स्त्री० हसिस्समाणी नपुं० हसिस्समाणं के प्रयोग होते हैं।

उक्त कृदन्तों का कर्म-वाच्य में इस प्रकार प्रयोग मिलता है—

वर्तमान—हसीअन्तो (शौ०), हसिज्जन्तो (माहा०), हसिज्जमाणे (अमा०)।

भूत—हसिदो (शौ०), हसिओ (माहा०)।

भविष्य—हसिदव्वो (शौ०), हसिअव्वो (माहा०), हसणीओ (शौ०), हसणिज्जो (माहा०)।

प्राकृतों में कुछ ऐसे रूप भी मिलते है जो संस्कृत के वय्याकरणों के द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार सिद्ध नहीं होते। वे रूप संस्कृत शब्दों का आधार लेकर अनियमित रूप में विकसित माने गये हैं। इन असाधारण रूपों की सूची 'क्तान्त' के नाम से ए० सी० वूल्नर ने दी है। विभिन्न प्राकृतों में इन क्तान्त रूपों का प्रयोग कृदन्त के अतिरिक्त विशेषण के अर्थ में भी हुआ है। उनके कुछ रूप ये हैं-आरद्ध< आरब्ध, किद, (शौर०), कअ (माहा०), कय (अमा०) <कृत, किलिट्ठ< क्लिष्ट, खित्त, >क्षिप्त, ठिअ (माहा०), ठिद (शौ०) <स्थित, पइण्ण > प्रकीर्ण, पडिवण्ण < प्रतिपन्न, विण्णत्त< विज्ञप्त आदि। प्राकृत के विविध कालरूपों में भी इन असाधारण रूपों का प्रयोग मिलता है। उदा० वर्तमान काल के प्र० पु० एक० में खाइ< खादति, भाति, भादि< विभाति, ठाइ< तिष्ठति आदि। भविष्य में णेहिइ< नेष्यति (माहा०), दाहं<दास्यामि (माहा०)।

कर्मवाच्य में भी ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं। जुज्जदि < युज्यते, गम्मइ< गम्यते। इसी प्रकार प्रा० खज्जइ, खिप्पइ, लब्भइ, मुच्चइ, बुच्च- आदि रूप क्रमशः √खाद्, √क्षिप्, √लभ्, √मुच्, √वच् संस्कृत धातुओं से संबंधित हैं। अन्य रूप घेप्पइ <गृह्यते, लिब्भइ< लिह्यते आदि अप्रचलित धातुओं से विकसित हैं। वर्तमानकाल के अत्थि रूप का विकास अस्ति और भूतकाल के आसी रूप का संबंध संस्कृत आसीत् से है। इनका प्रयोग सब पुरुषों और वचनों में समान मिलता है। अतएव प्राकृत में उक्त क्रान्त प्रयोग प्रायः संस्कृत धातुओं से ही संबंधित हैं परन्तु ध्वनि-परिवर्तन और सादृश्य के कारण वे रूप संस्कृत के व्याकरणिक नियमों से सिद्ध नहीं होते इसीलिये उन्हें असाधारण प्रयोग कहा गया है।

अपभ्रंश

अपभ्रंश में क्रिया के रूपों का विकास शौरसेनी, माहाराष्ट्री प्राकृतों के सदृश ही मिलता है परन्तु वर्तमान आज्ञा के मध्यम पु० एक० और भविष्य में कुछ अन्य रूपों का भी व्यवहार होता है। हेमचंद्र ने इन विशेष रूपों का निर्देश सूत्र संख्या ३८२-३८८ में किया है। वर्तमान काल के प्रथम पु० बहु० में -हिं का वैकल्पिक प्रयोग मिलता है।[1] उदा० धरतः> धरहिं, कुरुतः> करहिं, शोभन्ते> सहहिं (३८२-१)। मध्यम पु० एक० में -हि का वैकल्पिक प्रयोग होता है।[2] उदा० रोदिषि> रुअहि (३८३-१), लभसे> लहहि (३८३-२), दद्याः> दिज्जहि (३८३-३)। वर्तमान काल के मध्यम पुरुष बहु० में -हु रूप का योग मिलता है। उदा० इच्छथ> इच्छहु (३८४-१)। उत्तम

१. त्यादेराद्य त्रयस्य संबन्धिनो हिं न वा	सूत्र सं० ३८२	च० पाद	प्रा० व्या०
२. मध्य त्रयस्याद्यस्य हिः	,, ३८३	,,	,,
३. बहुत्वे हुः	,, ३८४	,,	,

पु० एक० में -उँ का प्रयोग वैकल्पिक रूप में होता है।[1] उदा० कर्षामि > कड्ढउँ (३८५-१), करोमि > किज्जउँ (३३८-१)। उत्तम पुरुष बहु० में -हुँ का वैकल्पिक प्रयोग मिलता है।[2] उदा० यामः> जाहुँ, लभामहे> लहहुँ, वलामहे> वलाहुँ (३८६-१)। आज्ञार्थ (लोट्) मध्यम पु० एक० में -इ, -उ, -ए के वैकल्पिक प्रयोग मिलते हैं।[3] उदा० स्मर> सुमरि (३८७-१), विलम्बस्व> विलम्बु (३८७-२)। कुरु> करें (३८७-३)। भविष्य काल में -स्य (-ष्य)> -स रूप होता है।[4] उदा० भविष्यति> होसइ (३८८-१)। अपभ्रंश में 'क्रिये' क्रियापद के स्थान पर 'कीसु' का वैकल्पिक प्रयोग मिलता है।[5] उदा० क्रिये> कीसु (३८९-१)। वर्तमान काल में √ भू धातु का 'हुच्च' रूप मिलता है।[6] उदा० प्रभवति> पहुच्चइ (३९०-१)। √ ब्रू धातु के ब्रुवइ रूप का वैकल्पिक प्रयोग होता है।[7] उदा० ब्रूत सुभाषितं किंचित् > ब्रुवह सुहासिउं किंचि, उक्त्वा> ब्रोधि, ब्रोप्पिणु रूप भी मिलते हैं। (३९१ १)। √व्रज धातु का विकास 'वुञ' रूप में पाया जाता है। उदा० व्रजति> वुञइ, व्रजित्वा> वुञे (प्पिणु)। √दृश् धातु के स्थान पर 'प्रस्स' का प्रयोग मिलता है।[9] उदा० पश्यति (दृश्येत) > प्रस्सदि √ ग्रह धातु का विकास 'गृण्ह' रूप में होता है।[10] उदा० पठ-

१. अन्त्य त्रयस्याद्यस्य उँ	सूत्र संख्या	३८५	च० पाद	प्रा० व्या०
२. बहुत्वे हुँ	,,	३८६	,,	,,
३. हि-स्वयोरिदुदेत्	,,	३८७	,,	,,
४. वर्त्स्यति स्यस्य सः	,,	३८८	,,	,,
५. क्रियेः कीसु	,,	३८९	,,	,,
६. भुवः पर्याप्तौ हुच्चः	,,	३९०	,,	,,
७. ब्रूगो ब्रुवो वा	,,	३९१	,,	,,
८. व्रजेर्वुञः	,,	३९२	,,	,,
९. दृशेः प्रस्सः	,,	३९३	,,	,,
१०. ग्रहेर्गृण्हः	,,	३९४	,,	,,

आदि रूप होते हैं।[1] उदा० शीघ्रं = वहिल्लउ (४२२-१), झकट = घंघल, कलहा: = घङ्घलइं (४२१-२), संसर्ग: = विट्टालु: (४२२-३), भयं = द्रवक्कउ (४२२-४), आत्मीयं = अप्पणउ (३५०-२), दृष्टि: = द्रेहि (४२२-५), गाढम् = निच्चट्टु (४२२-६), असाधारण: = असड्ढलु ४२२-७), कौतुकेन = कुड्डुँण (४२२-८), क्रीडा = खेड्डुयं (४२२-९), रम्या: = रवण्णा (४२२-१०), अद्भुत = ठक्करि (४२२-११) हे सखी = हेल्लि (३७९-१), पृथक्पृथक् = जुअंजुअ (४२२-१२), मूढ़: = नालिउ (४२२-१३), अवस्कन्द: = दडवडउ (४२२-१४), संबंधिना = केरएँ (४२२-१५), माभैषी: = मब्भीसडी (४२२-१६), यद्यद् दृष्टं तत्तत् = जाइट्ठिआ। उदा० यद् दृष्टं तस्मिन् > जाइट्ठिअए (४२२-१७), हुहुरु, घुग्घ आदि शब्द क्रमशः शब्दानुकरण और चेष्टानुकरण के रूप में मिलते हैं।[2] उदा० हुहुरु शब्दं कृत्वा > हुहुरुत्ति (४२३-१), कसरत्क शब्दं कृत्वा = कसरक्केहि, धुट शब्दं कृत्वा = घुण्टेहिं, मक्कड-घुग्घिउ = मर्कट चेष्टां (४२३-३), उत्थानोपवेशनम् = उट्ठबईस (४२३-४) । घइम् शब्द का प्रयोग अनर्थसूचक अर्थ में होता है।[3] उदा० नूनं विपरीता बुद्धि: भवति विनाशस्यकाले = घइं विवरीरी बुद्धडी होइ विणासहों कालि (४२४-१)। अपभ्रंश में कुछ शब्दों के प्रयोग विशेष प्रकार के मिलते हैं।[4] 'तात्' चतुर्थी सूचक शब्द के लिये केहिं, तेहि, रेसि, रेसिं, तणेण शब्द मिलते हैं। उदा० कृते > केहिं, रेसि (४२५-१), कृते > तणेण (३६६-१)। पुनः, विना शब्दों के अंत्य में- उ

१. शीघ्रादीनां वहिल्लादय:	सूत्र सं० ४२२	च० पाद	प्रा० व्या०
२. हुहुरुघुग्घादय: शब्द चेष्टानुकरणयो:	,, ४२३	,,	,,
३. घइमादयोनर्थका:	,, ४२४	,,	,,
४. तादर्थ्ये केहिं तेहिं-रेसि-रेसिं-तणेणा:	,, ४२५	,,	,,

प्रत्यय का योग होता है।[1] उदा० पुनः> पुणु (४२६-१), विना> विणु (३८६-१)। अवश्यम् शब्द का विकास अन्त्य -एँ और अन्त्य -अ रूप में मिलता है।[2] उदा० अवश्यं> अवसें (४२७-१), अवश्यं> अवस (३७६-२)। एकशः शब्द के लिये अन्त्य -इ प्रत्यय युक्त रूप मिलता है।[3] उदा० एकशः> एकसि (४२८-१)। अपभ्रंश के कुछ शब्दों में -डा, -डुल्ल प्रत्ययों का योग मिलता है।[4] उदा० द्वौ दोषौ> बे दोषडा (३७९-१), एक कुटी पञ्चभिः> एक कुडुल्ली पञ्चहिं (३२२-१२)।

वर्तमान काल के स्त्रीलिंग के रूपों में शब्द के अन्त में -डी प्रत्यय का योग होता है।[5] उदा० गौरी> गोरडी (४३१-१)। वर्तमान काल के स्त्रीलिंग रूपों में -डा, -डि प्रत्ययों का भी योग होता है।[6] उदा० वार्ता> वत्तडी, धूलिः> धूलडिआ (४३२-१)। अकारान्त शब्दों में -डा प्रत्यय का रूप -डि, -डइ मिलता है।[7] उदा० धूलिरपि न दृष्टा> धूलडिआ वि न दिट्ठ (४३२-१), ध्वनिः कर्णे प्रविष्टः> झुणि कन्नडइ पइट्ठ (४३२-१)। अपभ्रंश में संबंधवाची प्रत्ययों -इल्ल, -उल्ल का प्रयोग अधिक मिलता है। युष्मद् आदि शब्दों में-ईय प्रत्यय का -आर रूप हो जाता है।[8] उदा० युष्मदीयेन > तुहारेण (४३४-१), अस्माकं> अम्हारा (३४५-१), भगिनि अस्मदीयः कान्तः> बहिणि महारा कन्तु (३५१-१)। इदं, किं आदि

१. पुनर्विनः स्वार्थे डुः	सूत्र सं०	४२६	च० पाद	प्रा० व्या०
२. अवश्यमो डें डौ	,,	४२७	,,	,,
३. एकशसो डिः	,,	४२८	,,	,,
४. अ-डड-डुल्लाः स्वार्थिक-क-लुक्-च	,,	४२९	,,	,,
५, स्त्रियां तदन्ताड्डीः	,,	४३१	,,	,,
६. आन्तान्ताड्डाः	,,	४३२	,,	,,
७. अस्येदे	,,	४३३	,,	,,
८. युष्मदादेरीयस्य डारः	,,	४३४	,,	,,

शब्दों में -एत्तुल प्रत्यय का योग मिलता है।[1] उदा० इदं> एत्तुलो, किं> केत्तुलो, यत्> जेत्तुलो, तत्> तेत्तुलो, एत्> एत्तुलो। अत्र, तत्र आदि शब्दों में अन्त्य -त्र के स्थान पर -त्तहे प्रत्यय का योग हो जाता है।[2] उदा० अत्र> एत्तहे, तत्र> तेत्तहे (४३६-१)। शब्दों के -त्व, -तल प्रत्ययों का -प्पण, -त्तण रूप मिलते हैं।[3] उदा० महत्वस्य कृते> वड्डुत्तणहों तणेण, महत्वं पुनः प्राप्यते> वड्डुप्पणु परिपाविअइ (३६६-१), -तव्य प्रत्यय के लिये अपभ्रंश में -इएव्वउँ, -एव्वउँ,-एवा रूपों का प्रयोग होता है।[4] उदा० मर्तव्यं> मरिएव्वउँ (४३८-१), सोढव्यं> सहेव्वउँ (४३८-२), जागरितव्यं> जग्गेवा (४३८-३)। -क्त्वा प्रत्यय के स्थान पर अपभ्रंश में -इ, इउ,-इवि,-अवि रूप मिलते हैं।[5] उदा० मारयित्वा > मारि (४३६-१), गजघटाः भङ्क्त्वा यातः> गयघड भजिउ जन्ति (३९५-५), द्वौ करौ चुम्बित्वा जीवम्> वे कर चुम्बिवि जीउ (४३९-२), विच्छोट्य> विछोडवि (४३९-३)। -क्त्वा प्रत्यय के लिये -एप्पि, -एप्पिणु, -एवि,-एविणु रूप भी मिलते हैं।[6] उदा० जित्वा> जेप्पि, दत्वा> देप्पिणु, लात्वा> लेवि, ध्यात्वा> झाएविणु (४४०-१)। -तुम् प्रत्यय का -एवं, -अण, -अणह, -अणहिं, -एप्पि, -एप्पिणु, -एवि, -एविणु रूप मिलते हैं।[7] उदा० दातुं> देवं, कर्तुं> करण, भोक्तुं> भुञ्जणहँ, भुञ्जणहिं (४४१-१), जेतुं> जेप्पि, त्यक्तुं> चएप्पिणु, लातुं> लेविणु, पालयितुम्> पालेवि, (४४१-२)। गम् धातु का विकास -इप्पणु, -एप्पिणु

१. अतोर्डेत्तुलः	सूत्र सं०	४३५	च० पाद	प्रा० व्या०
२, त्रस्य डेत्तहे	,,	४६१	,,	,,
३. त्व तलोः प्पणः	,,	४३७	,,	,,
४ तव्यस्य इएव्वउँ एव्वउँ एवा	,,	४३८	,,	,,
५. क्त्व इ-इउ-इवि अवयः	,,	४३९	,,	,,
६. एप्प्योप्पिण्वेव्येविणवः	,,	४४०	,,	,,
७. तुम एवमणाणहमणहिं च	,,	४४१	,,	,,

प्रत्यय युक्त मिलता है।[1] उदा० गत्वा> गम्प्पिणु (४४२-१), गत्वा >गमेप्पिणु (४४३-२)। -तृन: प्रत्यय का -अणअ रूप होता है।[2] उदा० मारयित्वा> मारणउ, कथयिता> बोल्लणउ, वाद-यिता> वज्जणउ, भापिता> भयणउ (४४३-१)। 'इव' शब्द के लिये नं, नउ, नाइ, नावइ, जणि, जणु छ: रूप मिलते हैं।[3] उदा० इव> नं (३८२-१), इव> णउ (४४४·१), इव> नाइ (४४४-२) इव> नावइ (४४४-३), इव> जणि (४४४-१) इव>जणु (४०१-३)। अपभ्रंश में लिङ्ग रूपों का व्यत्यय भी मिलता है।[4] पुलिंग का नपुंसक में प्रयोग होता है। उदा० गजानां कुम्भान् दारयन्तम् > गय कुम्भइं दारन्तु (३४५ १)। नपुंसक के लिये पुलिंग का प्रयोग होता है। उदा० अभ्राणि लग्नानि पर्वतेषु> अब्भा लग्गा डुङ्गरिहिं (४४५-१), नपुंसक का स्त्रीलिंग में भी प्रयोग मिलता है। उदा० पादे विलग्नं अन्त्रं> पाइ विलग्गी अन्त्रडी (४४५-२)। स्त्रीलिंग का नपुंसक के लिये प्रयोग होता है। उदा० पुन: शाखा: मोटयन्ति> पुणु डालइं मोडन्ति (४४५-३)। अपभ्रंश में शौरसेनी प्राकृत की कुछ ध्वनि संबंधी विशेषताएँ द्रष्टव्य हैं।[5] उदा० विनिर्यापितम् >विणिम्मिविदु, कृतं > किदु, रत्या: > रदिए, विहितं > विहिदु आदि। अतएव अपभ्रंश में क्रिया रूपों का विकास निम्नलिखित होगा—

लट (वर्तमान) √ कृ (कर-)।

	एक०	बहु०
प्र० पु०	करइ, करेइ	करहिं, करंति

---

१. गमेरेप्पिण्वेप्प्योरेलु ग वा	सूत्र सं०	४४२	च० पाद	प्रा० व्या०
२. तृनोण्अः	„	४४३	„	„
३. इवार्थे नं-नउ-नाइ- नावइ जणि, जणवः	„	४४४	„	„
४. लिङ्गमतन्त्रम्	„	४४५	„	„
५. शौरसेनीवत्	„	४४६	„	„

	एक०	बहु०
म० पु०	करहि, करसि	करहु, करह
उ० पु०	करउं, करिमि	करहुँ, करिमु

लोट् (आज्ञा) में मध्यम पु० एक० में करि, करु, करे रूप मिलते हैं।

विधि प्र० पु०	करिज्जउ	करिज्जंतु, करिज्जहुँ
म० पु०	करिज्जहि, करिज्जइ	करिज्जहु
उ० पु०	करिज्जउं	किज्जउं

लृट (भविष्य)

प्र० पु०	करेसइ, करेहइ	करेसहि, करेहिंति
म० पु०	करेसहि, करेससि, करीहिसी	करेसहु, करेसहो
उ० पु०	करेसमि करीहिमी, करिसु	करेसहुँ

कृदंत—वर्तमानकालिक कृदंत पुलिंग में -अंत, -माण, स्त्रीलिंग में -अंती प्रत्ययों का योग होता है। उदा० पु० चलंत, भमंत, पविस्माण, वट्टमाण, स्त्री० चलंती, भमंती।

भूतकालिककृदंत के लिये -इअ, -इउ, -इय, -इयौ, -इअअ, -इओ प्रत्ययों का योग होता है। उदा० किअ, किय, गअ, गय, हुअ आदि।

भविष्यकालिक कृदंत के लिये -इएव्वउं, -एव्वउं, -एवा, -एव्व प्रत्ययों का योग मिलता है। उदा० मरिएव्वउं, सहेव्वउं, जग्गेवा।

क्रियार्थक संज्ञा के लिये -एव, -अण, -अणह, -अणहिं, -एप्पि, -एप्पिणु, -एवि, -एविणु प्रत्ययों का योग किया जाता है। उदा० देवं, करण, भुजणहं, भुजंणहि, जेप्पि, जेप्पिणु, पालेवि, लेविणु पूर्वकालिक क्रिया के लिये -इ, -इउ, -इवि, -अवि, -एप्पि, -एप्पणु, -एवि, -एविणु प्रत्ययों का प्रयोग होता है। उदा० करि, करिउ, करिवि, करवि, करेप्पि, करेप्पिणु, करेवि, करेविणु। प्रेरणार्थक रूप -अव, -आव, -आ प्रत्ययों के योग से वनते हैं—उदा० विणवइ, चिन्तवइ, वोल्लावइ आदि।

चयनिका

उद्धरण संख्या—१

माहाराष्ट्री *गाथासप्तशती*

१. अमिअं पाउअकव्वं[१] पढिउं[२] सोउं[३] अ[४] जे ण आणन्ति[५]
कामरस[६] तत्त तन्ति[७] कुणन्ति[८] ते कहं ण लज्जन्ति[९] ॥२१॥

२. गिम्हे[१] दवग्गिमसि मलिआइं दीसन्ति[२] विञ्झसिहराइं[३]
आसुसु[४] पउत्थवइए[५] न होन्ति[६] नव पाउसब्भाइं ॥७०१॥

१—१. प्राकृतकाव्यं-द्वि० एक० नपुं०। २. पठितुं-√पठ्, तुमुन् प्रत्यय, पढ़ना। ३. श्रोतुं-√श्रु, तुमुन् प्रत्यय, सुनना। ४. च-अव्यय। ५. जानन्ति-√ज्ञा प्र० पु० बहु० वर्तमान० जानते हैं ६. कामस्य-प० एक० नपुं०। ७. तंत्री देशी० सं० चिन्ता, द्वि० एक० स्त्री०। ८. कुर्वन्ति-√ कृ- प्र० पु० बहु० वर्तमान०। ९. लज्जन्ते, √लज्ज्-प्रथम पु० बहु० वर्तमान०, लज्जित होते हैं।

२—१. ग्रीष्मे-ष्म>-म्ह-ध्वनिविपर्यय, सप्तमी० एक० नपुं०। २. दृश्यन्ते-√दृश्-प्र० पु० बहु० वर्तमान०। ३. विन्ध्यशिखराणि-प्र० बहु० नपुं०। ४. आश्वसिहि-√श्वस्-म० पु० एक० आज्ञा०। प्रोषितपतिके-सं० एक० स्त्री०। ६. भवन्ति-√भू-प्र० पु० बहु० वर्तमान०।

३. वसइ[1] जहिं चेअ खलो पोसिज्जन्तो[3] सिणेहदाणेहिं[4]
तं चेअ आलअं दीओ व्व[5] अइरेण मइलेइ[6] ।।३५-२।।

४. सच्चं[1] भणामि मरणे ट्ठिअम्हि[2] पुण्णे तडम्मि[3] तावीए
अज्ज वि तत्थ कुडङ्गे णिवडइ[4] दिट्ठी तह च्चेअ ।।३६-३।।

५. अउलीणो[1] दो मुहओ ता महुरो भोअणं मुहे जाव[2]
मुरओ[3] व्व खलो जिण्णम्मि[4] भोअणे विरसमारसइ[5] ।।५३-३।।

६. जह[1] जह उव्वहइ[2] वहू णवजोव्वण मणहराइं अङ्गाइं[3]
तह[4] तह से[5] तणुआअइ मज्झो दइओ अ पडिवक्खो[6] ।।६२-२।।

७. वसणम्मि[1] अणुव्विग्गा विहवम्मिं अगव्विआ भए धीरा ।
होन्ति अहिण्णसहावा[2] समेसु[3] विसमेसु सप्पुरिसा ।।८०-४।।

३—१. वसति-√वस् प्र० पु० एक० वर्तमान० । २ यत्र । ३. पोष्यमाणः √पुष्- शानच्-वर्तमान० प्रेरणा० । ४. स्नेहदानैः-तृ० बहु० नपुं० । ५. इव-अव्यय । ६. मलिनयति-प्र० पु० एक० वर्तमान० ।

४—१. सत्यं-द्वि० एक० नपुं० । २. स्थितास्मि √स्था - उत्तम पु० एक० वर्तमान० । ३. तटे-सप्तमी० एक० नपुं० । ४. निपतति- √पत्, नि-उपसर्ग-प्र० पु० एक० वर्तमान० ।

५—१. अकुलीनः-प्र० एक० पु० । २ यावत्-अन्त्य व्यंजन-लोप अव्यय । ४. जीर्णे सप्तमी० एक० नपुं० । ५. मारसति-√मार-प्र० पु० एक० वर्तमान० ।

६—१. यथा-अव्यय २. उद्वहते √ वह्, उत्-उपसर्ग, प्रथम पु० एक० वर्तमान० । ४. नवयौवनमनोहरअङ्गानि-प्र० बहु० नपुं० । ४. तथा-अव्यय । ५. तस्याः, तद्-सर्वनाम प० एक० स्त्री० । ६. प्रतिपक्षः-प्र० एक० नपुं० ।

७—१. व्यस्ने सप्तमी० एक० नपुं० । २. अभिन्नस्वभावाः-प्र० बहु० पु० । ३. समेषु-सप्तमी० बहु० नपुं० । ४. सत्पुरुषाः, प्र० बहु० पु० ।

८. मालइ कुसुमाइं[1] कुलुञ्चिऊण[2] मा जाणि णिव्वुओ सिसिरो
काअव्वा अज्जवि णिग्गुणाणं[3] कुन्दाणं[4] वि समद्धी ।।२६-५।।

९. कत्थ[1] गअं[2] रइविम्बं[3] कत्थ पणट्ठाओ[4] चन्दताराओ
गअणे[3] वलाअपन्तिं कालो होरं व कड्ढेइ[5] ।।३५-५।।

१०. रोवन्ति[1] व्व अरण्णे दूसह[2] रइकिरण फंस[3] संतत्ता
अइतारझिल्लि विरुएहिं[4] पाअवा[5] गिम्हमज्झह्णे[6] ।।६४-५।।

११. मअणग्गिणो[1] व्व धूमं मोहणपिच्छिं व लोअदिट्ठीए[2]
जोव्वण धअं[3] व मुद्धा वहइ सुअन्धं चिउरभारं ।।७२-६।।

१२. गम्मिहिसि[1] तस्स पासं सुन्दरि मा तुरअ वड्ढउ मिअङ्को[1]
दुद्धे[3] दुद्धं मिअ चन्दिआइ[4] को पेच्छइ[5] मुहं दे ।। ७-७ ।।

८—१. कुसुमानि-प्र० बहु० नपुं० । २. देशी-कुलुञ्च-सं० √दह-जलाना, -क्त्वा, प्रत्यय-अर्धमागधी-तूण, शौर०-दूण-माहा०-ऊण । ३. निर्गुणाणां-षष्ठी० बहु० पु० । ४ कुन्दानाम्-ष० बहु० नपुं० ।

९—१. कुत्र । २. गतं-√गम्-क्त प्रत्यय भूतकालिक कृदन्त । ३. रविबिम्बं-प्र० पुं० एक० नपुं० नपुं० ४. प्रणष्टः-√नश् क्त प्रत्यय भूतकालिक कृदन्त । ५.कर्षति-√कृष् प्र० पु० प्र० एक० एक० वर्तमान० ।

१०—१. रुदन्ति-√रुद् प्र० पु० बहु० वर्तमान० । २. दुःसह । ३. स्पर्श । ४. विरुतैः—तृ० बहु० नपुं० । ५. पादपाः, प्र० बहु० नपुं० । ६. ग्रीष्ममध्याह्ने, सप्तमी० एक० नपुं० ।

११—१. मदनाग्नेः, पंचमी एक० स्त्री० । २. लोकदृष्टेः, पंचमी० एक० स्त्री० ३. ध्वजं-द्वि० एक० नपुं० ।

१२—१. गमिष्यसि-√गम्-मध्यम पु० एक० भविष्य० । २. मृगाङ्कः-प्र० एक० पु० । ३. दुग्धे-स० एक० नपुं० ।४. चन्द्रिकायां-सप्तमी० एक० स्त्री० । ५. प्रेक्षते -प्र-उपसर्ग-√ईक्ष्-प्र० पु० एक० वर्तमान० ।

१३. जे जे गुणिणो जे जे अ चाइणो[१] जे विडड्ढविण्णाणा[२]
दारिद्द रे विअक्खण ताण[३] तुमं साणुराओसि ।।७१-७।।

१४. उअ[१] सिन्धव पव्वअ सच्छहाइं[२] धुअतूलपुञ्जसरिसाइं[३]
सोहन्ति[४] सुअणु मुक्कोअआइं[५] सरए सिअब्भाइं[६] ।।७६-७।।

संस्कृत-छाया

१—अमृतं प्राकृतकाव्यं पठितुं श्रोतुं च ये न जानन्ति
कामस्य तत्त्वचिन्तां कुर्वन्ति ते कथं न लज्जन्ते ।।

२—ग्रीष्मे दवाग्निमषी मलितानि दृश्यन्ते विन्ध्यशिखराणि
आश्वसिहि प्रोषितपतिके न भवन्ति नव प्रावृडभ्राणि ।।

३—वसति यत्रैव खलः पोष्यमाणः स्नेहदानैः
तमेवालयं दीपक इवाचिरेण मलिनयति ।।

४—सत्यं भणामि मरणे स्थितास्मि पुण्ये तटे तापयाः
अद्यापि तत्र निकुञ्जे निपतति दृष्टिस्तथैव ।।

५—अकुलीनो द्विमुखस्तावन्मधुरो भोजनं मुखे यावत्
मुरज इव खलो जीर्णे भोजने विरसमारसति ।।

६—यथा यथोद्वहते वधूर्नवयौवनमनोहराण्यङ्गानि
तथा तथा तस्यास्तनूयते मध्यो दयितश्च प्रतिपक्षः ।।

७—व्यसनेऽनुद्विग्ना विभवेऽगर्विता भये धीराः
भवन्त्यभिन्न स्वभावाः समेषु विषमेषु सत्पुरुषाः ।।

१३—१. त्यागिनः-प्र० एक० पु० । २. विदग्धविज्ञानाः, प्र० बहु० नपुं० । तेषां, ष० एक० पु० ।

१४—१. देशी० अव्यय-सं० पश्य-देखो । २. स्वच्छाणि-निर्मल ।[3] सदृशानि-समान । ४. शोभन्ते—प्र० पु० बहु० वर्तमान० । ५. मुक्तोदकानि-प्र० बहु० नपुं० । ६. सिताभ्राणि/अ-चमकना, प्र० बहु० नपुं० ।

८—मालती कुसुमानि दग्ध्वा मा जानीहि निर्वृतः शिशिरः
कर्तव्याद्यापि निर्गुणानां कुन्दानामपि समृद्धिः ॥

६—कुत्र गतं रविबिम्बं कुत्र प्रणष्टाश्चन्द्रतारकाः
गगने वलाकापंक्तिं कालो होरामिवाकर्षति ॥

१०—रुदन्तीवारण्ये दुःसह रविकिरण स्पर्श संतप्ताः
अतितारझिल्ली विरुतैः पादपाः ग्रीष्ममध्याह्ने ॥

११—मदनाग्नेरिव धूमं मोहनपिच्छिकामिव लोकदृष्टेः
यौवन ध्वजमिव मुग्धा वहति सुगन्धं चिकुरभारम् ॥

१२—गमिष्यसि तस्य पार्श्वं सुन्दरि मा त्वरस्व वर्धतां मृगाङ्कः
दुग्धे दुग्धमिव चन्द्रिकायां कः प्रेक्षते मुखं ते ॥

१३—ये ये गुणिनो ये ये च त्यगिनो ये विदग्धविज्ञानाः
दारिद्र्य रे विचक्षण तेषां त्वं सानुरागमसि ॥

१४—पश्य सैन्धवपर्वत सदृक्षाणि धूततूलं पुञ्ज सदृशानि
शोभन्ते सुतनु मुक्तोदकानि शरदि सिताभ्राणि ॥

उद्धरण सं०—२

माहाराष्ट्री वज्जालग्गं

१. देसियसद्दपलोट्टं महुरक्खरछन्द संठियं ललियं
फुडवियडपायडत्थं पाइअकव्वं पढेयव्वं[१] ॥२८॥

कव्ववज्जा

१—१. पठनीयं √पठ-अनीयर् प्रत्यय, भविष्यकालिक कृदंत, पढ़ना चाहिये ।

२. दिढलोहसङ्कलाण[१] अन्नण[२] वि विविहपासबन्धाणं[३]
तापां[४] चिय अहिययरं वायाबन्ध कुलीणस्स[५] ॥७६-२॥

मितवज्जा

३. अप्पहियं कायव्वं जइ सक्कइ[१] परहियं च कायव्वं[२]
अप्पहिययरहियाणं[३] अप्पाहियं[४] चेव कायव्वं ॥८३॥

नीतिवज्जा

४. आरम्भो जस्स[१] इमो आसन्नासाससोसिय सरीरो
परिणामो कह होसइ[२] न याणिमो तस्स पेम्मस्स[३] ॥३३-१॥

पेम्मवज्जा

५. माणम्मि[१] तम्मि किज्जइ[२] जो जाणइ विरहवेयणादुक्खं
अणरसिय निव्विसेसे किं कीरइ[३] पत्थरे माणो ॥३-६३॥

मानवज्जा

६. उण्हुण्हा रणरणया दुप्पेच्छा दूसहा दूरालोया[१]
संवच्छरसयसरिसा पियविरहे दुग्गमा दियहा[२] ॥३-८४॥

विरहवज्जा

२—१. शृङ्खलानां:-ष० बहु० नपुं० । २. अन्यानां:-ष० बहु० अन्यत् सर्वनाम । ३. विविधपाशबन्धानां-ष० बहु० नपुं० ।४. तेषां-ष० बहु० पुं० तद्-सर्वनाम । ५. कुलीनस्य-षष्ठी० एक० पुं० ।

३—१. शक्यते-√शक्-प्र० पु० एक० वर्तमान० २. कर्तव्यं-√कृ-तव्ययान्त प्रत्यय-भविष्यकालिक कृदन्त । ३. चरहितानाम्-ष० बहु० नपुं० । ४. आत्महितं-द्वि० एक० नपुं० ।

४—१. यस्य-ष० एक० नपुं० यद्-सर्वनाम । २. भविष्यति-√भू-प्र० पु० एक० भविष्य० । ३ प्रेमस्य-ष० एक० नपुं० ।

५—१. माने-स० एक० नपुं० २. क्रियते-प्र० पु० एक० वर्तमान० ।

६—१. दुरालोकाः- दुर्-उपसर्ग, प्रथमा० बहु० नपुं० । २. दिवसाः-प्रथमा० बहु० नपुं० ।

७. विसहरविसग्गिससग्गदूसिओ डहइ[1], चन्दणो डहउ[2]
पियविरहे महचोज्जं[3] असयमओ जं ससी डहइ ॥३८७॥
विरहवज्जा

८. किं करइ[1] तुरियतुरियं अलिउलघणवम्मलो य सहयारो
पहिआण[2] विणासासङ्किय व्व[3] लच्छी वसन्तस्स[4] ॥ ६३६ ॥
वसंतवज्जा

९. अवरेण तवइ[1] सूरो सूरेण य ताविया[3] तवइ रेणू
सूरेणऽवरेण पुणो दोहिं[4] पि हु[5] ताविया पुहवी ॥ ६४२ ॥
गिम्हवज्जा

१०. भग्गो गिम्हप्पसरो मेहा गज्जन्ति[1] लद्धसंमाणा
मोरेहि[2] वि उग्घुट्ठं[3] पाउसराया चिरं जयउ[4] ॥ ६४६ ॥
पाउसवज्जा

११. सुसइ[1] व पङ्क न वहन्ति[2] निज्झरा वरहिणो न नच्चन्ति[3]
तनुयायन्ति णईओ[4] अत्थमिए पाउसनरिन्दे ॥६५३॥
शरद्वज्जा

७—१. दहति-√दह्-प्र० पु० एक० वर्तमान० । २. दहतु-प्र० पु० एक० विधि-क्रिया । ३. महदाश्चर्य-प्र० एक० नपुं० ।

८—१. करोति-√कृ-प्र० पु० एक० वर्तमान० । २. पथिकानां-ष० बहु० पु० । ३. इव-अव्यय ४. वसन्तस्य-ष० एक० नपुं ।

९—१. तपति-√तप्-प्र० पु० एक० वर्तमान० । २. सूर्येण-तृ० एक० पु० । ३. तापितः, क्त प्रत्यय, वर्तमान० कृदन्त, प्रेरणा० । ४. द्वाभ्याम्-तृ० बहु० संख्यावाचक० । प्राकृत में द्विवचन का प्रयोग बहुवचन के सदृश होता है ।

१०—१. गर्जन्ति-√गर्ज्, प्र० पु० बहु० वर्तमान० २. मयूरैः-तृ० बहु० पुलिंग ३. उद्घुष्टं √घुष्-क्त-प्रत्यय वर्तमान० कृदन्त । ४. जयतु √जि- प्र० पु० एक० विधि० ।

११—१. शुष्यति-√शुष्-प्र० पु० एक० वर्तमान० । २. वहन्ति-√वह् प्र० पु० बहु० वर्तमान० ३. नृत्यन्ति √नृत् प्र० पु० बहु० वर्तमान० । नद्यः-प्र० बहु० स्त्री० ।

१२. जाणिज्जइ[1] न उ पियमप्पिमं पि लोयाण[2] तम्मि 'हेमन्ते
सुयगसमागम वऽग्गी निच्चं निच्चं सुहावेइ[3] ॥६५५॥
हेमन्तवज्जा

१३. अवधूययलक्खणधूसराउ दीसन्ति[1] फरुसलुक्खाओ
उय[2] सिसिरवायलइया अलक्खणा दीणपुरिस व्व ॥६५७॥
सिसिरवज्जा

१४. एक्केण[1] विणा पियमाणुसेण सब्भावनेहभरिएणं
जणसङ्कुला वि पुहवी अव्वो रण्णं[2] व पडिहाइ[6] ॥७८१॥
पियोल्लासवज्जा

संस्कृत-छाया

१. देशीशब्दपर्यस्तं मधुराक्षरच्छन्दः संस्थितं ललितं
स्फुट विकट प्रकटार्थं प्राकृतकाव्यं पठनीयं ॥
२. दृढ लोहशृङ्खलेभ्योऽन्येभ्योऽपि विविधपाशबन्धेभ्यः
तेभ्य एवाधिकतरं वाग्बन्धनं कुलीनस्य ॥
३. आत्महितं कर्तव्यं यदि शक्य परहितं च .कर्तव्यं
आत्महितपरहितयोरात्महितं चैव कर्तव्यं ॥
४. आरम्भो यस्येदृश आसन्नाश्वासशोपित शरीरः
परिणामः कथं भविष्यति न जानीमस्तस्य प्रेम्नः ॥

१२—१. ज्ञायते-√ज्ञा-प्र० पु० एक० वर्तमान० प्रेरणार्थक० २. लोकानां प० बहु० पु० । ३. सुखापयति √सुख्-नाम धातु, प्र० पु० एक० वर्तमान० प्रेरणार्थक० ।

१३—१. दृश्यन्ते√दृश्-प्र० पु० बहु० वर्तमान० २. देशी शब्द सं० पश्य-देखो ।

१४—१. एकेन-तृ० एक० संख्या० २. अरण्यं प्र० एक० नपुं० । प्रतिभाति-प्रति-उपसर्ग,√भा-प्र० पु० एक० वर्तमान०, दिखाई पड़ती है ।

५. माने तस्मिन् क्रियते यो जानाति विरहवेदनादुःखं
अरसिकनिर्विशेषे किं क्रियते प्रस्तरे मानः ॥

६. उष्णोष्णा रणरणका दुष्प्रेक्ष्या दुःसहा दुरालोकाः
संवत्सरशतसदृशाः प्रियविरहे दुर्गमा दिवसा ॥

७. विषधरविषाग्निसंसर्ग दूषितो दहति चन्दनो दहतु
प्रिय विरहे महदाश्चर्यममृतमयो यच्छशी दहति ॥

८. किं करोति त्वरितत्वरितमलिकुलघन शब्दश्च सहकारः
पथिकानां विनाशाशङ्कितेव लक्ष्मीर्वसन्तस्य ॥

९. अपरेण तपति सूर्यः सूर्येण च तापिता तपति रेणुः
सूर्येणापरेण पुनर्द्वाभ्यामपि खलु तापिता पृथिवी ॥

१०. भग्नो ग्रीष्मप्रसरो मेघा गर्जन्ति लब्ध सन्मानः
मयूरैरप्युद्घुष्टं प्रावृड्राजश्चिरं जयतु ॥

११. शुष्यतीव पङ्कं न वहन्ति निर्झरा बर्हिणो न नृत्यन्ति
तनुकायन्ते नद्योऽस्तमिते प्रावृट्कालनरेन्द्रे ॥

१२. ज्ञायते न तु प्रियमप्रियमपि लोकानां तस्मिन्हेमन्ते
सुजनसमागम इवाग्निर्नित्यं नित्यं सुखापयति ॥

१३. अवधूतालक्षणधूसराद्दश्यन्तेपरुपरुक्षाः
पश्य शिशिरवातपरिहिता अलक्षणानि दीनपुरुषाइव ॥

१४. एकेन विना प्रियमानुपेण सद्भावस्नेहभृतेन
जनसङ्कुलापि पृथ्व्यहोऽरण्यमिव प्रतिभाति ॥

उद्धरण सं०—३

माहाराष्ट्री *रावणवहो*

१. पज्जत्त[1] सलिल धोए[2] दूरालोक्कन्तरिणम्मले गअणअले[3]
अच्चासण्णं[4] व ठिअं[5] विमुक्क परभाअपाअडं[6] ससिबिम्बम् ॥२५-१॥

२. जो लङ्घिज्जइ रइणा जोवि खविज्जइ[1] खआणलेण[2] वि बहुसो
कह सो उइअ परिहओ दुत्तारो त्ति पवआण[3] भण्णउ[4] उअही[5] ॥२५-३॥

३. इअ अत्थिरसामत्थे अण्णस्स वि परिअणम्मि[1] को आसङ्घो[2]
तत्थ वि णाम दहमुहो तस्स ठिओ[3] एस पडिहडो[4] मज्झ भुओ ॥५३-३॥

४. णवरि[1] सुमित्तातणओ आसङ्घन्तो गुरुस्स णिअअं च[2] बलम्
ण अ चिन्तेइ ण जम्पइ[3] उअहिं सदसाणणं तणं व गणेन्तो[4] ॥१५-४॥

५. रहुणाहस्स वि दिट्ठी वाणरवइणो[1] फुरन्त[2] विद्दुम अम्बम्
वअणं वअणाहि[3] चला कमलं कमलाहिण[4] भमरपन्ति व्व गआ[5] ॥१६-४

१—१. पर्याप्त परिउपसर्ग √आप्-विशेषण २. धौते-सप्तमी० एक० नपुं० ३. गगन-तले-सप्तमी० एक० नपुं० । ४. अत्यासन्नं-अति उपसर्ग आङ् √सद्-क्त-प्रत्यय वर्तमान० कृदन्त । ५. स्थितं-भूत० कृदन्त ६. पुरभागप्रकटं-वर्तमान० कृदन्त ।

२—१. क्षप्यते √क्षप्-प्र० पु० एक० वर्तमान० कर्मवाच्य-नाश करता है । २. क्षयानलेन-तृ० एक० नपुं० अग्नि के द्वारा विनाश । ३. प्लवगानां-प्लव-बन्दर, षष्ठी बहु० पुंलिंग, ४. √भण-कहना-उत्तम पु० एक० वर्तमान० । ५. उदधिः प्र० एक० पु० ।

३—१. परिजने-सप्तमी० एक० पु० । २. आसङ्गः-: आङ्-√सञ्ज-अच् प्रत्यय । ३. स्थित- भूत० कृदन्त । ४. प्रतिभटो-प्र० एक० पु० ।

४—१. अनंतरं-अव्यय, बाद में । ३. निजकं-क-प्रत्यय-स्वार्थे । ३. जल्पति √जल्प-प्रथम पु० एक० वर्तमान० । ४. गणयन् √गण्-गिनना- वर्तमान० कृदन्त ।

५—१. वानरपतेः-ष० बहु० पु० । २. स्फुरत क्त-प्रत्यय वर्तमानकालिक कृदन्त । ३. वदनात्-पंचमी० एक० नपुं० । ४. कमलात्-पंचमी एक० नपुं० । ५. गता-भूत० कृदन्त स्त्री० नपुं० ।

६. सुद्धसहावेण फुडं[1] फुरन्त पज्जत्तगुणमऊहेण[2] तुमे
चन्देण व णिअअमओ[3] कलुसो वि पसाहिओ[4] णिसाअरवंसो
॥ ६१-२ ॥

७. णिन्दइ मिअङ्ककिरणे खिज्जइ[1] कुसुमाउहे जुउच्छइ[2] रअणिं
झीणो वि णवर झिज्जइ[3] जीवेज्ज पिएत्ति मारुइं पुच्छन्तो[4] ॥५-५॥

८. धीरेत्ति संठविज्जइ[1] मुच्छिज्जइ[2] मअणपेलवेत्ति गणेन्तो
धरइपिअत्ति धरिज्जइ[3] विओअतणुएं त्ति आमुअइ[4] अङ्गाइं ॥८-५॥

९. सरमुह विसमंप्फलिआ णमन्त[1] धणुकोडिविप्फुरन्ततच्छाआ
णज्जइ[2] कड्ढिज्जन्ता[3] जीआसद्दगहिरं रसन्ति रविअरा ॥२६-५॥

१०. विसमेण पअइ[1] विसमं महीधर गुरुकेण समरसाहस गरुअं
दूरत्थेण वि भिण्णं सूलेण व सेउणा[2] दसाणणहिअअं ॥८६-८॥

६—१. स्फुटं । २. पर्याप्तगुणमयूखेन-तृतीया० एक० नपुं० । निजकमृगः-प्रथमा० एक० पु० । ४. प्रसाधितो-√साध्य-क्त-प्रत्यय भूत० कृदंत, वस में किया ।

७—१. खिद्यते-√खिद्-उपालंभ करना, प्रथम पु० एक० वर्तमान० । २. जुगुप्सते- √जुगुप्स्-घृणा करना, प्रथम पु० एक० वर्तमान० । ३. क्षीयते √क्षीङ्-प्र०पु० एक० वर्तमान० । ४. पृच्छन्-√पृच्छ वर्तमान० कृदंत ।

८—१. संस्थाप्यते- प्र० पु० एक० वर्तमान० कर्मवाच्य । २. मूर्छते -प्र० पु०-एक० वर्तमान० । ध्रियते-√ध्रि-प्र० पु० एक० वर्तमान० कर्तृवाच्य । ३. आमुंचति, √मुञ्च-छोड़ना प्र० पु० एक० वर्तमान० ।

९—१. नमत्-√नम्-वर्तमान० कृदंत २. ज्ञायते, √ज्ञा- प्रथम पु० एक० वर्तमान० कर्मवाच्य । ३. कृष्यमाणा√कृष् शानच् प्रत्यय, वर्तमानकालिक कृदंत, स्त्रीलिंग, कर्मवाच्य ।

१०—१. प्रकृति । २. सेतुना-तृ० एक० पु० । ३. दशाननहृदयम्-प्र० एक० नपुं० ।

२. किंपि[1] विकम्पिय गिम्हा अवरण्हुक्कण्ठसालस मउरा
हरिय वणाइ सुहया उद्देसा देन्ति उक्कण्ठं ॥३५५॥
ग्रीष्मवर्णन

३. वेवइ[1] सरणागय विसहरिन्द फणवलय कलिय चलणग्गो
कुविय[2] णरिन्द विसज्जिय[3] सुयाहिरुठोव्व सुरणाहो ॥४८३॥
जनमेजययज्ञवर्णन

४. इह सोहन्ति दरुम्मिल्लं[1] किसलयायम्बिरच्छि वत्ताइं[2]
पाविय पडिबोहाइव सिसिर पसुत्ताइं[3] रण्णाइं[4] ॥६००॥
वसन्तवर्णन

५. दीहर हेमन्त णिसा णिरन्तरुप्पण्ण चाववावारो[1]
जियलक्खो मा इर माहवम्मि[2] कुसुमाउहो होउ[3] ॥६०३॥

६. इय[1] मयणूसव[2] वियसन्त[3] वहल कीलारसो सुहावेइ[4]
णयरस्स पणइ भवणेसु णवविलासो पिया सत्थो ॥८३७॥
वैरिवनितावर्णन

२—१. किम् अपि। २. ददाति√दा-प्र० पु० एक० वर्तमान०।

३—१. वेपते√वेप्-काँपना-प्रथम पुरुष एक० वर्तमान०। २. कुपितो क्त-प्रत्यय वर्तमान० कृदन्त। ३. विसृष्टः-√सृज्-भूतकालिक कृदंत।

४—१. देशी शब्द सं० समुन्मीलिता:-धर्मी-विशेषण। २. पत्राणि-प्र० बहु० नपुं०। ३. प्रसुप्तानि-प्र० बहु० नपुं०। ४. अरण्यानि-प्र० बहु० नपुं०।

५—१. व्यापारो-प्र०एक० नपुं०। २. माधवे-सप्तमी०एक० पुं०। भवतु√भू-प्र० पु० एक विधि०।

६—१. इति-अव्यय। २. मदनोत्सव, प्राकृत में संस्कृत के सदृश सन्धिप्रयोग सर्वत्र नहीं मिलता। ३. प्रा० विअसन्त, विअसन्तमाण, सं. विकसत्-वर्तमानकालिक कृदंत। ४. सुखयति-√सुखाय- प्रथम पु० एक० वर्तमान०।

७. लहु विसय भाव पडिसिद्ध[1] पसर संभावणा पडिक्खलिया[2]
जस्स समत्तावि गुणा चिरमसमत्तव्व दीसन्ति[3] ।।८३८।।

८. परिवार दुज्जणाइं पहु पिसुणाइंपि होन्ति[1] गोहाइं
उहइ खलाइं तहच्चिय कमेण विसमाइं भण्णेत्था ।।८५७।।

धिक्संसारवर्णन

९. अहियाराणलकुण्डम्बमण्डलं ताव णं समक्कमइ[1]
तिमिरं कुलमिव ताराफण रयण[2] वहं विसहराण ।।१०७१।।

यशोवर्मन-महात्म्यवर्णन

१०. णहवट्ठं दूरण्णय[1] संज्झांपरिवेस परियरं सहइ[2]
अहिणव पडिवन्धायम्बविम्ब वियडावडच्छायं ।।१०६६।।

संध्यावर्णन

संस्कृत-छाया

१. निपतति परस्परापतनमुखरमणिमञ्जरी कणोत्करालो
गगनाद्विबुध विधूतः सुरपादपपल्लवोत्पीडः ।।

२. किमपि विकम्पितग्रीष्मा अपराह्णोत्कण्ठ सालस मयूरा
हरित वनराजि सुभगा उद्देशा ददत्युत्कण्ठाम् ।।

७—१. प्रतिसिद्ध प्रति-उपसर्ग √सिध्-क्त-प्रत्यय । २. प्रतिस्खलिता-प्र० एक० स्त्री० ।
३. दृश्यन्ते-√दृश्-प्रथम पु० बहु० वर्तमान० ।

८—१. भवन्ति-√भू-प्रथम पु० बहु० वर्तमान० ।

९—१. समाक्रामति-सम् उपसर्ग √क्रम-प्रथम पु० एक० वर्तमान० प्रेरणार्थक । २. रत्न-स्वरभक्ति और-य अपश्रुति-ध्वनि-परिवर्तन ।

१०—१. शोभते-प्रथम पु० एक० वर्तमान० ।

३. वेपते शरणागत विषधरेन्द्र फणावलय कलित चरणाग्रः
कुपितो नरेन्द्रो विसृष्टः सुचि अधिरूढ़ इव सुरनाथः ॥
४. इह शोभन्ते समुन्मीलिताः किसलया आताम्राण्यक्षिपत्राणि
प्राप्त प्रति बोधनेव शिशिर प्रसुप्तान्यरण्यानि ॥
५. दीर्घ हेमन्त निशा निरन्तरोत्पन्न चापव्यापारो
जितलक्ष्यः मा किल माधवे कुसुमायुधो भवतु ॥
६. इति मदनोत्सव विकसद्‌बहल क्रीडारसः सुखयति
तस्य प्रणयिभवनेषु नव विलासः प्रियासार्थः ॥
७. लघु विषय भाव प्रतिषिद्धप्रसर संभावना प्रतिस्खलिता
यस्य समाप्ता अपि गुणाश्चिरम इव दृश्यन्ते ॥
८. परिवार दुर्जनानि प्रभु पिशुनानि भवन्ति गृहाणि
उभय खलानि तथैव एतानि क्रमेण विगमाणि मन्येथाः ॥
९. अभिचागनल कुण्डताम्रमण्डलं तावत् एतं समाक्रामति
तिमिरं कुलम् इव ताराफणरत्नवहं विषधराणाम् ॥
१०. नभपृष्ठः दूरोन्नतसंध्यापरिवेषपरिकरं शोभते
अभिनव प्रतिबन्धाताम्रबिम्ब विकटावटच्छायम् ॥

उद्धरण सं० — ५

माहाराष्ट्री कंसवहो

१. णिम्म संगा णिअमंतपंथआ[1] जमादि जोअब्भसगुरुभट मसा
णिरं विच्छिणिणि[2] णवोहमा वि जं ण दिट्ठिए मज्झाणि दिट्ठिगोअरं
॥ १६ ॥ प्र० न०

---

१ — १. [illegible], प्र० [illegible] पृ० । २. [illegible]
[illegible] ।

२. जिअं जिअं मे णअणेहि[1] जेहि[2]दे सुजाअ सुंदेर गुणेक्कमंदिरं
पसण्ण पुण्णामअ मोह सच्छहं[3] मुहं पहासुज्जलमज्ज[4] पिज्जए[5]
॥ १७ ॥ प्र० स०

३. अहं एकुडं काहिइ[1] साहसं जइ क्खअं[2] सअं[3] जाहिइ[4] पाअडो जणो
समिद्धमग्गिं गसिउं[5] समुट्ठिओ ण डज्झए[6] किं सलहाण संचओ
॥ २६ ॥ प्र० स०

४. विसुद्ध सीले विमअच्छल क्कमो ण को वि अम्हे[1] छिविउ[2] पअब्भइ[3]
णहम्मि तारा णिअरे समुज्जले णिसंधआरो मइलेइ[4] किं भण
॥ ३० ॥ प्र० स०

५. भुवन्ति[1] गोवड्ढण सेल मेहला विलंबिउग्गज्जिअ विज्जुला घणा
इमाण णो माणविणोअणुम्मुहा जहिं[2] जइच्छागअ पीढमद्दआ
॥ ४६ ॥ प्र० स०

२—१. नयनाभ्यां-तृ० बहु० नपुं० । २ याभ्यां-तृ० बहु० नपुं० । ३ सदृशं, अव्यय । ४ मद्यं-द्वि० एक० नपुं० । ५ पीयते- √पा-प्रथम पु० एक० वर्तमान० आत्मनेपद, पीते हैं ।

३—१. करिष्यति- √कृ प्रथम० पु० एक० भविष्य० । २ क्षयं-द्वि० एक० नपुं० । ३ स्वयं । ४ यास्यति- √याप्य-प्रथम पु० एक० भविष्य० । ५ ग्रसितुं- √ग्रस्-तुमुन् प्रत्यय । ६ दह्यते- √दह्-प्रथम पु० एक० वर्तमान० आत्मनेपद, जलाता है ।

४—१. अस्मान्-अस्मद्-सर्वनाम प्रथमा० बहुवचन पु० । २ देशी शब्द सं० स्प्रष्टुं √स्पृश्-तुमुन् प्रत्यय । ३ प्रगल्भते-प्र-उपसर्ग √गल्भ-प्रथम पु० एक० वर्तमान० । ४ मालिनयति- प्रथम पु० एक० वर्तमान० ।

५—१. अभवन्- √भू प्रथम पु० बहु० भूतकाल । २ यस्मिन्-यद्-सर्वनाम स० एक० पु० ।

६. समन्थ लोअस्स पआस हेदुणो[1] तमप्पवंचस्स णिरासआरिणो
पडिप्पआणं[2] पडिवालएहसे सरोइणीओ व सहस्स रस्सिणो
॥ ५६ ॥ प्र० स०

७. विओअसोउम्हलगिम्हताविअंवइत्थिआसत्थअचादईउलं[1]
वअंवुधाराहि मुसीअलाहि सो सुहावए[2] माहवदूअ वारिओ
॥ ६० ॥ प्र० स०

८. सिणिद्ध[1] घणकुंतलप्फुरिअ मोर पिंछंचिए
सिरीअपइणो सिरे सुरकरंचलुम्मुचिआ
भमंत भमरावली कलअलेहिवाआलिआ
सुरद्दुकुसुमच्छडा पडइ[1] दाव देवालआ ॥ ५७ ॥ तृ० स०

९. णच्चंति फुडमच्छरा णहपहे सेच्छं मिहोमच्छरा
दिव्वा दुंदुहिणो धणंति[1] गहिरं सग्गाणिलुग्गारिआ
पुण्णा भिण्ण कडावडोब्भर दिसादाम्पट्ट-
थट्टुब्भडप्पफुज्जंत पमोअवंहिअ महाघोसेहि वीसंभरा ॥५८॥तृ०स०

१०. रासकीलासु वीला विअल वअवहू णेत्त कंदोट्ट माला
पालं वालं किदग्गो मउहसिअमुहासित्त वत्तेंदु विंबो
गंगा अंतो गडंतो सरस अरासिमो संचरंतो सअंतो
सव्वासु दिक्खु दिक्खिज्जइ[1] सअल अणाणंदणो णंदणो दे ॥४१॥च०स०

६—१. [illegible]तः—पंचमी० एक० नपुं० । २ प्रतिप्रयाणं-प्र० एक० नपुं० । ३रश्मेः—पंचमी० एक० स्त्री० ।

७—१. चातकीकुलं-प्र० एक० नपुं० । २ सुखायताम-सु-उपसर्ग √भा प्र० पु० एक० भूत० ।

८—१. स्निग्ध । २ अपतन्- √पत्-प्रथम पु० एक० भूतकाल ।

९—१. [illegible]-प्र० पु० एक० भूतकाल ।

१०—१. [illegible]- √[illegible]-प्रथम पुरुष एक० भूतकाल, [illegible]

११. आणाइओ धणुह जण्ण छलेण एसो कंसेण तेण धुवमत्तणिबहणत्थ
साहग्गसंघरिस संघडिओहिवण्हीसुण्णी करेइ¹तरसच्चिअ किं ण लक्खं
॥ ४५ ॥ च० स०

संस्कृत-छाया

१. निरस्तसङ्गा निगमान्तपान्था यमादि योगाभ्यसनोद्भट श्रमाः
चिरंविचिन्वन्ति तपोधना अपि यं स दिष्ट्या ममासि दृष्टिगोचरः ॥
२. जितं जितं मे नयनाभ्यां याभ्यां तव सुजात सौन्दर्य गुणैक मन्दिरम्
प्रसन्न पूर्णामृत मयूख सदृशं मुखं प्रहस्सोज्जवलमद्य पीयते ॥
३. अहं स्फुटं करिष्यति साहसं यदि त्वयं स्वयं यास्यति प्राकृतो जनः
समिद्धमग्नि ग्रसितुं समुत्थितो न दह्यते किं शलभानां संचयः ॥
४. विशुद्धशीलान् विमदच्छल क्रमो न कोऽप्यस्मान् स्प्रष्टुं प्रगल्भते
नभसि तारानिकरान्समुज्ज्वलान् निशान्धकारो मलिनयति किं भण॥
५. अभवन् गोवर्धन शैल मेखला विलम्बिततोद्गर्जित विद्युतो घनाः
आसां नो मान विनोदनोन्मुखा यस्मिन् यदृच्छागत पीठमर्दाः ॥
६. समस्त लोकस्य प्रकाश हेतोः तमः प्रपञ्चस्य निरासकारिणः
प्रति प्रयाणं प्रति पालयतास्य सरोजिन्य इव सहस्र रश्मेः ॥
७. वियोगशोकोष्मलग्रीष्मतापितं व्रजस्त्रीसार्थचातकीकुलम्
वचोऽम्बुधाराभिः सुशीतलाभिः स सुखयामास माधवदूतवारिदः ॥
८. स्निग्धघन कुन्तल स्फुरित मयूरपिञ्छाञ्चिते
श्रियः पत्युः शिरसि सुर कराञ्जलोन्मुक्ता
भ्रमद्भ्रमरावली कलकलैर्वाचालिता
सुरद्रु कुसुमच्छटा अपतत् तावद्चालमत् ॥५७॥

११—१. करोति- √कृ-प्रथम पु० एक० वर्तमान० ।

९. अनृत्यत् स्फुटमत्सरसोनभः पथे स्वेच्छं मिथोमत्सरा
दिव्या दुन्दुभयो अध्वनन् गंभीरं स्वर्गानिलोद्गूर्णाः
पूर्णाभिन्न कटावट निर्भरं दिग्गज
सार्थोद्भिट प्रस्फूर्जत्प्रमोद्बृंहितं महाघोषैर्विश्वंभरा ॥

१०. रासक्रीडासु क्रीडाविकलव्रजवधू नेत्रेन्दी वरमाला
प्रालम्बालंकृताङ्गो मृदुहसिदसुधासिक्तवक्त्रेन्दुबिम्बः
संगायन्नटन् सरसतरमयं संचरञ्छ्यानः
सर्वासु दिक्षु अदृश्यत सकल जनानन्दनो नन्दनस्ते ॥

११. आनायितो धनुर्यज्ञच्छलेनैव कंसेन तेन ध्रुवमात्मनिबर्हणार्थम्
शाखाग्रसंघर्ष संघटितोहि वह्निः शून्यी करोति तरसैवहि किं न वृक्षम्

उद्धरण सं०—६

माहाराष्ट्री *कर्पूरमंजरी*

१. ण्हाणेसु पन्नाइपणद्धिसु[1] बहुसो सग्गगङ्गाजलेहिं[2]
आ मूलं पूरिदाए तुहिणअरकलाकप्पसिप्पीअ रुद्दो
जोण्हामुत्ताहलिल्लं णअणमउलिणीहित्तणत्थेहिं[3] दोहिं[4]
अग्घं णिग्घं व देन्तो[5] जअदि गिरिसुआपाअपङ्केरुहाणं ॥४॥ प्र० स

२. पत्ता णक्कअरन्ता पाइअबन्धो वि होइ[1] सुउमारो
पुरुसमहिलाणं जेत्तिअमिहन्तरं तेत्तिअमिमाणं[2] ॥ ८ ॥ प्र० स

१—१. [illegible] बहु० नपुं० । २ [illegible]—तृ० बहु० नपुं० । ३ [illegible]—तृ० [illegible] [illegible] [illegible]—तृ० बहु० नपुं० [illegible] प्रयोग बहुवचन [illegible] [illegible] प्राकृत में [illegible] । ५. ददान √ दा-शतृ [illegible], [illegible] [illegible] ।

२—१. [illegible] पु० [illegible] [illegible] । २ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।

३. एदं वासर जीवपिण्डसरिसं चण्डंसुणो मण्डल
को जाणादि[1] कहिं पि सम्पदि गदं पत्तम्मि कालन्तरे
जादा किं च इअं पि दीहविरहा सोएण[2] णाहे गदे
मुच्छामुद्दिदलोअणे व्व णलिणी मीलान्तापङ्केरुहा ॥३५॥ प्र० स०

४. णीसासा हारजट्ठ सरिसपसरणा चन्दणंफोडकारी
चण्डो देहस्स दाहो सुमरण सरिसीहासस्सोहा मुहम्मि[1]
अङ्गाणं[2] पण्डुभाओ दिवहससि कला कोमलो किं च तीए[3]
णिच्चं वाहप्पवाहातुहसुहअ किदे होन्ति[4] कुल्लाहिं तुल्ला॥१०॥द्वि०स०

५. परं जोण्हा उण्हा गरलसरिसो चन्दणरसो
खदक्खारो हारो रअणिपवणा देहतवणा
मुणाली वाणाली जलइ[1] अ जलदा तणुलदा
वरिट्ठा जं दिट्ठा कमलवअणा सा सुणअणा ॥११॥ द्वि० स०

६. उच्चेहिंगोउरेहिं[1] धवलधअवडाडम्बरिल्लावलीहिं
घण्टाहिंविन्दुरिल्ला सुरतरुणिविमाणाणुरूअं लहन्ती[2]
पाआरं लङ्घअन्ती[3] कुणइ[4] रअवसा उण्णमन्ती णमन्ती[5]
एन्ति जन्ति अ दोला जणमणहरणं कट्ठणुकट्ठणेहिं ॥२१॥ द्वि०स०

३—१. जानाति- √ज्ञा-प्र० पु० एक० वर्तमान०-(अघोष-त > सघोष द का प्रयोग शौरसेनी की मुख्य विशेषता है) शोकेन तृ० एक० नपुं० ।

४—१. मुखे-सप्तमी० एक० नपुं० । २ अङ्गानां-प० वहु० नपुं० । ३ तस्याः- प० एक० स्त्री० तद्-सर्वनाम । ४ भवन्ति- प्र० पु० वहु० वर्तमान० ।

५—१. ज्वलति-√ज्वल् प्र० पु० एक० वर्तमान०-जलता है ।

६—१. गोपुरेभिः-तृतीया० वहु० नपुं० । २ लभन्ती√लभ्-वर्तमान० कृदन्त स्त्री० । ३ लङ्घयन्ती-शतृ प्रत्यय, वर्तमान० कृदन्त-स्त्री० । ४ करोति- √कृ-प्र० पु० एक० वर्तमान०, प्राचीन फारसी के सदृश कर-> कुण-का प्रयोग माहाराष्ट्री प्राकृत की भी विशेषता है । ५ नमन्ती- √नम्-शतृ प्रत्यय, वर्तमान० कृदन्त० स्त्री० ।

७. रणन्त[1] मणिणेउरं[2] झणझणन्त हारच्छडं
कणक्कणिदकिङ्किणी मुहर मेहलाडम्बरं
विलोल वलआवली जणिदमञ्जुसिञ्जारवं
ण कस्स मणमोहणं ससिमुहीअ[3] हिन्दोलणं ॥३२॥ द्वि० स०

८. कीए[1] वि संघडदि[2] कस्स वि पेम्मगण्ठी
एमेअ[3] इत्थ ण हु कारणमत्थि रूअं
चङ्गत्तणं पुणु मंहिज्जदि यं तहिं पि
ता दिज्जए[4] पिसुणलोअमुहेसु मुद्दा ॥६॥ तृ० स०

९. सत्थो णन्ददु[1] सज्जणाणं[2] सअलो वग्गो खलाणं पुणो
णिच्च खिज्जदु[3] होदु[4] वह्मणजणो रुचासिहो सव्वदा
मेहो मुञ्चदु संचिदं वि सलिलं सस्सोचिअं भूअले
लोओ लोहपरम्मुहोणुदिअहं धम्मे मई भोदु अ ॥२२॥ च० स०

संस्कृत-छाया

१. ईर्ष्यारोषप्रसादप्रणतिषु बहुशःस्वर्गगङ्गाजलै
रा मूलं पूरितयातुहिनकरकलारुप्यशुक्त्यारुद्रः
ज्योतस्नामुक्ताफलाढ्यं नतमौलिनिहिताभ्यामग्रहस्ताभ्यां
द्वाभ्यामर्घ्यं शीघ्रमिव ददज्जयति गिरिसुतापादपङ्केरुहयोः ॥

७—१ रणत-शतृ, वर्तमान० कृदन्त नपुं० । २ मणिनूपुरं-प्र० एक० नपुं० ।
३ शशिमुख्या-तृ० एक० पुलिंग ।

८—१ कयाचित् । २ संघटते-प्र० पु० एक० वर्तमान०, । ३ एवमेव
४ दीयते-√दा-प्र० पु० एक० वर्तमान० कर्मवाच्य ।

९—१ नन्दतु-प्र० पु० एक० वर्तमान० विधि० ।२ सज्जनानां-प्र० बहु० पु० ।
३ खिद्यतु-प्र० पु० एक० वर्तमान० विधि० । ४ भवतु-प्र० पु० एक०
वर्तमान० विधि० ।५ मुञ्चतु- √मुञ्च-प्र० पु० एक० वर्तमान० विधि० ।

. परुषाः संस्कृतगुम्फाः प्राकृतगुम्फोऽपि भवति सुकुमारः
पुरुषमहिलानां यावदिहान्तरं तावत् अमुयोः ॥
३. एतद्वासर जीवपिण्डसदृशं चण्डांशोर्मण्डलं
को जानाति क्वापि संप्रति गतमेतस्मिन् कालान्तरे
जाता किं चेयमपि दीर्घविरहा शोकेन नाथे गते
मूर्च्छा मुद्रितलोचनैव नलिनी मीलत्पङ्केरुहा ॥
४. निःश्वासा हारयष्टि सदृश प्रसरणाश्चन्दनः स्फोटकारी
चन्द्रो देहस्य दाहः स्मरणसदृशी हासशोभा मुखे
अङ्गानां पाण्डुभावो दिवसशशिकलाकोमलः किं च तस्या
वाष्पप्रवाहास्तव सुभगकृते भवन्ति कुल्याभिस्तुल्याः ॥
५. परं ज्योतस्ना उष्णा गरलसदृशश्चन्दनरसः
क्षत क्षारो हारो रजनिपवना देहतपनाः
मृणाली वाणाली ज्वलति च जलार्द्रातनुलता
वरिष्ठा यद्दृष्टा कमलवदना सा सुनयना ॥
६. उच्चेषुगोपुरेषुधवलध्वजपटाडम्बर वहलावलीषु
घण्टाभिर्विद्राणसुरतरुणिविमानानुरूपं वहन्ती
प्राकारं लङ्घयन्ती करोति रथवशादुन्नमन्तीनमन्ती
आयान्ती यान्ती च दोलाजन मनोहरण कर्पणोत्कर्पणैः ।
७. रणन्मणिनूपुरंझणझणायमानहारच्छटं
कलक्वणितकिङ्किणीमुखरमेखलाडम्बरम्
विलोलवलयावलीजनितमञ्जुशिञ्जारवं
न कस्य मनोमोहनं शशिमुख्याहिन्दोलनम् ॥
८. कयाचित्संघटते कस्यापि प्रेमग्रन्थि-
रेवमेव तत्र न खलु कारणमस्ति रूपम्
चङ्गत्वं पुनर्मृग्यते यत्त्रापि
तद्दृश्यते पिशुनलोकमुखेषुमुद्रा ॥

६. सार्थो नन्दतु सज्जनानां सकलोवर्गः खलानां पुन-
र्नित्यं खिद्यतु भवतु ब्राह्मणजनः सत्याशीः सर्वदा
मेघो मुञ्चतु संचितमपि सलिलं सस्योचित भूतले
लोकोऽलोभपराङ्मुखोऽनुदिवसं धर्मे मतिर्भवतु च ॥

उद्धरण सं०—७

जैनमाहाराष्ट्री

समराइच्चकहा (वीओ भवो)

अत्थि इहेव जम्बुद्दीवे दीवे अवर विदेहे खेत्ते अपरिमियगुण-निहाणं तियसपुरवराणुगारि उज्जाणारामभूसियं समत्थमेइणितिलय-भूयं जयउरं नामनयरं[1] ति। जत्थ सुरुवो उज्जलनेवत्थो कलावियक्खणो लज्जालुओ महिलायणो जत्थ य परदार परिभोयंमि[2] भूओ, परदव्वा-वहरणंमि संकुचियहत्थो परोपयारकरणेक्कतल्लिच्छो पुरिसवग्गो। तत्थ य[3] निसियनिक्कड्ढियासिनिद्दलियदरियरिउहत्थिमत्थउच्छ-लियवहल रुहिरारत्तमुत्ताहलकुसुमपयरच्चियसमरभूमिभाओ राया नामेण पुरिसदत्तो त्ति। देवी य से[4] सयलन्तेउरपहाणा सिरिकन्ता नाम। सो इमाए[5] सह निरुवमे भोए भुञ्जिसु[6]। इओ य सो चन्दाण-णविमाणाहिवई देवो अहाउयं[7] पालिऊण तओ चुओ सिरिकन्ताए गब्भे उववन्नो[8] त्ति। दिट्ठो य णाए सुविणयंमि तीए चेव रयणीए निद्धूमसिहिसिहाजाल सरिसकेसरसंटाभार भासुरो विमल फलिह-मणिसिला निहसहंसहारधवलो आपिङ्गलसुपसन्तलोयणो मियङ्कले-

---

१ नगरं-प्र० एक० नपुं०-ग> -अ (माहा०) -य (अमा०)। २ भोगे-स० एक० नपुं०। ३ च-अव्यय। ४ यस्य-प० एक० पु०। ५ अनया-तृ० एक० स्त्री०, इदं-सर्वनाम ! ६ √ भुञ्ज-प्र० पु० एक० भूत०। ७ यथाभूतं-भूत० कृदंत। ८ उत्पन्नः -भूत० कृदन्त।

हासरिसनिग्गयदाढो पिहुलमणहरवच्छत्थलो अइतणुयमज्झभाओ सुवट्टियकढिणकडियडो आवलियदीहलङ्गूलो सुपइट्ठिओरुसंठाणो, किं बहुणा, सव्वङ्गसुन्दराहिरामो सीहकिसोरगो वयणेणमुयरं पविसमाणो[10] त्ति। पासिऊण य तं सुहविउद्धाए जहाविहिणा सिट्ठो दइयस्स तेण भणियं। अणेयसामन्त पणिवइय चलण जुयलो महाराय सद्दस्सं निवासट्ठाण पुत्तो ते भविस्सइ[11]। तो सा तं पडिसुणेऊणं जहासुहं चिट्ठइ[12]। पत्ते य उचियकाले महा पुरिसगब्भाणु भावेण जाओ[13] से दोहलो[14]। जहा देमि सव्वसत्ताणम[15]भयदाणं, दीणा णाहकिवणाण च इस्सरियं[16] संपयं, जइणाणं[17] च उवट्ठम्भदाणं, सव्वाययणाणं च करेमि पूयं[18]ति। निवेइओ य इमो[19] तीए भत्तारस्स अब्भहिय[20] जाय हरिसेणं सयाडिओ[21] तेण। तस्स संपायणेण जाओ महापमोओ जणवयाण[22]। अवि च

सव्वच्चिय धन्नाणं होइ अवत्था परोवयाराए
वालससिस्स व उदओ जणस्स भुवणं पयासेइ ॥११८॥

तओ जहासुहेण धम्मनिरयाए परोवयार संपायणेणं सुलद्धजम्माए अइ-क्कन्ता[23]नव मासा अद्धट्ठमराइन्दिया[24]। तओ पसत्थे तिहिकरणमुहुत्तजोए सुकुमालपाणिपायं सयलजणमनोरहेहिं देवी सिरिकन्ता दारयं पसूय त्ति।

---

१० प्रविश्यमाण:-शानच्प्रत्यय, भूत० कृदन्त। ११ भविष्यति-प्र० पु० एक० भविष्य०। १२ तिष्ठति-प्र० पु० एक० वर्तमान० तिष्ठ> चिटठ (मा०, अमा०)। १३ जात:-क्त-प्रत्यय, भूत०-कृदन्त। १४ दोहद:-गर्भिणी की इच्छा। १५ सर्वसत्त्वानां-ष० बहु० पु०, सब प्राणियों को। १६ ऐश्वर्य-द्वि० एक० नपुं०। १७ यतिजनानां-ष० बहु० पु०। १८ पूजं-द्वि० एक० नपुं०। १९ इमं-प्र० एक० नपुं० इदम्-सर्वनाम। २० अभ्यधिक-विशेषण। २१ संपादित:-क्त-प्रत्यय, भूत० कृदन्त कर्मवाच्य। २२ जनपदानां-ष० बहु० नपुं०। २३ अतिक्रान्त:-क्त-प्रत्यय-भूतकाल० कृदन्त, बीत गये। २४ अर्धाष्टरात्रिदिवसा:-प्र० बहु० नपुं०।

निवेइओ रन्नो सुहंकरियाभिहाणाए दासियाए पुत्तजम्मो परितुट्ठो राया, दिन्नं च तीए परिओसियं। काराविय[1] च बन्धणमोयणाइयं करणिज्जं पवत्तो य नयरे महाणन्दो नयरिमग्गा, पसमाविओ रओ[2] कुङ्कमजलेण, विप्पइण्णाइं रुणटन्तमहुयरसणाहाइं विचित्तकुसुमाइं[3], कयाओ हट्टभवणसोहाओ, पहभवणेसु समाहयाइं, सहरिसं च नच्चियं रायजणनागरेहिं ति। एवं च पइदिण[4] महामहन्तमाणन्दसोक्खमणुहवन्ताणं अइक्कन्तो पढममासो। पइट्ठावियं च से नामं बालस्स सुविणयदंसणनिमित्तेणं सीहोत्ति। सो य विसिट्ठं पुण्णफलमणुहवन्तो अभग्गमाणपसरं पणईण मणोरहेहिं पयाणपुण्णेण।

जोव्वणमणुवमसोहं कलाकलावपरिवड्ढियच्छायं
जणमणनयणा चन्दो व्व कमेण संपत्तो ॥११६॥

संस्कृत-छाया—

अस्ति इहैव जम्बूद्वीपे द्वीपे अपरविदेहे क्षेत्रे अपरिमितगुणनिधानं त्रिदशपुरवरानुकारि उद्यानारामभूषितं समस्त मेदनीतिलकभूतं जयपुरं नाम नगरं इति। यत्र स्वरूपः उज्जवलनेपथ्यः कलाविचक्षणः लज्जालुः महिलागणः, यत्र च परदारपरिभोगे क्लीवः, परछिद्रावलोके अन्धः, परापवादभाषणे मूकः, परद्रव्यापहरणे संकुचितहस्तः, परोपकारकरणपरः तल्लक्ष्यः पुरुषवर्गः। तत्र च निशितनिष्कृष्टासिनिर्दलितद्रुत रिपुहस्तिमस्तकोत्सृतवहलरुधिरारक्तमुक्ताफलकुसुमप्रकरार्चितसमरभूमिभागः राजा नामे पुरुषदत्तः इति। देवी च यस्य सकलान्तःपुरप्रधाना श्रीकान्ता नाम। सः अनया सहनिरुपमं भोगं अभुनक। इतः च सः चन्द्राननविमानाधिपतिः देवः यथाभूतं प्राप्त्वा ततः चुतः श्रीकान्तायाः गर्भे उत्पन्नः

१ कारितः—क्त प्रत्यय-भूत० कृदन्त, प्रेरणा०। २ रजः-प्र० एक० नपुं०। ३ कुसुमानि-प्र० बहु० नपुं०। ४ प्रतिदिवसं द्वि० प्र० एक०।

इति । दृष्टः च अनया स्वप्ने तस्याः चैव रजन्यां निर्धूमेशिखिशिखाजाल सदृशकेसरसटाभारभासुरः विमलस्फटिकमणिशिलानिकष हंसधारधवलः आपिंगल सुप्रसन्नलोचनः मृगाङ्कलेखासदृशनिर्गतदंष्ट्रः पृथुलमनोहरवक्षस्थलः अतितनुमध्यभागः सुवर्तुल कठिन कटितटः आवलितदीर्घलाङ्गलः सुप्रतिष्ठितउरुसंस्थानः, किं बहुना, सर्वाङ्गसुन्दराभिरामः सिंहकिशोरकः वदनेन उदरं प्रविशमाणः इति । दृष्ट्वा च तं सुखंविविद्धया यथाविधिना शिष्टः दयितस्य । तेन भणितं । अनेकसामन्त प्रणिपतितं चरणजुगल. महाराय शब्दस्य निवासस्थानं पुत्रः ते भविष्यति । ततः एषां तत प्रतिश्रुत्य यथासुखं तिष्ठति । प्राप्ते च उचितकाले महापुरुष गर्भानुभावेन जातः अस्याः दोहदः । यथा दास्यामि सर्वसत्त्वानां अभयदानं दीनानाथकृपणानां च करोमि पूजं इति । निवेदितं च इमं तया भर्तारस्य । अभ्यधिकजातहर्षेण संपादितः तेन । तस्य संपादनेन जातः महाप्रमोदः जनपदानां । अपि च—

सर्वं नित्य धनानां भवति अवस्था परोपकराय
बालशशेः इव उदकः जनस्य भुवनं प्रकाशयति ॥ ११८ ॥

ततः यथासुखेन धर्मनिर्यातः परोपकारसंपादनेन सुलब्धजन्मया अतिक्रान्ता नवमासा अर्धाष्टिरात्रिदिवसाः ततः प्रशस्ते तिथिकारणमुहूर्त योगे सुकुमारपाणिपादं सकलजनमनोहरं देवी श्रीकान्ता दारकं प्रसूतवती इति । निवेदितः राजा शुभंकराभिधानया दास्या पुत्रजन्मः, परितुष्टः राजा, दत्तं च तस्यै पारितोषिकं । कारितं च बन्धनमोक्षणादिकं कारयितुम् प्रवृत्तः च नगरे महानन्दः, शोभायिताः नगरमार्गाः, प्रशमायितः रजः कुङ्कुमजलेन, विप्रकीर्णानि इवन् मधुकरसनाथानि विचित्र कुसुमानि, कारितः हाटभवनशोभाः, पथभवनेषु समाहतानि मंगलतूर्याणि, सहर्षं च नर्तितं राजजननागरैः इति । एवं च प्रतिदिवसं महामहान्तमानन्दसुखमनुभवन्तानां अतिक्रान्तः प्रथममासः । प्रतिष्ठापितं च तस्य नाम बालस्य स्वप्न दर्शननिमित्तेन सह इति । सः च विशिष्टं पुण्यफलमनुभवन् अभाग्यमानप्रसरं प्रणयिणां मनोरथैः प्रदानपुन्येन—

यौवनमनुपमशोभं कलाकलापपरिवर्धित छायं
जनमननयनानन्दं चन्द्र इव क्रमेण संप्राप्तः ॥ ११६ ॥

उद्धरण सं०—८

जैन-महाराष्ट्री कक्कुक-शिलालेख

१—ओं सग्गायवग्गमग्गं[1] पढमं सयलाण[2] कारणं देवं
णीसेस दुरिअ[3]दलणं परम गुरु णमह[4] जिणनाहं ॥१॥

२—रहुतिलओ पडिहारो[1] आसी[2] सिरि[3] लक्खणोत्ति रामस्स
तेण[4] पडिहार वंसो समुण्णइं[5] एत्थ सम्पत्तो[6] ॥२॥

३—विप्पो हरिअन्दो भज्जा[1] असि त्ति खत्तिआ भद्दा
ताण[2] सुओ उप्पणो[3] वीरो सिरि रज्जिलो एत्थ ॥३॥

४—अस्स वि णरहड[1] णामो जाओ[2] सिरि णाहडो[3] त्ति एअस्स
अस्स वि तणओ[4] ताओ[5] तस्स वि जसवद्धणो[6] जाओ ॥४॥

५—अस्स वि चन्दुअ[1] णामो उप्पण्णो सिल्लुओ[2] वि एअस्स
झोटो[3] भिल्लुअस्स तणुओ अस्स वि सिरि भिल्लुओ[4] चाई ॥५॥

---

१. १ स्वर्गापवर्गमार्गम्-द्वि० एक० नपुं० । २ सकलानाम्-प० वहु० नपुं० । ३ निःशेषदुरित-संपूर्ण पाप । ४ नमह-√ नमस्-प्रणाम करना-मध्यम पु० वहु० ।

२. १ प्रतिहारः-द्वारपाल । २ आसीत्- √ अस्-प्र० पु० एक० भूत० । ३ श्री-स्वरभक्ति का उदाहरण । ४ तेन-तृ० एक० पु० । ५ समुन्नतिम्-द्वि० एक० नपुं० । ६ सम्प्राप्तः—क्त प्रत्यय-वर्त्तमान० कृदन्त ।

३. १ भार्या । २ तान-द्वि० वहु० पु० । ३ उत्पन्नः ।

४. १ नरभट्ट । २ जातः, क्त-प्रत्यय भूत० कृदन्त । ३ नागभट्ट । ४ तनयः प० एक० पु० । ५ ताटः । ६ यशोवर्धनः—प्र० एक० पु० ।

५. १ चन्दुकः । २ शिल्लुकः । ३ झोटः । ४ भिल्लुकः ।

६—सिरि भिल्लुअस्स तणुओ सिरिकक्को गुरुगुणेहि[1] गारविओ[2]
अस्स वि कक्कुअ नामो दुल्लहदेवीए[3] उप्पणो ॥६॥

७—ईसिविआसं[1] हसिअं, महुरं भजिअं, पलोइअ[2] सोम्मं
णमयं जस्स ण दीणं रो (सो) थेओ[3] थिरा[4] मेत्ती ॥७॥

८—णो जम्पिअं, ण हसिअं, ण कयं,[1] ण पलोइअं,ण संभरिअं[2]
ण थिअं, ण परिब्भमिअं[3] जेण जणे[4] कज्ज परिहीणं[5] ॥८॥

९—सुत्था[1] दुत्थ[2] वि पया[3] अहमा तह उत्तिमा वि सोक्खेण[5]
जणणि[6] व्व[7]जेण धारिआ णिच्चं[8]णिय[9]मण्डले सव्वा[10]॥९॥

१०—उअरोह[1] राअमच्छर लोहेहि[2] इ[3] णायवज्जिअं[4] जेण
ण कओ[5] दोण्ह विसेसो ववहारे[6] कवि मणयं[7] पि ॥१०॥

---

६. १—गुरुगुणैः-तृ० बहु० नपुं०-उदात्त गुणों से युक्त। ३ गौरवितः-अत्यन्त प्रतिष्ठित ३। दुर्लभदेवीयाः, तृ० एक० स्त्री०।

७. १—ईषद् विलासम्-अधविकसित। २ प्रलोकित-चितवन। ३ स्तोकः-अल्प। ४ स्थिरः-स्थायी।

८. १—कृतम्-भूतकालिक कृदन्त। २ संस्मृतम्√ स्मृ-स्मरण रखना, क्त-प्रत्यय-भूत० कृदन्त। ३ परिभ्रमितम्-क्त-प्रत्यय-भूत० कृदन्त, पर्यटन किया। ४ जनान्-द्वि० बहु० पु०। ५ कार्य-परिहानम्-द्वि० एक० नपुं०।

९. १—स्वस्थाः-प्र० बहु० पु० विशेषण, धनी। २ दुस्थाः-निर्धन। ३ प्रजा। ४ अधमा। ५ सौख्येन-तृ०एक० नपुं०। ६ जननी। ७ इव। ८ नित्यं। ९ निजमण्डले-स०एक०नपुं०, अपने राज्य में। १० सर्वान्-द्वि०बहु० नपुं०।

१०. १—उपरोध (अवरोध) द्वेष। २ लोभैः-तृ० बहु० नपुं०। ३ इति। ४ न्याय-वर्जितं। ५ कृतः, क्त-प्रत्यय-भूत० कृदन्त। ६ व्यवहारे-स० एक० नपुं०। ७ मनागं-अल्प।

यौवनमनुपमशोभं कलाकलापपरिवर्धित छायं
जनमननयनानन्दं चन्द्र इव क्रमेण संप्राप्तः ॥ ११६ ॥

उद्धरण सं०—८

जैन-महाराष्ट्री कक्कुक-*शिलालेख*

१—ओं सग्गायवग्गमग्गं पढमं सयलाण[2] कारणं देवं
णीसेस दुरिअ[3]दलणं परम गुरु णमह[4] जिणनाहं ॥१॥

२—रहुतिलओ पडिहारो[1]आसी[2]सिरि[3] लक्खणोत्ति रामस्स
तेण[4] पडिहार वंसो समुण्णइं[5] एत्थ सम्पत्तो[6] ॥२॥

३—विप्पो हरिअन्दो भज्जा[1] आसि त्ति खत्तिआ भद्दा
ताण[2] सुओ उप्पणो[3] वीरो सिरि रज्जिलो एत्थ ॥३॥

४—अस्स वि णरहड[1] णामो जाओ[2] सिरि णाहडो[3] त्ति एअस्स
अस्स वि तणाओ[4] ताओ[5] तस्स वि जसवद्धणो[6] जाओ ॥४॥

५—अस्स वि चन्दुअ[1]णामो उप्पण्णो सिल्लुओ[2]वि एअस्स
झोटो[3]भिल्लुअस्स तणुओ अस्स वि सिरि भिल्लुओ[4]चाई ॥५॥

---

१. १ स्वर्गापवर्गमार्गम्-द्वि० एक० नपुं० । २ सकलानाम्-प० बहु० नपुं० । ३ निःशेषदुरित-संपूर्ण पाप । ४ नमह-√ नमस्-प्रणाम करना-मध्यम पु० बहु० ।

२. १ प्रतिहारः-द्वारपाल । २ आसीत्-√ अस्-प्र० पु० एक० भूत० । ३ श्री-स्वरभक्ति का उदाहरण । ४ तेन-तृ० एक० पु० । ५ समुन्नतिम्-द्वि० एक० नपुं० । ६ सम्प्राप्तः—क्त प्रत्यय-वर्त्तमान० कृदन्त ।

३. १ भार्या । २ तान-द्वि० बहु० पु० । ३ उत्पन्नः ।

४. १ नरभट्ट । २ जातः, क्त-प्रत्यय भूत० कृदन्त । ३ नागभट्ट । ४ तनयः प० एक० पु० । ५ ताटः । ६ यशोवर्धनः—प्र० एक० पु० ।

५. १ चन्दुकः । २ शिल्लुकः । ३ झोटः । ४ भिल्लुकः ।

६—सिरि भिल्लुअस्स तणुओ सिरिकक्को गुरुगुणेहि[1] गारविओ[2]
अस्स वि कक्कुअ नामो दुल्लहदेवीए[3] उप्पणो ॥६॥

७—ईसिविआसं[1] हसिअं, महुरं भजिअं, पलोइअ[2] सोम्मं
णमयं जस्स ण दीणं रो (सो) थेओ[3] थिरा[4] मेत्ती ॥७॥

८—णो जम्पिअं, ण हसिअं, ण कयं,[1] ण पलोइअं,ण संभरिअं[2]
ण थिअं, ण परिब्भमिअं[3] जेण जणे[4] कज्ज परिहीणं[5] ॥८॥

६—सुत्था[1] दुत्थ[2] वि पया[3] अहमा तह उत्तिमा वि सौक्खेण[5]
जणणि[6] व्व[7]जेण धारिआ णिच्चं[8]णिय[9]मण्डले सव्वा[10]॥६॥

१०—उअरोह[1] राअमच्छर लोहेहि[2] इ[3] णायवज्जिअं[4] जेण
ण कओ[5] दोण्ह विसेसो ववहारे[6] कवि मणयं[7] पि ॥१०॥

---

६. १—गुरुगुणैः-तृ० बहु० नपुं०-उदात्त गुणों से युक्त। ३ गौरवितः-अत्यन्त प्रतिष्ठित ३। दुर्लभदेवीयाः, तृ० एक० स्त्री०।

७. १—ईषद् विलासम्-अर्धविकसित। २ प्रलोकित-चितवन। ३ स्तोकः-अल्प। ४ स्थिरः-स्थायी।

८. १—कृतम्-भूतकालिक कृदन्त। २ संस्मृतम्√ स्मृ-स्मरण रखना, क्त-प्रत्यय-भूत० कृदन्त। ३ परिभ्रमितम्-क्त-प्रत्यय-भूत० कृदन्त, पर्यटन किया। ४ जनान्-द्वि० बहु० पु०। ५ कार्य-परिहानम्-द्वि० एक० नपुं०।

६. १—स्वस्थाः-प्र० बहु० पु० विशेषण, धनी। २ दुस्थाः-निर्धन। ३ प्रजा। ४ अधमा। ५ सौख्येन-तृ०एक० नपुं०। ६ जननी। ७ इव। ८ नित्यं। ६ निजमण्डले-स०एक०नपुं०, अपने राज्य में। १० सर्वान्-द्वि०बहु० नपुं०।

१०. १—उपरोध (अवरोध) द्वेष। २ लोभैः-तृ० बहु० नपुं०। ३ इति। ४ न्याय-वर्जितं। ५ कृतः, क्त-प्रत्यय-भूत० कृदन्त। ६ व्यवहारे-स० एक० नपुं०। ७ मनागं-अल्प।

११—दिअवर[1] दिण्णाणुज्जं[2] जेण जण रञ्जिऊण[3] सयलं पि
णिमच्छरेण[4] जणिअं दुट्ठाण[5] वि दण्डणिट्ठवण[6] ॥११॥

१२ - धण रिद्ध समिद्धाण वि पउराणं निअकरस्स अब्भहिअं
लक्ख सयं च सरिसन्तणं च तह जेण दिट्ठाइं ॥१२॥

१३—णव जोव्वण रूअपसाहिएण[1] सिंगार-गुण गरुअकेण[2]
जणवय णिज्जमलज्ज[3] जेण जणे णेय[4] संचरिअं[5] ॥१३॥

१४—वालाण[1] गुरु तरुणाण[2] सही तह गयवयाण[3] तणओ व्व
इय[4] सुचरिएहि[5] णिच्चं जेण जणो पालिओ सव्वो ॥१४॥

१५—जेण णमन्तेण सया सम्माणं गुणथुई कुणन्तेण
जंपन्तेण य ललिअं दिण्णं पणईण धण-निवहं ॥१५॥

---

११. १—द्विजवर। २ दत्तानुज्ञां-द्वि० एक स्त्री०, दी हुई सम्मति को। ३ रञ्जित्वाक्त्वा प्रत्यय। ४ निःमत्सरेन-तृ० एक नपुं०। ५ दुष्टानाम्-प० वहु०पु०। ६ निःस्थापनमो-द्वि०एक० नपुं०-नियन्त्रण को।

१२. १—ऋद्धसमृद्धाणां-प०वहु० नपुं०। २ पौराणां-प० वहु०पु०। ३ निजकरस्य-प० एक० पु०। ४ अभ्यधिक। ५ लक्षम्। ६ शतम्। ७ सदृशत्वम्-इसी तरह। ८ दृष्टानि-प्र० वहु० नपुं०।

१३. १—रूपप्रसाधितेन-तृ० एक० नपुं०-रूप से अलंकृत। २ गुरुकेन-तृ० एक० नपुं०। ३ निन्द्यमलज्जां-द्वि० एक० नपुं०। ४ नैव। ५ संचरितं क्त-प्रत्यय भूत० कृदन्त।

१४. १—वालकानाम्-प० वहु० पु०। २ तरुणानाम्-प० वहु० पु०। ३ गतवयानाम्-प० वहु० पु० बूढ़ों का। ४ इति। ५ सुचरितैः-तृ० वहु०-नपुं० सदाचार से।

१५. १—सदा। २। गुणस्तुतिं द्वि० एक० नपुं०। ३ प्रणयिणं-द्वि० एक० पु०। ४ धननिवहं-द्वि० एक० न०, पुं समूह को।

१६—मरुमाड - वल्ल - तमणी - परिअंका - अज्ज - गुज्जरत्तासु
जणिओ जेन जणाणं सच्चरिअगुणेहिं अणुराओ ॥१६॥

१७—गहिऊण[1] गोहणाइं[2] गिरिम्मि[3] जालाउ (ला) ओ पल्लीओ[4]
जणिआओ जेण विसमे वडणाणय-मण्डले पयडं ॥ १७ ॥

१८—णीलुप्पल[1]दल-गन्धा रम्मा मायन्द-महुअ विन्देहिं[2]
वरइच्छु पण्णच्छण्णा एसा भूमी कया जेण ॥ १८ ॥

१९—वरिस-सएसु अणवसुं अट्ठारसअग्गलेसु चेत्तम्मि
णक्खत्ते विहुहत्थे बुहवारे धवल बीआए ॥ १९ ॥

२०—सिरिकक्कुएण हट्टं महाजणं विप्प पयइ वणि बहुलं
रोहिन्सकूअ गामे णिवेसि अं[1] कित्ति-विद्धीए[2] ॥ २० ॥

२१—मड्डोअरम्मि एक्को, बीओ रोहिन्सकूअ-गामम्मि
जेण जसस्स व पुंजा एए[1] त्थम्भा समुत्थविआ ॥ २१ ॥

२२—तेण सिरिकक्कुएणं जिणस्स देवस्स दुरिअ-णिद्दलणं
कारविअं[1] अचलमिमं भवणं भत्तीए सुहंजयायं ॥ २२ ॥

१६-१—जनितः, क्त-प्रत्यय-भूत०कृदन्त। २ जनानाम्-ष० बहु० पु०। ३ सच्चरितगुणैः-तृ० बहु० नपुं०।

१७-१. गृहित्वा-क्त्वा-प्रत्यय-पूर्वकालिक कृदन्त। २. गोधनानि-द्वि०-बहु० नपुं०। ३. गिरियोः-सप्तमी० एक० पु०। ४. पल्लीतः-पं० एक० नपुं०, झोपड़ी से।

१८-१. नीलोत्पल (नील+उत्पल) उक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि संस्कृत के सदृश सन्धिरूप प्राकृत में सर्वत्र नहीं मिलता। २. वृन्दैः-तृ० बहु० नपुं०।

२०-१. निवेशितं-क्त प्रत्यय, भूत० कृदन्त। २. कीर्तिवृद्धियै-च० एक० नपुं०, यश बढ़ाने के लिये।

२१-१. द्वौ-द्वि० द्विवचन, संख्यावाचक०।

२२-१. कारितम्-क्त-प्रत्यय भूतकालिक कृदन्त, प्रेरणार्थक०करवाया।

२३—अप्पिअमेअं भवणं सिद्धस्स गणेसरस्स गच्छम्मि[१]
तह सन्त जम्ब-अम्बय-वणि, माउड-पमुह गोट्ठीए[२] ॥ २३ ॥

संस्कृत-छाया

ओम् स्वर्गापवर्गमार्गं प्रथमं सकलानां कारणं देवम्
निःशेष दुरत दलनं परमगुरुं नमथ जिननाथम् ॥ १ ॥
रघुतिलकः प्रतिहारः आसीत् श्री लक्ष्मणः इति रामस्य
तेव प्रतिहारवंशः समुन्नतिं अत्र सम्प्राप्तः ॥ २ ॥
विप्रः हरिश्चन्द्रः भार्या आसीत् इति क्षत्रिया भद्रा
तस्याः सुतः उत्पन्नः वीरः श्री रज्जिलः अत्र ॥ ३ ॥
अस्यापि नरभट्ट नामः जातः श्रीनागभट्टः इति एतस्य
अस्यापि तनयः ताटः तस्यापि यशोवर्धनः जातः ॥ ४ ॥
अस्यापि चन्दुक नामः उत्पन्नः शिल्लुकः अपि एतस्य
झोटः इति तस्य तनयः अस्यापि श्री भिल्लुकः त्यागी ॥ ५ ॥
श्री भिल्लुकस्य तनयः श्री कक्कुक गुरुगुणैः गौरवितः
अस्यापि कक्कुक नामः दुर्लभदेव्याः उत्पन्नः ॥ ६ ॥
ईषद्विलासं हसितं मधुरं भणितं प्रलोकितं सौम्यम्
नमतं यस्य न दीनं रोषः स्तोकः स्थिरः मैत्री ॥ ७ ॥
न जल्पितं न हसितं न कृतं न प्रलोकितं न संस्मृतम्
न स्थितं न परिभ्रमितं येन जनस्य कार्यं परिहानम् ॥ ८ ॥
स्वस्थाः दुःस्थाः अपि प्रजा अधमा तथा उत्तमा अपि सौख्येन
जननीव येन धारितः नित्यं निजमण्डले सर्वान् ॥ ९ ॥
उपरोध रागमत्सरलोभैः इति न्यायवर्जितं येन
न कृतः द्वौ विशेष व्यवहारे कोऽपि मनागं अपि ॥ १० ॥

२३–१. गच्छे-सप्तमी० एक० नपुं०, वंश में। २. गोष्ठ्यै-च० एक० नपुं०, गोष्ठी के लिये।

द्विजवरदत्तानुज्ञां येन जनं रञ्जित्वा सकलं अपि
निःमत्सरेन जनितं दुष्टानां अपि दण्ड निःस्थापनम् ॥ ११ ॥

धन ऋद्धसमृद्धानां अपि पौराणां निजकरस्य अभ्यधिकम्
लक्षं शतं च सहशत्वम् च तथा येन दृष्टानि ॥ १२ ॥

नवयौवन रूपप्रसाधितेन शृंगार गुरुगुरुकेन
जनपद निंद्यमलज्जं येन जने नैव संचरितम् ॥ १३ ॥

बालानां गुरुः तरुणानां सखा तथा गतवयानां तनयः
इति सुचरितैः नित्यं येन जनः परिपालितः सर्वः ॥ १४ ॥

येन नमन्तेन सदासन्मानं गुणस्तुतिं कुर्वन्तेन
जल्पंतेन च ललित दत्त प्रणयिणां धननिवह ॥ १५ ॥

मरुमाड वल्लतमणी पर्यंकाः अज्ञ गुजरातेषु
जनितः येन जनानां सच्चरितगुणैः अनुरागः ॥ १६ ॥

गृहीत्वा गोधनानि गिरौ ज्वालाकुलः पल्लीतः
जनितः येन विषमे वटनानकमण्डले प्रकटं ॥ १७ ॥

नीलोत्पल्ल दलगन्धाः रम्याः माकन्द मधुकवृक्षैः
वरइक्षु पत्राच्छन्न एषाः भूमि कृता येन ॥ १८ ॥

वर्षशतेषु च नवअष्टादशार्गलेषु चैत्रे
नक्षत्रे विधुहस्ते बुधवारे धवल द्वितीयां ॥ १९ ॥

श्री कक्कुकेन हाटं महाजनं विप्र पदाति वणिकबहुलं
रोहिन्सकूपग्रामे निवेशितं कीर्ति वृद्धिये ॥ २० ॥

मड्डोअरे एकः द्वितीयः रोहिन्सकूपग्रामे
येन यशस्य इव पुञ्जं द्वौ स्तम्भौ समुत्थापितौ ॥ २१ ॥

तेन श्री कक्कुकेन जिनस्य दुरितनिर्दलनम्
कारितं अचलमिदं भवनं भक्त्या सुखजननम् ॥ २२ ॥

२३—अपिअमेअं भवणं सिद्धस्स गणेसरस्स गच्छम्मि[१]
तह सन्त जम्ब-अम्बय-वणि, भाउड-पमुह गोट्ठीए[२] ॥ २३ ॥

संस्कृत-छाया

ओम् स्वर्गापवर्गमार्गं प्रथमं सकलानां कारणं देवम्
निःशेष दुरत दलनं परमगुरुं नमथ जिननाथम् ॥ १ ॥
रघुतिलकः प्रतिहारः आसीत् श्री लक्ष्मणः इति रामस्य
तेव प्रतिहारवंशः समुन्नतिं अत्र सम्प्राप्तः ॥ २ ॥
विप्रः हरिश्चन्द्रः भार्या आसीत् इति क्षत्रिया भद्रा
तस्याः सुतः उत्पन्नः वीरः श्री रज्जिलः अत्र ॥ ३ ॥
अस्यापि नरभट्ट नामः जातः श्रीनागभट्टः इति एतस्य
अस्यापि तनयः ताटः तस्यापि यशोवर्धनः जातः ॥ ४ ॥
अस्यापि चन्दुक नामः उत्पन्नः शिल्लुकः अपि एतस्य
झोटः इति तस्य तनयः अस्यापि श्री भिल्लुकः त्यागो ॥ ५ ॥
श्री भिल्लुकस्य तनयः श्री कक्कुक गुरुगुणैः गौरवितः
अस्यापि कक्कुक नामः दुर्लभदेव्याः उत्पन्नः ॥ ६ ॥
ईषद्विलासं हसितं मधुरं भणितं प्रलोकितं सौम्यम्
नमतं यस्य न दीनं रोषः स्तोकः स्थिरः मैत्री ॥ ७ ॥
न जल्पितं न हसितं न कृतं न प्रलोकितं न संस्मृतम्
न स्थितं न परिभ्रमितं येन जनस्य कार्यं परिहानम् ॥ ८ ॥
स्वस्थाः दुःस्थाः अपि प्रजा अधमा तथा उत्तमा अपि सौख्येन
जननीव येन धारितः नित्यं निजमण्डले सर्वान् ॥ ९ ॥
उपरोध रागमत्सरलोभैः इति न्यायवर्जितं येन
न कृतः द्वौ विशेष व्यवहारे कोऽपि मनागं अपि ॥ १० ॥

२३–१. गच्छे-सप्तमी० एक० नपुं०, वंश में । २. गोष्ठियै-च० एक० नपुं०, गोष्ठी के लिये ।

द्विजवरदत्तानुज्ञां येन जनं रञ्जित्वा सकलं अपि
निःमत्सरेन जनितं दुष्टानां अपि दण्ड निःस्थापनम् ॥ ११

धन ऋद्धसमृद्धानां अपि पौराणां निजकरस्य अभ्यधिकम्
लक्षं शतं च सहस्रत्वम् च तथा येन दृष्टानि ॥ १२ ॥

नवयौवन रूपप्रसाधितेन श्रृंगार गुरुगुरुकेन
जनपद निंद्यमलज्जं येन जने नैव संचरितम् ॥ १३ ॥

बालानां गुरुः तरुणानां सखा तथा गतवयानां तनयः
इति सुचरितैः नित्यं येन जनः परिपालितः सर्वः ॥ १४ ॥

येन नमन्तेन सदासन्मानं गुणस्तुतिं कुर्वन्तेन
जल्पंतेन च ललित दत्त प्रणयिणां धननिवह ॥ १५ ॥

मरुमाड वल्लतमणी पर्यकाः अद्य गुजरातेषु
जनितः येन जनानां सच्चरितगुणैः अनुरागः ॥ १६ ॥

गृहीत्वा गोधनानि गिरौ ज्वालाकुलः पल्लीतः
जनितः येन विपमे वटनानकमण्डले प्रकटं ॥ १७ ॥

नीलोत्पल्ल दलगन्धाः रम्याः माकन्द मधुकवृक्षैः
वरइक्षु पत्राच्छन्न एषाः भूमि कृता येन ॥ १८ ॥

वर्षशतेषु च नवअष्टादशार्गलेषु चैत्रे
नक्षत्रे विधुहस्ते बुधवारे धवल द्वितीयां ॥ १९ ॥

श्री कक्कुकेन हाटं महाजनं विप्र पदाति वणिकबहुलं
रोहिन्सकूपग्रामे निवेशितं कीर्ति वृद्धियें ॥ २० ॥

मड्डोअरे एकः द्वितीयः रोहिन्सकूपग्रामे
येन यशस्य इव पुञ्जं द्वौ स्तम्भौ समुत्थापितौ ॥ २१ ॥

तेन श्री कक्कुकेन जिनस्य दुरितनिर्दलनम्
कारितं अचलमिदं भवनं भक्त्या सुखजननम् ॥ २२ ॥

२३—अपिअमेअं भवणं सिद्धस्स गणेसरस्स गच्छम्मि[1]
तह सन्त जम्ब-अम्बय-वणि, भाउड-पमुह गोट्ठीए[2] ॥ २३ ॥

संस्कृत-छाया

ओम् स्वर्गापवर्गमार्गं प्रथमं सकलानां कारणं देवम्
निःशेष दुरत्त दलनं परमगुरुं नमथ जिननाथम् ॥ १ ॥
रघुतिलकः प्रतिहारः आसीत् श्री लक्ष्मणः इति रामस्य
तेव प्रतिहारवंशः समुन्नतिं अत्र सम्प्राप्तः ॥ २ ॥
विप्रः हरिश्चन्द्रः भार्या आसीत् इति क्षत्रिया भद्रा
तस्याः सुतः उत्पन्नः वीरः श्री रज्जिलः अत्र ॥ ३ ॥
अस्यापि नरभट्ट नामः जातः श्रीनागभट्टः इति एतस्य
अस्यापि तनयः ताटः तस्यापि यशोवर्धनः जातः ॥ ४ ॥
अस्यापि चन्दुक नामः उत्पन्नः शिल्लुकः अपि एतस्य
झोटः इति तस्य तनयः अस्यापि श्री भिल्लुकः त्यागी ॥ ५ ॥
श्री भिल्लुकस्य तनयः श्री कक्कुक गुरुगुणैः गौरवितः
अस्यापि कक्कुक नामः दुर्लभदेव्याः उत्पन्नः ॥ ६ ॥
ईषद्विलासं हसितं मधुरं भणितं प्रलोकितं सौम्यम्
नमतं यस्य न दीनं रोषः स्तोकः स्थिरः मैत्री ॥ ७ ॥
न जल्पितं न हसितं न कृतं न प्रलोकितं न संस्मृतम्
न स्थितं न परिभ्रमितं येन जनस्य कार्यं परिहानम् ॥ ८ ॥
स्वस्थाः दुःस्थाः अपि प्रजा अधमा तथा उत्तमा अपि सौख्येन
जननीव येन धारितः नित्यं निजमण्डले सर्वान् ॥ ९ ॥
उपरोध रागमत्सरलोभैः इति न्यायवर्जितं येन
न कृतः द्वौ विशेष व्यवहारे कोऽपि मनागं अपि ॥ १० ॥

२३–१. गच्छे-सप्तमी० एक० नपुं०, वंश में। २. गोष्ठ्यै-च० एक० नपुं०, गोष्ठी के लिये।

द्विजवरदत्तानुज्ञां येन जनं रञ्जित्वा सकलं अपि
निःमत्सरेन जनितं दुष्टानां अपि दण्ड निःस्थापनम् ॥ ११ ॥

धन ऋद्धसमृद्धानां अपि पौराणां निजकरस्य अभ्यधिकम्
लक्षं शतं च सहस्रात्वम् च तथा येन दृष्टानि ॥ १२ ॥

नवयौवन रूपप्रसाधितेन शृंगार गुरुगुरुकेन
जनपद् निंद्यमलज्जं येन जने नैव संचरितम् ॥ १३ ॥

बालानां गुरुः तरुणानां सखा तथा गतवयानां तनयः
इति सुचरितैः नित्यं येन जनः परिपालितः सर्वः ॥ १४ ॥

येन नमन्तेन सदासन्मानं गुणस्तुतिं कुर्वन्तेन
जल्पंतेन च ललित दत्त प्रणयिणां धननिवहं ॥ १५ ॥

मरुमाड वल्लतमणी पर्यंकाः अद्य गुजरातेपु
जनितः येन जनानां सच्चरितगुणैः अनुरागः ॥ १६ ॥

गृहीत्वा गोधनानि गिरौ ज्वालाकुलः पल्लीतः
जनितः येन विषमे वटनानकमण्डले प्रकटं ॥ १७ ॥

नीलोत्पल्ल दलगन्धाः रम्याः माकन्द मधुकवृन्दैः
वरइक्षु पत्राच्छन्न एषाः भूमि कृता येन ॥ १८ ॥

वर्षशतेपु च नवअष्टादशार्गलेपु चैत्रै
नक्षत्रे विधुहस्ते बुधवारे धवल द्वितीयां ॥ १९ ॥

श्री कक्कुकेन हाटं महाजनं विप्र पदाति वणिकबहुलं
रोहिन्सकूपग्रामे निवेशितं कीर्तिं वृद्धियै ॥ २० ॥

मड्डोअरे एकः द्वितीयः रोहिन्सकूपग्रामे
येन यशस्य इव पुंजं द्वौ स्तम्भौ समुत्थापितौ ॥ २१ ॥

तेन श्री कक्कुकेन जिनस्य दुरितनिर्दलनम्
कारितं अचलमिदं भवनं भक्त्या सुखजननम् ॥ २२ ॥

अर्पितं एनं भवन सिद्धस्य धनेश्वरस्य गच्छे
तथा सन्त जम्ब अम्चय वणिक भाकुट प्रमुख गोष्ठियै ॥ २३ ॥

उद्धरण सं॰—६

शौरसेनी

अभिज्ञान शाकुन्तलम्

(चतुर्थोऽङ्क)

(ततः प्रविशतः कुसुमावचयं नाटयन्तौ सख्यौ)

अनुसूया—पिअंवदे,[1] जइ वि गन्धव्वेण विहिणा[2] णिव्वुत्तकल्लणा सउन्दला अणुरूपभत्तुगामिणी संवुत्तेति[3] निव्वुदं मे हिअअं, तह वि एत्तिअं चिन्तणिज्जं।[4]

प्रियंवदा—कहं विअ।

अनुसूया—अज्ज सो राएसीइट्ठिं[5] परिसमाविअ इसोहिं विसज्जिओ अत्तणो णअरं पविसिअ अन्तेउरसमागदो इदोगदं वुत्तन्तं सुमरदि[6] वा ण वेत्ति।[7]

प्रियंवदा—वीसद्धा होहि। ण तादिसा आकिदिविसेसा गुणविरोहिणो होन्ति। तादो दाणिं इमं वुत्तन्तं सुणिअं[8] ण आणे किं पडिवज्जिस्सदि[9] त्ति।

अनुसूया—जह अहं दक्खामि,[10] तह तस्स अणुमदं भवे।

---

१. प्रियंवदे—संबोधन, स्त्री॰। २. गान्धर्वेण विधिना—तृ॰ एक नपुं॰, गान्धर्व विधि से। ३. संवृत्तेति—√ वृत् प्र॰ पु॰ एक॰ वर्तमान॰। ४. चिन्तनीयम्—अनीयर्-प्रत्यय। ५. राजर्षिरिष्टिं—द्वि॰ एक॰ नपुं॰, राजर्षियज्ञ को। ६. स्मरति—√ स्मृ-प्र॰ पु॰ एक॰ वर्तमान॰। ७. वेति-वा+इति-विकल्पसूचक अव्यय। ८. श्रुत्वा—संबंधसूचक कृदन्त, इसमें-इअ प्रत्यय का भी योग मिलता है। ९. प्रतिपत्स्यत—म॰ पु॰ एक॰ भविष्य॰। १०. पश्यामि—उ॰ पु॰ एक॰ वर्तमान॰, प्राकृत-दक्ख-देशी, हिं॰ देख—

प्रियंवदा—कहं विअ।

अनुसूया—गुणवदे कण्णआ पडिवादणिज्ज[1] एत्तिअअंदाव पठमो संकप्पो। तं जइ देव्वं एव्व संपादेदिणं अप्पआसेण[2] किदत्थो गुरुअणो।

प्रियंवदा—(पुष्पभाजनं विलोक्य) सहि, अवइदाइं[3] वलिकम्म-पज्जताइं कुसुमाइं।

अनुसूया—णं सहीए सउन्दलाए सोहग्गदेवआं अच्चणीआ।

प्रियंवदा—जुज्जदि।[4] (इति तदेव कर्मारमेते)।

(नेपथ्य में कुछ ध्वनि होती है)

अनुसूया—(कणं दत्त्वा) सहि, अदिधीण[5] विअ[6] णिवेहिदं।

प्रियंवदा—णं उडजसंणिहिदा सउन्दला (आत्मगतम्)। 'अज्ज उण हिअएण असंणिहिदा।[7]

अनुसूया—होदु। अलं एत्तिएहिं[8] कुसुमेहिं। (इति प्रस्थते)।

(नेपथ्य से दुर्वासा ऋषि द्वारा शंकुन्तला को दिये गये शाप को सुनकर।)

प्रियंवदा—हद्धी। अप्पिअं एव्व संवुत्त[9]। कस्सिं[10] पि पूआरुहे अवरद्धा सुण्णाहिअआ सउन्दला। (पुरोऽवलोक्य) ण हु जस्सिं[11] कस्सिं

---

१. प्रतिपादनीयं—अनीयर् प्रत्यय। २. अप्रयासेन—तृ० एक० नपुं०, बिना प्रयास से। ३. अवचितानि—प्र० बहु० नपुं० -त> -द का प्रयोग शौरसेनी की विशेषता है। ४. युज्यते—√ युज् प्र० पु० एक० वर्तमान०। ५. अतिथीनाम्—ष० बहु० पुलिंग०। ६. इव—अव्यय। ७. असंनिहिता—क्त-प्रत्यय प्र० पु० एक० स्त्री० भूत० कृदन्त। ८. एतावद्भिः—तृ० एक० नपुं०। ९. संवृतम्-क्त प्रत्यय, भूत० कृदन्त। १०. कस्मिन्—स० एक० नपुं०, किम्-सर्वनाम। ११. यस्मिन्—स० एक० नपुं०, यद्-सर्वनाम।

अर्पितं एनं भवनं सिद्धस्य धनेश्वरस्य गच्छे
तथा सन्त जम्ब अम्वय वणिक भाकुट प्रमुख गोष्ठियै ॥ २३ ॥

उद्धरण सं०—६

शौरसेनी

अभिज्ञान शाकुन्तलम्

(चतुर्थोऽङ्क)

(ततः प्रविशतः कुसुमावचयं नाट्यन्तौ सख्यौ)

अनुसूया—पिअंवदे,[1] जइ वि गन्धव्वेण विहिणा[2] णिव्वुत्तकल्लणा सउन्दला अणुरूपभत्तु गामिणी संवुत्तेति[3] निव्वुदं मे हिअअं, तह वि एत्तिअं चिन्तणिज्जं ।[4]

प्रियंवदा— कहं विअ ।

अनुसूया—अज्ज सो राएसीइट्ठिं[5] परिसमाविअ इसोहिंविसज्जिओ अत्तणो णअरं पविसिअ अन्तेउरसमागदो इदोगदं वुत्तन्तं सुमरदि[6] वा ण वेत्ति ।[7]

प्रियंवदा—वीसद्धा होहि । ण तादिसा आकिदिविसेसा गुणविरोहिणो होन्ति । तादो दाणिं इमं वुत्तन्तं सुणिअं[8] ण आणे किं पडिवज्जिस्सदि[9] त्ति ।

अनुसूया— जह अहं दक्खामि,[10] तह तस्स अणुमदं भवे ।

---

१. प्रियंवदे—संबोधन, स्त्री० । २. गान्धर्वेण विधिना—तृ० एक नपुं०, गान्धर्व विधि से । ३. संवृत्तेति—√ वृत् प्र० पु० एक० वर्तमान० । ४. चिन्तनीयम्—अनीयर-प्रत्यय । ५. राजर्षिरिष्टिं—द्वि० एक० नपुं०, राजर्षियज्ञ को । ६. स्मरति—√ स्मृ-प्र० पु० एक० वर्तमान० । ७. वेति-वा+इति-विकल्पसूचक अव्यय । ८. श्रुत्वा—संबंधसूचक कृदन्त, इसमें-इअ प्रत्यय का भी योग मिलता है । ९. प्रतिपत्स्यते—म० पु० एक० भविष्य० । १०. पश्यामि—उ० पु० एक० वर्तमान०, प्राकृत-दक्ख-देशी, हिं० देख—

प्रियंवदा—कहं विअ।

अनुसूया—गुणवदे कण्णआ पडिवादणिज्ज[1] एत्तिअअंदाव पठमो संकप्पो। तं जइ देव्वं एव्व संपादेदिणं अप्पआसेण[2] किदत्थो गुरुअणो।

प्रियंवदा—(पुष्पभाजनं विलोक्य) सहि, अवइदाइं[3] वलिकम्म-पज्जताइं कुसुमाइं।

अनुसूया—णं सहीए सउन्दलाए सोहग्गदेवआं अच्चणीआ।

प्रियंवदा—जुज्जदि।[4] (इति तदेव कर्मारभेते)।

(नेपथ्य में कुछ ध्वनि होती है)

अनुसूया—(कर्णं दत्त्वा) सहि, अदिधीण[5] विअ[6] णिवेहिदं।

प्रियंवदा—णं उडजसंणिहिदा सउन्दला (आत्मगतम्)। 'अज्ज उण हिअएण असंणिहिदा।[7]

अनुसूया—होदु। अलं एत्तिएहिं[8] कुसुमेहिं। (इति प्रस्थिते)।

(नेपथ्य से दुर्वासा ऋषि द्वारा शंकुन्तला को दिये गये शाप को सुनकर।)

प्रियंवदा—हद्धी। अप्पिअं एव्व संवुत्तं[9]। कस्सिं[10] पि पूआरुहे अवरद्धा सुण्णाहिअआ सउन्दला। (पुरोऽवलोक्य) ण हु जस्सिं[11] कस्सिं

---

१. प्रतिपादनीयं—अनीयर् प्रत्यय। २. अप्रयासेन—तृ० एक० नपुं०, बिना प्रयास से। ३. अवचितानि—प्र० बहु० नपुं० -त> -द का प्रयोग शौरसेनी की विशेषता है। ४. युज्यते—√ युज् प्र० पु० एक० वर्तमान०। ५. अतिथीनाम्—ष० बहु० पुलिंग०। ६. इव—अव्यय। ७. असंनिहिता—क्त-प्रत्यय प्र० पु० एक० स्त्री० भूत० कृदन्त। ८. एतावद्भिः—तृ० एक० नपुं०। ९. संवृतम्-क्त प्रत्यय, भूत० कृदन्त। १०. कस्मिन्—स० एक० नपुं०, किम्-सर्वनाम। ११. यस्मिन्—स० एक० नपुं०, यद्-सर्वनाम।

पि। एसो दुव्वासो सुलहकोवो महेसी। तह सविअ[1] वेअवलुप्फुल्लाए दुव्वाराए गईए पडिणिवुत्तो। को अण्णो हुदवहादो दहिदु[2] पहवदि।[3]

अनुसूया—गच्छ। पादेसु पणमिअ णिवत्तेहि[4] णं[5] जाव अहं अग्घोदअं उवकप्पेमि।

प्रियंवदा—तह। (इति निष्क्रान्ता)।

अनुसूया—(पदान्तरे स्खलितं निरूप्य) अव्वो।[6] आवेअस्खलिदाए गईए पब्भट्ठं मे अग्गहत्थादो पुप्फभाअणं। (इति पुष्पोच्चयं रूपयति)।

प्रियंवदा—सहि, पकिदिवक्को सो कस्स अणुणअं पडिगेण्हदि।[7] कि वि उण साणुक्कोसो किदो।

अनुसूया—सक्कं दाणिं अस्ससिदुं ।[१] अत्थि तेण राएसिणा संपत्थिदेण सणामहेअङ्किअं[२] अङ्गुलीअअं सुमरणीअं[३] त्ति सअं पिणद्धं । तस्सिं साहीणोवाआ सउन्दला भविस्सदि ।

प्रियंवदा—सहि, एहि । देवकज्जं दाव णिव्वत्तेह्य ।[४]

(इति परिक्रामतः)

प्रियंवदा—(विलोक्य) अणसूए, पेक्ख दाव । वामहत्थोवहिदवअणा आलिहिदा विअ पिअसही । भत्तुगदाए चिन्दाए अत्ताणं पि ण एसा विभावेदि[५] । किं उण आअन्तुअं ।

अनुसूया—पिअंवदे, दुवेणं[६] एव्व णं णो मुहे एसो वुत्तन्तो चिट्ठदु ।[७] रक्खिदव्वा[८] क्खु पकिदिपेलवा पिअसही ।

प्रियंवदा—को णाम उण्होदएण[९] णोमालिअं सिञ्चेदि ।[१०]

(इत्युभे निष्क्रान्ते) ।

संस्कृत-छाया

अनु०—प्रियंवदे, अद्यापि गान्धर्वेण विधिना निर्वृत्तकल्याणा शकुन्तलानुरूपभर्तृगामिनी संवृत्तेति निर्वृतं मे हृदयम्, तथाप्येतावच्चिन्तनीयम् ।

---

१. आश्वसयितुम्-√श्वस्, तुमुन्-प्रत्यय । २. स्वनामधेयाङ्कितमङ्गुरीयकं—द्वि० एक० नपुं०, अपने नाम की अंकित की हुई अँगूठी को । ३. स्मरणीयं—अनीयर् प्रत्यय । ४. निर्वर्तयावः—म० पु० द्वि० वर्तमान० । ५. विभावयति—प्र० पु० एक० वर्तमान० । ६. द्वयोः—प० बहु० संख्या० । ७. तिष्ठति—प्र० पु० एक० वर्तमान० । ८. रक्षितव्या—√रक्ष्-तव्य-यान्त प्रत्यय । ९. उष्णोदकेन—तृ० एक० नपुं०, गरम जल से । १०. सिञ्चति—√सिञ्च-प्र० पु० एक० वर्तमान०, सींचती है ।

पि। एसो दुव्वासो सुलहकोवो महेसी। तह सविअ[1] वेअवलुप्फुल्लाए दुव्वाराए गईए पडिणिवुत्तो। को अण्णो हुदवहादो दहिदुं[2] पहवदि।[3]

अनुसूया—गच्छ। पादेसु पणमिअ णिवत्तेहि[4] णं[5] जाव अहं अग्घोदअं उवकप्पेमि।

प्रियंवदा—तह। (इति निष्क्रान्ता)।

अनुसूया—(पदान्तरे स्खलितं निरूप्य) अव्वो।[6] आवेअस्क्खलिदाए गईए पब्भट्ठ मे अग्गहत्थादो पुप्फभाअणं। (इति पुष्पोच्चयं रूपयति)।

प्रियंवदा—सहि, पकिदिवक्को सो कस्स अणुणअं पडिगेण्हदि।[7] कि वि उण साणुक्कोसो किदो।

अनुसूया—(सस्मितम्) तस्सिं वहु एदं पि। कहेहि।[8]

प्रियंवदा—जदा णिवत्तिदुं ण इच्छादि तदा विण्णविदो मए। भअवं, पठमं त्ति पेक्खिअ अविण्णादतवप्पहावस्स दुहिदु जणस्स भअवदा एक्का अवराहो मरिसिदव्वो त्ति।[9]

अनुसूया—तदो तदो।

प्रियंवदा—तदो मे वअणं अण्णहाभविदुं णारिहदि।[10] किंदु अहिण्णाणाभरणदंसणेण[11] सावो णिवत्तिस्सदि[12] त्ति मन्तअन्तो सअं अन्तरिहिदो।

---

१. शप्त्वा—क्त्वा प्रत्यय, संबंधसूचक कृदन्त, शाप देकर। २. दग्धुं—तुमुन् प्रत्यय। ३. प्रभवति—प्र० पु० एक० वर्तमान०। ४. निवर्तय – म० पु० एक० विधि० वर्तमान०। ५. नूनं – अव्यय। ६. अहो—दुःखसूचक अव्यय। ७. प्रतिगृह्णाति—प्रति+√ग्रह-प्र० पु० एक० वर्तमान०। ८. कथय—म० पु० एक० विधि० वर्तमान०। ९. मर्षितव्यं—तव्यान्त प्रत्यय। १०. नार्हति—न+अर्हति, 'अर्ह्'-योग्य होना -प्र० पु० एक० वर्तमान०। ११. अभिज्ञाना भरणदर्शनेन—तृ० एक० नपुं०, स्मरण हेतु दिये हुए आभूषण को देखने से। १२. निवर्तिष्यते—म० पु० एक० भविष्य०।

अनुसूया—सक्कं दाणिं अस्ससिदुं ।[१] अत्थि तेण राएसिणा संपत्थिदेण सणामहेअङ्किअं[२] अङ्गुलीअअं सुमरणीअं[३] त्ति सअं पिणद्धं । तस्सिं साहीणोवाआ सउन्दला भविस्सदि ।

प्रियंवदा—सहि, एहि । देवकज्जं दाव णिव्वत्तेह्म ।[४]

(इति परिक्रामतः)

प्रियंवदा—(विलोक्य) अणसूए, पेक्ख दाव । वामहत्थोवहिदवअणा आलिहिदा विअ पिअसही । भत्तुगदाए चिन्दाए अत्ताणं पि ण एसा विभावेदि[५] । किं उण आअन्तुअं ।

अनुसूया—पिअंवदे, दुवेणं[६] एव्व णं णो मुहे एसो वुत्तन्तो चिट्ठदु ।[७] रक्खिदव्वा[८] क्खु पकिदिपेलवा पिअसही ।

प्रियंवदा—को णाम उण्होदएण[९] णोमालिअं सिञ्चेदि ।[१०]

(इत्युभे निष्क्रान्ते) ।

संस्कृत-छाया

अनु०—प्रियंवदे, अद्यापि गान्धर्वेण विधिना निर्वृत्तकल्याणा शकुन्तलानुरूपभर्तृगामिनी संवृत्तेति निर्वृतं मे हृदयम्, तथाप्येतावच्चिन्तनीयम् ।

---

१. आश्वसयितुम्-√श्वस्, तुमुन्-प्रत्यय । २. स्वनामधेयाङ्कितमङ्गुरीयकं—द्वि० एक० नपुं०, अपने नाम की अंकित की हुई अँगूठी को । ३. स्मरणीयं—अनीयर् प्रत्यय । ४. निर्वर्तयावः—म० पु० द्वि० वर्तमान० । ५. विभावयति—प्र० पु० एक० वर्तमान० । ६. द्वयोः—प० बहु० संख्या० । ७. तिष्ठति—प्र० पु० एक० वर्तमान० । ८. रक्षितव्या—√रक्ष्-तव्य-न्त प्रत्यय । ९. उष्णोदकेन—तृ० एक० नपुं०, गरम जल से । १०. सिञ्चति—√सिञ्च-प्र० पु० एक० वर्तमान०, सींचती है ।

(उपसृत्य) जअदु जअदु[४] देवो। देवी एदं विण्णवेदि जधा संभा-
समए जूअं[५] मए परिणेदव्वा[६] त्ति।

विदूषकः—भोदि किं एदं अकालकोहण्डपडणं।[७]

राजा—सारङ्गिए, सव्वं वित्थरेण कधेहि।

सारङ्गिका—एदं विण्णवीअदि। अणन्तरादिक्कन्तचउद्दसं दिअहं देवीए पडिट्ठा-
पोम्मराअमणिमई[९] गोरिं कदुअ भइरवाणन्देन[१०] गुरु-
विदा।[११] सअं च दिक्खा गहिदा। तदा ताए विण्णत्तो जोईसरो गुरु-
दक्खिणाणिमित्तं। भणिदं च तेण। जदि अवस्सं गुरुदक्खिणा दाअव्वा ता
एसा दीअदु महाराअस्स। तदो देवीए विण्णत्तं जं आदिसदि भअवं। णाम
पुणो वि उल्लविदं[१२] तेण। अत्थि लाटदेशे चण्डसेणो आइच्च
राआ। तस्स दुहिदा घणसारमञ्जरी णाम। सा देवण्णएहि परिणाविदव्व
चक्कवट्टिघरिणी भविस्सदि[१३] त्ति। तदो महाराअस्स चक्कवट्टि क
तेण गुरुदक्खिणा दिण्णा भोदि। भत्ता वि चक्कवट्टि
होदि। तदो देवीए विहसिअ भणिदं जं आणवेदि भअवं तं कीरदि। अ
च विण्णविदु[१४] पेसिदा। गुरुस्स गुरुदक्खिणाणिमित्तं।[१५]

विदूषकः (विहस्य)—एदं तं संविधाणअं सीसे सप्पो देसा
वेज्जो। इह अज्ज विवाहो। लाडदेसे घणसारमञ्जरी।

१ --- । ५ युयं-प्र०

राजा—किं ते भइरवाणन्दस्स पहावो ण पच्चक्खो। कहि संपदं भइरवाणन्दो।

सारङ्गिका—देवीएकारिद पमदुज्जाणस्स मज्झट्ठिदेवडतरूमूले चामुण्डाअदणे भइरवाणन्दो देवी आगमिस्सदि ता अज्ज दक्खिणाविहिदो विवाहो। ता इह ज्जेव देवेण ठातव्वं कोऊहल परो (इति परिक्रम्य निष्क्रान्ता)।

राजा—वअस्स सव्वं एदं भइरवाणन्दस्स विअम्भिदं त्ति तक्केमि।[२]

विदूषक:—एवं णेदं। ण हु मअलञ्छणमन्तरेण अण्णो मिअङ्कमणि पुत्तलिअं पस्सवएदि। ण हु सरअसमीरमन्तरेण सेहालिआ कुसुमुकरं विकासेदि।[४]

(प्रविश्य)-भैरवानन्द:इअं सा वडतरु मूले णिव्भण्णस्स सुरङ्गादुआरस्सस पिधाणं चामुण्डा। (तां चामुण्डां हस्तेन प्रणम्य)।

(प्रविश्योपविश्य च) अज्जवि ण णिग्गच्छदि[५] सुरङ्गादुवारेण कप्पूरमञ्जरी।

(तत: प्रविशति सुरङ्गाद्वारोद्घाटन नाटितकेन कर्पूरमञ्जरी)।

कर्पूरमञ्जरी—भअवं पणमिज्जसि।[६]

भैरवानन्द:—पुत्ति उइदं वरं लह।[७] इह ज्जेव उपविसस्सु।

(कर्पूरमञ्जरी उपविशति)।

---

१. वैद्य:—प्र० एक० पु०। २. तर्कयामि-√तर्क-उत्तम पु० एक० वर्तमान०। ३. प्रस्वेदयति—प्र+√स्वेद प्र० पु० एक० वर्तमान०। ४. विकासयति-प्रथम पु० एक० वर्तमान०। ५. निर्गच्छति—निर् उपसर्ग √ गम्-प्रथम पु० एक० वर्तमान०, बाहर निकलता है। ६. प्रणम्यसे—प्र-उपसर्ग √ नम्-उत्तम० पु० एक० वर्तमान० कर्मवाच्य। ७. लभस्व-√लभ्-प्राप्त करना-मध्यम पु० एक० विधि०।

(उपसृत्य) जअदु जअदु[4] देवो। देवी एदं विण्णवेदि जधा संभा-समए जूअं[5] मए परिणेदव्वा[6] त्ति।

विदूषकः—भोदि किं एदं अकालकोहण्डपडणं।[7]

राजा—सारङ्गिए, सव्वं वित्थरेण कधेहि।

सारङ्गिका—एदं विण्णवीअदि। अणन्तरादिक्कन्तचउद्दसे दिअहे देवीए पोम्मराअमणिमई[9] गोरिं कदुअ भइरवाणन्देन[10] पडिट्ठाविदा।[11] सअं च दिक्खा गहिदा। तदा ताए विण्णत्तो जोईसरो गुरुदक्खिणाणिमित्तं। भणिदं च तेण। जदि अवस्सं गुरुदक्खिणा दाअव्वा ता एसा दीअदु महाराअस्स। तदो देवीए विण्णत्तं जं आदिसदि भअवं। पुणो वि उल्लविदं[12] तेण। अत्थि लाटदेशे चण्डसेणो णाम राआ। तस्स दुहिदा घणसारमञ्जरी णाम। सा देवण्णए ह आइट्ठा चक्कवट्टिघरिणी भविस्सदि[13] त्ति। तदो महाराअस्स परिणाविदव्वा तेण गुरुदक्खिणा दिण्णा भोदि। भत्ता वि चक्कवट्टि कदो होदि। तदो देवीए विहसिअ भणिदं जं आणवेदि भअवं तं कीरदि। अहं च विण्णविदुं[14] पेसिदा। गुरुस्स गुरुदक्खिणाणिमित्तं।[15]

विदूषकः (विहस्य)—एदं तं संविधाणअं सीसे सप्पो देसान्तरे वेज्जो। इह अज्ज विवाहो। लाडदेसे घणसारमञ्जरी।

---

४. जयतु जयतु-म० पु० एक० विधि० वर्तमान। ५. यूयं-प्र० बहु० पु०- युष्मद्, सर्वनाम। ६. परि+√णायय् तव्यान्त प्रत्यय, कृदन्त। ७. अकालकूष्माण्डपतनं—ल्युट् प्रत्यय, कृदन्त, नपुं०। ८. अतिक्रान्तं प्रत्यय क्त प्रत्यय. भूत० कृदन्त। ९. पद्मरागमणिमयी-प्र० एक० नपुं०। १०. भैरवानन्देन—तृ० एक० पु०। ११. प्रतिष्ठापिता-क्त-प्रत्यय, भूत० कृदन्त, स्त्री०। १२. उत्+√लप् कथिता-क्त प्रत्यय, प्र० पु० एक० भूत० कृदन्त। १३. भविष्यति—√भू-प्रथम पु० एक० भविष्य०। १४. विज्ञापयितुं—तुमुन प्रत्यय।

राजा—किं ते भइरवाणन्दस्स पहावो ण पच्चक्खो। काहि संपदं भइरवाणन्दो।

सारङ्गिका—देवीएकारिद पमदुज्जाणस्स मज्झट्ठिदेवडतरूमूले चामुण्डाअदणे भइरवाणन्दो देवी आगमिस्सदि ता अज्ज दक्खिणाविहिदो [विवाहो। ता इह ज्जेव देवेण ठातव्वं कोउहल परो (इति परिक्रम्य निष्क्रान्ता)।

राजा—वअस्स सव्वं एदं भइरवाणन्दस्स विअम्भिदं त्ति तक्केमि।[२]

विदूषकः—एवं णेदं। ण हु मअलञ्छणमन्तरेण अण्णो मिअङ्कमणि पुत्तलिअं पस्सवएदि। ण हु सरअसमीरमन्तरेण सेहालिआ कुसुमुक्करं विकासेदि।[४]

(प्रविश्य)-भैरवानन्दःइअं सा वडतरु मूले णिव्भरणस्स सुरङ्गादुआर-स्सस पिधाणं चामुण्डा। (तां चामुण्डां हस्तेन प्रणम्य)।

(प्रविश्योपविश्य च) अज्जवि ण णिग्गच्छदि[५] सुरङ्गादुवारेण कप्पूरमञ्जरी।

(ततः प्रविशति सुरङ्गाद्वारोद्घाटन नाटितकेन कर्पूरमञ्जरी)।

कर्पूरमञ्जरी—भअवं पणमिज्जसि।[६]

भैरवानन्दः—पुत्ति उइदं वरं लह।[७] इह ज्जेव उपविससु।

(कर्पूरमञ्जरी उपविशति)।

---

१. वैद्यः—प्र० एक० पु०। २. तर्कयामि-√तर्क-उत्तम पु० एक० वर्तमान०। ३. प्रस्वेदयति—प्र+√स्वेद प्र० पु० एक० वर्तमान०। ४. विकासयति-प्रथम पु० एक० वर्तमान०। ५. निर्गच्छति—निर् उपसर्ग √ गम्-प्रथम पु० एक० वर्तमान०, बाहर निकलता है। ६. प्रणम्यसे—प्र-उपसर्ग √ नम्-उत्तम० पु० एक० वर्तमान० कर्मवाच्य। ७. लभस्व-√लभ्-प्राप्त करना-मध्यम पु० एक० विधि०।

संस्कृत-छाया

सार०—एष महाराजः मरकतपुञ्जातः कदलीगृहं चानुप्रविष्टः। तदग्रतो गत्वा देवी विज्ञापितं विज्ञापयामि। जयतु जयतु देवः। देवीदं विज्ञापयति यथा संध्यासमये यूयं मया परिणेतव्याः।

विदू०—भोः, किमेतदकालकूष्माण्डपतनम्।

राजा—सारङ्गिके, सर्वं विस्तरेण कथय।

सार०—एवं विज्ञाप्यते, अनन्तरातिक्रान्त चतुर्दशीदिवसे देव्या पद्मरागमणिमयी गौरीकृत्वा भैरवानन्देन प्रतिष्ठापिता। स्वयं च दीक्षा गृहीता। ततस्तया विज्ञातो योगीश्वरो गुरुदक्षिणानिमित्तम्। भणितं च तेन यद्यवश्यं गुरुदक्षिणा दातव्या तदेषा दीयतां महाराजस्य। ततो देव्या विज्ञप्तं यदादिशति भगवान्। पुनरप्युल्लपितं तेन। अस्त्यत्र लाट-देशे चण्डसेनो नाम राजा। तस्य दुहिता घनसारमञ्जरी नाम। सा दैवज्ञैरादिष्टा एषा चक्रवर्तिगृहिणी भविष्यतीति। ततो महाराजस्य परि-णेतव्या। तेन गुरुदक्षिणा दत्ता भवति।

विदू०—एतत्संविधानकं शीर्षे सर्पो देशान्तरे वैद्यः। इहास्य विवाहो लाटदेशे घनसारमञ्जरी।

राजा—किं न भैरवानन्दस्य प्रभावो न प्रत्यक्षः। कुत्र, सांप्रतं भैरवानन्दः।

सार०—देवीकारितप्रमदोद्यानस्य मध्यस्थितवटतरुमूले चामुण्डायतने भैरवानन्दो देव्या चागमिष्यति। तदत्र दक्षिणाविहितः कौतूहलपरो विवाहः तदिहैव देवेन स्थातव्यम्।

राजा—वयस्य, सर्वमेतद्भैरवानन्दस्य विजृम्भितमिति तर्कयामि।

विदू०—एवमेतत्। न खलु मृगलाञ्छनमन्तरेणान्यो मृगाङ्कमणिपुत्तलीं प्रस्वेदयति। न खलु शरत्समीरमन्तरेण शेफालिकाकुसुमोत्करं विकासयति।

भैरवा०—इयं सा वटतरुमूले निष्क्रान्तस्य सुरङ्गाद्वारस्य पिधानं चामुण्डा। अद्यापि न निर्गच्छति सुरङ्गाद्वारेण कर्पूरमञ्जरी।

कर्पूर०—भगवन्, प्रणम्यते।

भैरवा०—पुत्रि, उचिरं वरं लभस्व। इहैवोपविश।

उद्धरण सं०—११

शौरसेनी मृच्छकटिक

(चतुर्थोऽङ्क—ततः प्रविशति चेटी)

चेटी—आणत्तम्हि अत्ताए अज्ज आए सआसं गन्तु। एसा अज्जआ चित्तफलअणिसण्णदिट्ठीमदणिआए सह किंपि मन्तअन्ती चिट्ठदि।[1] ता जाव उपसप्पमि।[2]

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टा वसन्त मदनिका च)। (इति परिक्रामति)।

वसन्तसेना—हञ्जे[3] मदणिए अवि सुसदिसी इअं चित्ताकिदी अज्ज चारुदत्तस्स।

मदनिका—सुसदिसी।

वसन्तसेना - कधं तुमं जाणासि।

मदनिका—जेण अज्जआ सुसिणिद्धा दिट्ठीअणुलग्गा।

वसंतसेना—हञ्जे किं वेसवासदक्खिण्णेण मदणिए एव्वं भणसि।[4]

मदनिका—अज्जए कि जो ज्जेव जणो वेसे पडिवसदि सो ज्जेव अलीअदक्खिणो भोदि।

---

१. तिष्ठति-√स्था-प्रथम पु० एक वर्तमान०-बैठता है। शौरसेनी में ष्ठ>च का विशेष परिवर्तन मिलता है। २. उपसर्पयामि—उप-उपसर्ग √सृप्-उत्तम पु० एक० वर्तमान०, जाता हूँ। ३. हञ्जे -आह्वानसूचक अव्यय। ४. √भण्-मध्यम पु० एक० वर्तमान०।

वसन्तसेना—हञ्जे णाणापुरिससङ्गेण वेसाजणो अलीअदक्खिण्णो।

मदनिका—जदो दाव अज्जआए दिट्ठी इध अभिरमदि हिअअं भोदि। तस्स कारणं किं पुच्छीअदि।[1]

वसन्तसेना—हञ्जे सहीअणादो[2] उवहसणीयदं रक्खामि।[3]

मदनिका—अज्जए एव्वं णेदं। सही अणचित्ताणुवत्ती अबलाअणो भोदि।

प्रथमाचेटी (उपसृत्य)—अज्जए अत्ता आणवेदि गहिदावगुण्ठणं पक्खदुआरए सज्जं पवहणं। ता गच्छेत्ति।

वसन्तसेना—हञ्जे किं अज्ज चारुदत्तो मं णइस्सदि।[4]

चेटी—अज्जए जेण पवहणेण सह सुवण्णदससाहस्सिओ अलङ्कारओ अणुप्पेसिदो।[5]

वसन्तसेना—को उण[6] सो।

चेटी—एसो ज्जेव राअसालो संठाणओ।[7]

वसंतसेना (सक्रोधम)—अवेहि[8] मा पुणो एव्वं भणिस्ससि।[9]

चेटी—पसीदद पसीदद अज्जआ। संदेसेण म्हि पेसिदा।

वसन्तसेना—अहं संदेसस्स ज्जेव कुप्पामि।[10]

चेटी—ता किं ति अत्तं विण्णाविस्सं।[11]

---

१. पृच्छ्यते- √प्रच्छ्-प्रथम पु० एक० वर्तमान०, कर्मवाच्य। २. सखीजनात्-पंचमी एक० स्त्रीलिंग०। ३. रक्षामि- उत्तम पु० एक० वर्तमान०। ४. नायिष्यति- √नी प्रथम पु० एक० भविष्य० प्रेरणार्थक०-ले जायेगा। ५. अनुप्रेषितः—क्त प्रत्यय, भूतकालिक कृदन्त, पीछे से भेजा। ६. पुनः—फिर। ७. संस्थानः—भूतकालिक कृदन्त। ८. अपेहि-अप-उपसर्ग √इ मध्यम पु० एक० आज्ञार्थ०। ९. भणिष्यसि-√भण्-मध्यम पु०, एक०, भविष्य०। १०. कुप्यामि-√कुप्-उत्तम पु० एक० वर्तमान०। ११. विज्ञापयिष्यामि √ज्ञा-उत्तम पु० एक० भविष्य, प्रेरणार्थक०।

वसंतसेना—एव्वं विण्णविदव्वा[1] जइ मं जीअन्तीं इच्छसि ता एव्वं ण पुणो अहं अत्ताए आणविदव्वा ॥[2]

चेटी—जधा दे रोअदि ।[3] (इति निष्क्रान्ता)।

संस्कृत-छाया

चेटी—आज्ञप्तास्म्यार्यया अद्य ...... सकाशं गन्तुम्। एषार्या चित्र-फलक निषण्णदृष्टिर्मदनिकया सह किमपि मन्त्रयन्ती तिष्ठति। तद्याव-दुपसर्पामि।

वसन्त०—हञ्जे मदनिके अपि सुसदृशीयं चित्ताकृतिरार्य चारुदत्तस्य।

मद०—सुसदृशी।

वसन्त०—कथं त्वं जानासि।

मद० येनार्यायाः सुस्निग्धा दृष्टिरनुलग्ना।

वसन्त०—हञ्जे किं वेशवासदाक्षिण्येन मदनिके एवं भणसि।

मद०—आर्ये किं य एव जनो वेशे प्रतिवसति स एवालीकदाक्षिण्यो भवति।

वसन्त०—हञ्जे नानापुरुषसङ्गेन वेश्याजनो लीकदाक्षिण्यो भवति।

मद०—यतस्तावदार्याया दृष्टिरिहाभिरमति हृदयं भवति च तस्य-कारणं किं पृच्छयते।

वसन्त०—हञ्जे सखी जनादुपहसनीयतां रक्षामि।

मद०—आर्ये एवं नेदम्। सखीजनचित्तानुवर्त्यवलाजनो भवितः।

चेटी०—आर्ये माताज्ञापयति गृहीतावगुण्ठनं पक्षद्वारे सज्जं प्रवह-णम्। तत् गच्छेति।

---

१. विज्ञापयितव्या-तव्यान्त प्रत्यय, कृदन्त। २. आज्ञापितव्या—तव्यान्त प्रत्यय, कृदन्त। ३. रोचते-√ रुच्-प्रथम पु० एक० वर्तमान०, रुचता है।

वसन्त०—हञ्जे किमार्य चारुदत्तो मां नयिनेष्यति ।

चेटी—आर्ये येन प्रवहणेन सह सुवर्णदशसाहस्त्रिकोलंकारोनुप्रेषितः।

वसन्त०—कः पुनः सः ।

चेटी—एष एव राजश्याल संस्थानः ।

वसन्त—अपेहि मा पुनरेव भणिष्यसि ।

चेटी—प्रसीदतु प्रसीदत्वार्या । संदेशेनास्मि प्रेसिता ।

वसन्त०—अहं संदेशस्यैव कुप्यामि ।

चेटी०—तत्किमित्यत्त विज्ञापयिष्यामि ।

वसन्त०—एवं पिज्ञापयितव्या यदि मां जीवन्तीम् इच्छसि । तत् एवं न पुनः अहं.......आज्ञापयितव्या ।

चेटी—यथा ते रोचते ।

उद्धरण सं० १२

शौरसेनी मृच्छकटिक

(षष्ठोङ्क ततः—प्रविशति चेटी) ।

चेटी—कंध अज्ज वि अज्जआ ण विवुज्झदि ।[1] भोदु। पविसिअ[2] पडिवोधइस्सं ।[3] (इति नाट्येन परिक्रामति)

(ततः प्रविशत्या च्छादित शरीरा प्रसुप्ता वसन्तसेना ।)

चेटी—(निरुप्य) उत्थेदु उत्थेदु[4] अज्जआ । पभादं संवुत्त ।

---

१. विवुध्यते-वि-उपसर्ग √वुध्-प्रथम पु० एक० वर्तमान, जागती हैं । २. प्रविश्य—वर्तमानकालिक कृदन्त, प्रवेश करके । ३. प्रतिवोधयिष्यामि-प्रति-उपसर्ग √वुध्- उत्तम पु० एक० भविष्य० प्रेरणार्थक०, जगाऊँगी। ४. उत्तिष्ठतु उत्तिष्ठतु-√स्था-मध्यम पु० एक० विधि० ।

वसन्तसेना (प्रतिबुध्य)—कधं रत्ति ज्जेव्व पभादं संवुत्तं ।

चेटी—अम्हाणं[१] एसो पभादो । अज्जआए उण रत्ति ज्जेव्व ।

वसन्तसेना—हञ्जे कहिं उण तुम्हाणं जूदिअरो ।

चेटी—अज्जए वड्ढमाणअं समादिसिअ[२] पुप्फकरण्डअं जिण्णुज्जाणं[३] गदो अज्ज चारुदत्तो ।

वसंतसेना—कि समादिसिअ ।

चेटी—जोएहि रादीए पवहणं । वसन्तसेना गच्छदु त्ति ।[४]

वसन्तसेना—हञ्जे कहिं[५] मए गन्तव्वं[६] ।

चेटी—अज्जए जहिं चारुदत्तो ।

वसंतसेना—(चेटी परिष्वज्य) हञ्जे सुठ्ठु ण णिज्झाइदो[७] रादीए । ता अज्ज पच्चक्खं पेक्खिस्सं[८] । हञ्जे कि पविट्ठा अहं इह अब्भन्तरचदुस्सालअं ।

चेटी—ण केवलं अब्भन्तरचदुस्सालअं सव्वजणस्स वि हिअअं पविट्ठा ।

वसन्तसेना—अवि संतप्पदि चारुदत्तस्स परिअणो ।

चेटी—सन्तप्पिस्सदि ।[९]

वसंतसेना—कदा ।

चेटी—जदो अज्जआ गमिस्सदि ।

---

१. अस्माकम्-सर्वनाम प० बहु० पु० अस्मद्—। २. समादिश्य-सम्, √दिश्-आज्ञा करना-संबंध० कृदन्त । ३. जीर्णोद्यानं—द्वितीया० एक० नपुं०, प्राकृत में शब्दों का सन्धि-रूप संस्कृत से कहीं-कहीं भिन्न रूप में मिलता है । ४. गच्छतु-√गम्-प्रथम पु० एक० विधि० वर्तमान० । ५. कुत्र-क्रियाविशेषण । ६. गन्तव्यम्-√गम्-तव्यान्त प्रत्यय, कृदन्त । ७. निर्ध्यातो-निर्+√ध्यै-देखनेवाला, क्त प्रत्यय । ८. प्रेक्षिष्ये प्र-उपसर्ग- √ईक्ष्-उत्तम पु० एक० भविष्य० । ९. सन्तपस्यते—√तप्-प्रथम पु० एक० भविष्य० ।

वसंतसेना—तदो मए पठमं सन्तप्पिदव्वं।[1] (सानुनयम्)। हञ्जे गेह्ण एदं रअणावलिं। मम बहिणिआए अज्जाधूदाए गदुअ[2] समप्पेहि। भणिदव्वं च अहं सिरि चारुदत्तस्स गुणणिज्जिदा दासी तदा तुम्हाणं पि। ता एसा तुह ज्जेव्व कण्ठाहरणं भोदु रअणावली।

चेटी—अज्जए कुप्पिस्सदि चारुदत्तो अज्जाए दाव।

वसंतसेना—गच्छ ण कुप्पिस्सदि।

चेटी—(गृहीत्वा)-जं आणवेसि।[3]

(इति निष्क्रम्य पुनः प्रविशति)

चेटी—अज्जए भणादि अज्जा धूदा। अज्जउत्तेण तुम्हाणं पसादीकदा। ण जुत्तं मम एदं गेह्णिदुं। अज्जउत्तो ज्जेव्व मम आहरणविसेसो त्ति जाणादु भोदी।[4]

(ततः प्रविशति दारकं गृहीत्वा-रदनिका)

रदनिका—एहि वच्छ सअडिआए कीलम्ह।[5]

दारकः (सकरुणम्)—रदनिए किं मम एदाए मट्टिआसअडिआए।[6] त ज्जेव्व सोवण्णसअडिअं देहि।[7]

रदनिका—(सनिर्वेदं निश्वस्य) जाद कुदो अम्हाणं सुवण्णववहारो। तादस्स पुणो वि रिद्धीए सुवण्णसअडिआए कीलिस्ससि।[8] ता

---

१. सन्तप्तव्यम्—तव्यान्त प्रत्यय। २. गत्वा—√गम्-क्त्वा प्रत्यय-संबंध-सूचक कृदन्त। ३. आज्ञापयसि—मध्यम पु० एक० वर्तमान० प्रेरणार्थक। ४. भवत्—युष्मद् सर्वनाम-आप, स्त्रीलिंग-भवती। ५. क्रीडामः-√क्रीड् मध्यम पुरुष बहु०, वर्तमान, प्राकृत में सं० द्वि० के प्रयोग बहुवचन के सदृश हैं। ६. मृत्तिकाशकटिकया—तृ० एक० नपुं०। ७. √दा-देना—मध्यम पु० एक० वर्तमान०। ८. क्रीडिष्यसि—मध्यम पु० एक०, भविष्य० खेलोगे।

जाव विणोदेमि णं। अज्जआवसन्तसेणाए समीवं उवसप्पिस्सं।[1] (उपसृत्य)-अज्जए पणमामि।

वसन्तसेना—रदणिए साअदं[2] दे। कस्स उण अअं दारओ अणलंकिदसरीरो वि चन्द मुहो आणन्देदि मम हिअअं।

रदनिका—एसो क्खु अज्ज चारुदत्तस्स पुत्तो रोहसेणो णाम।

वसन्तसेना—(बाहूप्रसार्य)—एहि मे पुत्तअ अलिङ्ग (इत्यङ्के-उपवेश्य)। अणुकिदं अणेन पिदुणो रूवं।

रदनिका—ण केवलं रूवं सीलं पि तक्केमि। एदिणा[3] अज्जचारुअत्ताणअं विणोदेदि।

वसन्तसेना—अध किं णिमित्तं एसो रोअदि।

रदनिका—एदिणा पडिवेसिअगहवइदारअकेरिआए सुवण्णसअडिआए कीलिदं। तेण अ सा णीदा।[4] तदो उण तं मग्गन्तस्स[5] मए इअं मट्टिआसअडिआ कदुअ दिण्णा। तदो भणादि रदणिए किं मम एदाए मट्टिआसअडिआए। तं ज्जेव सोवण्णा सअडिअं[6] देहि त्ति।

वसंत—हद्धी हद्धी[7], अअं पि णाम परसम्पत्तीए[8] सन्तप्पदि। भअवं कअन्त पोक्खरवत्तपडिदजलविन्दुसरिसेहिं[9] कीलसि तुमं पुरिसमाग्यधेएहि। (इति सास्रा)। जाद मा रोद। सोव्णासअडिआए कीलिस्ससि।

---

१. उपसर्पिष्यामि—उप+√सृप-उत्तम पु० एक०, भविष्य०, चलती हूँ। २. स्वागतं—भूत० कृदन्त का संज्ञा रूप। ३. एतेन—तृ० एक० पुं० एतद्-सर्वनाम्। ४. आनीता—√नी-ले आना-भूतकालिक कृदन्त, प्रेरणार्थक० स्त्री०। ५. देशी-माँगना—संस्कृत-रूप-याचतः-वर्तमान कृदन्त। ६. सुवर्णशकटिकाम्-द्वितीया० एक० नपुं०। ७. हा धिक् हा धिक्—शोक-सूचक अव्यय। ८. परसंपत्त्या—पंचमी विभक्ति, एक० [illegible] ९. सदृशैः—तृतीया० एक० नपुं०

दारकः—रदणिए का एसा।

वसंत—दे पिदुणो[1] गुणणिज्जिदा दासी।

रदनिका—जाद अज्जआ दे जणणी भोदि।

जणणी ता कीस अलङ्किदा।

वसंत—जाद मुद्धेण मुहेण अदिकरुणं मन्तेसि[2] एसा दाणिं दे जणणी संवुत्ता। ता गेह्ण[3] एवं अलङ्कारअं। सोवण्णा सअडिअं घडावेहि।[4]

दारकः—अवेहि। ण गेह्लिस्सं। रोदसि तुमं।

वसंत० (अश्रूणि प्रमृज्य)—जाद ण रोदिस्सं। गच्छ कील। (अलंकारैः मृच्छकटिकां पूरयित्वा)। जाद कारेहि[5] सोवण्णसअडिअं

इति दारकमादाय निष्क्रान्ता रदनिका।

संस्कृत-छाया

चेटी—कथमद्याप्यार्या न विबुध्यते। भवतु, प्रविश्य प्रतिबोधयिष्यामि। उत्तिष्ठतु उत्तिष्ठत्वार्या प्रभातं संवृतम्।

वसन्त०—कथं रात्रिरेव प्रभातं संवृतम्।

चेटी—अस्माकमेष प्रभातः। आर्यायाः पुना रात्रिरेव।

वसन्त०—हञ्जे कुत्र पुनर्युष्माकं द्यूतकरः।

चेटी—आर्ये वर्धमानकं समदिश्य पुष्पकरकरण्डकं जीर्णोद्यानं गतः आर्य चारुदत्तः।

वसन्त०—किं समादिश्य।

---

१. पितुः–पंचमी० एक० पुलिंग। २. मन्त्रयसि √मन्त्र-मध्यम पु० एक० वर्तमान०। ३. ग्रहाण-√ग्रह-मध्यम पु० एक० विधि०। ४. √घट्-बनाना—मध्यम पु० एक० विधि० ५. कारय-√कृ-मध्यम पु० एक० विधि० प्रेरणार्थक०।

चेटी—योजय रात्रौ प्रवहणम्। वसन्तसेना गच्छत्विति।

वसन्त०—हञ्जे कुत्रमया गन्तव्यम्।

चेटी—आर्ये यत्र चारुदत्तः।

वसन्त०—हञ्जे सुष्ठु न निर्ध्यातो रात्रौ। तदद्य प्रत्यक्ष प्रेक्षिष्ये। हञ्जे किं प्रविष्टाऽहमिहाभ्यन्तरं चतुःशालम्।

चेटी—न केवलमभ्यन्तर चतुःशालं सर्वजनस्यापि हृदयं प्रविष्टा।

वसन्त०—अपि संतप्यते चारुदत्तस्य परिजनः।

चेटी—संतपत्स्यते।

वसन्त०—कदा।

चेटी—यदार्या गमिष्यति।

वसन्त०—तदा मया प्रथमं संतप्तव्यम्। हञ्जे गृहाण तां रत्नावलीम्। मम भगिन्या आर्या धूतायै गत्वा समर्पय। भणितव्यं च अहं श्री चारुदत्तस्य गुणनिर्जिता दासी तदा युष्माकमपि। तदेषा तवैव कण्ठाभरणं भवतु रत्नावली।

चेटी—आर्ये कुपिष्यति चारुदत्त आर्यायै तावत्।

वसन्त०—गच्छ। न कुपिष्यति।

चेटी—गृहीत्वेति। यदाज्ञापयसि। आर्ये भणत्यार्या धूता। आर्यपुत्रेण युष्माकं प्रसादीकृता। न युक्तं ममैतां गृहीतुम्। आर्यपुत्र एव ममाभरणविशेष इति जानातु भवती।

रद०—एहि वत्स शकटिकया क्रीडावः।

दारक०—रदनिके किं ममैतया मृत्तिकाशकटिकया। तामेव सुवर्ण शकटिकां देहि।

०—तात कुतो अस्माकं सुवर्णव्यवहारः। तातस्य पुनरपि ऋद्धया सुवर्णशकटिकया क्रीडिष्यसि। तद्यावद्विनोदयाम्येनम्। आर्यावसन्तसेनायाः समीपमुपसर्पिष्यामि। आर्ये प्रणमामि।

वसन्त०—रदनिके स्वागतं ते। कस्य पुनरयं दारकोनलंकृत शरीरोऽपि चन्द्रमुख आनन्दयति मम हृदयम्।

रद०—एष खल्वार्य चारुदत्तस्य पुत्रो रोहसेनो नाम ।

वसन्त०—एहि मे पुत्रक आलिङ्ग । अनुकृतमनेन पितृरूपम् ।

रद०—न केवलं रूपं शीलमपि तर्कयामि । एतेनार्य चारुदत्त आत्मानं विनोदयति ।

वसन्त्र०—अथ किं निमित्तमेष रोदिति ।

रद०—एतेन प्रतिवेशिकगृहपतिदारककृतया सुवर्णशकटिकया क्रीडितम् तेन च सानीता । ततः पुनस्तां याचतः मया इयं मृतिकाशकटिका कृत्वा दत्ता । तदा भणाति रदनिके किं ममैतया मृत्तिकाशकटिकया । तामेव सुवर्णशकटिकां देहीति ।

वसन्त०—हा धिक् हा धिक्, अयमपि नाम पर संपत्त्या संतप्यते । भगवन्कृतान्त, पुष्कर-पत्र पतितजलविन्दुसदृशैः क्रीडसि त्वं पुरुषभाग-धेयैः । तात मा रोदिहि । सुवर्ण शकटिकया क्रीडिष्यसि ।

दारकः—रदनिके कैषा ।

वसन्त०—ते पितुर्गुणनिर्जिता दासी ।

रद०—तात, आर्य ते जननी भवति ।

दारक—रदनिके अलीकं त्वं भणसि । यस्मस्माकमार्याजननी, तत्कीस अलंकृता ।

वसन्त०—तात मुग्धेन मुखे नातिकरुण मन्त्रयसि । एषेदानीं ते जननी संवृता । तद्गृहाणेतमलंकारं । सुवर्णशकटिकाम् घडावेहि कारय ।

दारक—अपेहि गृहीष्यामि । रोदसि त्वम् ।

वसन्त०—तात न रोदिष्यामि । गच्छ क्रीड । तात कारय सुवर्ण-शकटिकाम् ।

उद्धरण सं०—१३

शौरसेनी *रत्नावली*

(चतुर्थोऽङ्कः)

(ततः प्रविशति रत्नमालामादाय सास्रा सुसंगता)।

सुसंगता—(सकरुणं निःश्वस्य)—हा पिअसहि साअरिए।[1] हा लज्जालुए! हा सहीगणवच्छले! हा उदारसीले! हा सोम्मदंसणे! कहिं गदासि।[2] देहि मे पडिवअणं। (इति रोदिति।) (ऊर्ध्वमवलोक्य निश्वस्य च) हं हो देव्वहदअ। अकरुण। असामण्णरूवसोहा तादिसी तुए जइ णिम्मिदा ता कसि उण ईदिसं अवत्थन्तरं पाविदा।[3] इयं च रअणमाला जीविदणिरासाए ताए कस्सवि वह्मणस्स हत्थे पडिवादेसुत्ति भणिअ मम हत्थे समप्पिदा। ता जाव कंपि वह्मणं अण्णेसामि।[4] (नेपथ्यभिमुखमवलोक्य) अए। कहं एसो क्खु वह्मणो वसन्तओ इध एव आअच्छदि। ता इमस्सिं एव्व पडिवादइस्सं।[5] (ततः प्रविशति हृष्टो वसन्तकः)।

वसन्तक—ही ही[6]। भो भोः।[6] अज्ज क्खु पिआवअस्सेण पसादिदाएतत्त भोदीऐ वासवदत्ताए बंधाणदो मोचिअ सहत्थदिण्णेहि मोदअत्तडडुआहिं उदरं मे सुपूरिदं किदं।[7] अण्णं च। एदं पट्टंसुअजुअलं कण्णाभरणं अ दिण्णं। ता जाव दाणिं पिअवअस्सं।[8] (इति परिक्रमति)।

---

१. प्रियसखि सागरिके-संबोधन, स्त्री०। २. गताऽसि—गता-भूत० कृदन्त-स्त्री, असि-√अस्- म० पु० एक० वर्तमान०। ३. प्रापिता—क्त, प्रत्यय-भूतकालिक कृदन्त, प्रेरणार्थक०। ४. अन्विष्यामि-√ इष्- उत्तम० पु० एक० भविष्य०। ५. प्रतिपादयिष्यामि-उत्तम० पु० एक० भविष्य०। ६. ही ही! भो भो! विदूषक द्वारा प्रयुक्त संबोधन का रूप। ७. कृतं—भूतकालिक कृदन्त। ८. प्रेक्षिष्ये—उत्तम० पु० एक०, भविष्य०।

सुसंगता (रुदती सहसोपसृत्य)—अज्ज वसन्तअ। चिट्ठ दाव तुमं मुहुत्तअं।

वसन्तक (दृष्ट्वा)—कधं सुसंगदा। सुसंगदे। एत्थ किं णिमित्तं रोदीअदि[1]। ण क्खु साअरिआए अच्चाहिदं किंपि संवुत्तम्।

सुसंगता—एदं ज्जेव्व णिवेदइदकामा। सा क्खु तवस्सिणी देवीए उज्जइणिं णीदेत्ति प्पवादं कदुअ उवत्थिदे अद्धरत्ते ण जाणीअदि[2] कहिं णीदेत्ति।

वसन्तक (सोद्वेगम्)—हा भोदि साअरिए! हा असामण्णरूवसोहे! हा मिदुभासिणि। अदिणिग्घिणं दाणिं देवीए किदम्। तदो तदो।

सुसंगता—एसा रअणमाला ताए जीविदणिरासाए अज्जवसन्तअस्स हत्थे पडिवादेसित्ति भणिअ मम हत्थे समप्पिदा। ता णं[3] गेण्हदु[4] अज्जो एदम्।

वसन्तक (सास्रं सकरुणं कर्णौ पिधाय)—भोदि णं मम ईदिसे पत्थावे एदं घेत्तुं हत्थो पसरदि। (इत्युभौ रुदतः)।

सुसंगता (अञ्जलिं बद्ध्वा)—ताए एव्व अणुग्गहं करन्तो अङ्गीकरेदु एदं अज्जो।

वसन्तक (विचिन्त्य)—अहवा। उवणेहि।[5] जेण इमाए ज्जेव्व साअरिआ विरहकुण्ठिदं पिअवअस्सं विणोदेमि।[6]

(सुसंगता वसन्तकस्य हस्ते रत्नमालां ददाति)।

वसन्तक (गृहीत्वा निरूप्य सविस्मयम्)—भोदि कुदो उण ईदिसस्स अलंकारस्स समागमो।

---

१. रुद्यते—√रुद्-प्र० पु० एक० वर्तमान०, कर्मवाच्य। २. ज्ञायते—√ज्ञा—प्र० पु० एक०, वर्तमान० कर्मवाच्य। ३. ननु—अव्यय। ४. गृह्णातु—मध्यम० पु० एक० विधि०। ५. उपनय—√नी-मध्यम पु० एक० विधि०। ६. विनोदयामि—उत्तम० पु० एक० वर्तमान०।

सुसंगता—अज्ज मएवि सा कोदूहलेण पुच्छिदा असि।

वसन्तक—तदा ताए किं भणिदं।[१]

सुसंगता – तदो सा उद्धं पेक्खिअ दीहं णिस्ससिअ। सुसंगदे। किं दाणिं तुह इमाए[२] कथाए त्ति भणिअ रोदिदु पउत्ता।

वसन्तक—णं कधिदं[३] एव्व ताए।[४] सामण्णदुल्लहेण इमिणा परिच्छदेण सव्वधा महाभिजणसमुप्पण्णाए होदव्वं।[५] सुसंगदे। पिअवअस्सोदाणिं कहिं।

सुसंगता—अज्ज एसो क्खु भट्टा देवी भवणदो णिक्कमिअ फडिअसिलामण्डवं गदो।[६] ता गच्छदु[७] अज्जो। अहंवि देवीए वासवदत्ताए परिचारिणी भविस्सं।

संस्कृत-छाया

सुसं०—हा प्रियसखि सागरिके! हा लज्जालुके! हा सखीगणवत्सले! हा उदारशीले! हा सौम्यदर्शने! कुत्र गताऽसि। देहि मे प्रतिवचनम्। हं हो दैवहतक। अकरुण। असामान्यरूपशोभा तादृशी त्वया यदि निर्मिता तत्कस्मात्पुनरीदृशमवस्थान्तरं प्रापिता। इयं च रत्नमाला जीवितनिराशया तया कस्यापि ब्राह्मणस्य हस्ते प्रतिपादयेति भणित्वा मम हस्ते समर्पिता। तद्यावत्कमपि ब्राह्मणमन्विष्यामि। अये। कथमेप खलु ब्राह्मणो वसन्तक इहैवागच्छति। तदस्मै एव प्रतिपादयिष्यामि।

वस०—ही ही। भो भोः। अद्य खलु प्रियवयस्येन प्रसादितया

---

१. भणितं-क्त प्रत्यय, भूत० कृदंत। २. अनया—तृ० एक० नपुं० ३. कथितं—क्त प्रत्यय, भूतकालिक कृदन्त। ४. त्वया—मध्यम पु० तृ० एक० युष्मद् सर्वनाम। ५. भवितव्यम्—तव्यान्त प्रत्यय, भविष्यकालि[क] कृदंत। ६. गतः-भूतकालिक कृदन्त। ७. गच्छत—मध्यम पु० एक० वर्तमान०, विधि०।

तत्रभवत्या वासवदत्तया बन्धनान्मोचयित्वा स्वहस्तदत्तैर्मोदकलड्डुकैरुदरं मे सुपूरितं कृतम्। अन्यच्च। एतत्पट्टांशुकयुगलं कर्णाभरणं च दत्तम्। तद्यावदिदानीं। प्रियवयस्यं प्रेक्षिष्ये।

सुसं०—आर्य वसन्तक। तिष्ठ तावत्त्वं मुहूर्तम्।

वस०—कथं सुसंगता। सुसंगते। अत्र किं निमित्तं रुद्यते। न खलु सागरिकाया अत्याहितं किमपि संवृत्तम्।

सुसं०—एतदेव निवेदयितुकामा। सा खलु तपस्विनी देव्योज्जयिनीं नीतेति प्रवादं कृत्वोपस्थितेऽर्धरात्रे न ज्ञायते कुत्र नीतेति।

वस०—हा भवति सागरिके! हा असामान्यरूपशोभे! हा मृदुभाषिणि! अतिनिर्घृणमिदानीं देव्या कृतम्। ततस्ततः।

सुसं०—एषा रत्नमाला तया जीवितनिराशयार्यवसन्तस्य हस्ते प्रतिपादयेत्युक्त्वा मम हस्ते समर्पिता। तन्ननु गृहाणत्वार्य एताम्।

वस०—भवति। न मे ईदृशे प्रस्ताव एतद्वोढुं हस्तः प्रसरति।

सुसं०—तस्या एवानुग्रहं कुर्वन्नङ्गीकरोत्वेतदार्यः।

वस० अथवा। उपनय। येनैतयैव सागरिकाविरहकुण्ठितं प्रियवयस्यं विनोदयामि। भवति। कुतः पुनरीदृशस्यालंकारस्य समागमः।

सुसं०—आर्य मयापि सा कौतूहलेन पृष्टाऽऽसीत्।

वस०—ततस्तया किं भणितम्।

सुसं०—ततः सोर्ध्वं प्रेक्ष्य दीर्घं निश्वस्य। सुसंगते किमिदानीं तवानया कथयेति भणित्वा रोदितुं प्रवृत्ता।

वस०—ननु कथितमेव तया। सामान्यजनदुर्लभेनानेन परिच्छदेन सर्वथा महाभिजनसमुत्पन्नया तया भवितव्यम्। सुसंगते। प्रियवयस्य इदानीं कुत्र।

सुसं०—आर्य एष खलु भर्ता देवीभवनतो निष्क्रम्य स्फटिकशिलामण्डपं गतः। तद्गच्छत्वार्यः। अहमपि वासवदत्तायाः परिचारिणी भविष्यामि।

उद्धरण सं०-१४

जैन-शौरसेनी समयसार

(तृतीय परि०-कर्म)

१—जाव ण वेदि[1] विसेसं तरं तु आदासवाण दोह् णं[2]पि
अण्णाणी ताव दु सो कोधादिसु वट्टदे[3] जीवो[4] ||७४||

२—कोधादिसु वट्टंतस्स तस्स कम्मस्स संचओ होदि
जीवस्सेवं बंधो भणिदो[1] खलु सव्वदरसीहिं[2] ||७५||

३—जइया इमेण जीवेण अप्पणो[1] आसवाण[2] य तहेव
णादं होदि विसेसंतरं तु तइया ण बंधो से ||७६||

४—णादूण[1] आसवाणं असुचित्तं च विवरीय[2] भावं च
दुक्खस्स कारणं ति य तदो णियत्तिं कुणदि[3] जीवो ||७७||

५—अहमिक्को खलु सुद्धो य णिम्ममो णाणदंसणसमग्गो
तह्मि[1] ठिदो तच्चित्तो सव्वे एदे खयं णेमि[2] ||७८||

१—१. वेत्ति √विद्,-प्र० पु० एक० वर्तमान०-जानता है। २. द्वयोः-प०
बहु० संख्यावाचक०। ३. वर्तते-√ वृत-प्र० पु० एक० वर्तमान०।
४. जीवः-क्त-प्रत्यय-भूत० कृदन्त प्रथमा० एक० पुलिंग।

२—१. भणितः-√भण् क्त प्रत्यय-वर्तमान० कृदंत। २.सर्वदर्शिभिः-तृ०
बहु० पु०।

३—१. आत्मनः-प्र० एक० पु०। २. आस्रवाणां-प० बहु० पु०।

४—१. ज्ञात्वा—संबंधसूचक कृदन्त। २. विपरीत-विशेषण-त>-अ-य-
अर्धमागधी की विशेषता। ३. करोति—प्र० पु० एक० वर्तमान०।

५—१. तस्मिन्—सप्तमी० एक० पु०। २. नयामि-√ नी-उत्तम पु०
एक० वर्तमान०।

६—जीवणिबद्धा एदे अधुव[1] अणिच्चा तहा असरणा य
दुक्खा[2] दुक्खफलाणि य णादूण णियत्तदे[3] तेसु[4] ॥७६॥

७—कम्मस्स य परिणामं णोकम्मस्स य तहेव परिणामं
ण करेदि एदमादा जो जाणदि सो हवदि णाणी ॥८०॥

८—कत्ता आदा[1] भणिदो ण य कत्ता केण सो उवाएण
धम्मादी[2] परिमाणे जो जाणादि सो हवदि णाणी[2] ॥८१॥

९—णवि परिणमदि ण गिह णदि उत्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए
णाणी जाणंतो वि हु पुग्गलकम्मं अणेय[2] विहं ॥८२॥

१०—णवि परिणमदि ण गिहणदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए
णाणी जाणंतो[1] विहु सगपरिणामं[2] अणेय विहं ॥८३॥

११—णवि परिणामदि णं गिह णदि उप्पज्जदि[1] णं परदव्वपज्जाए
णाणी जणंतो वि हु पुग्गलकम्मफल भणंतं[2] ॥८४॥

१२—णवि परिणमदि ण गिह णदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए
पुग्गलदव्वं पि तहापरिणमदि सएहिं[1] भावेहिं[2] ॥८५॥

६—१. अध्रुवा-अस्थिर। २. दुःखानि:—द्वि० बहु० नपु०। ३. निवर्तते-नि-उपसर्ग, प्र० पु० एक० वर्तमान०। ४. तेपु-सप्तमी० बहु० पु० 'तेपु' के अनंतर 'विषयेषु' पद का अध्याहार होगा।

८—१. आत्मा—प्रथमा० एक० पुलिंग। २. धर्मादीन् परिणामान्-द्वि० बहु० पु० २. ज्ञानी-प्र० एक० पु०।

९—१. परिणमति-प्र० प्र० एक० वर्तमान० २. अनेक--क> -अ -य, अर्धमागधी की विशेषता।

१०—१. जानन्त—शतृ-प्रत्यय-वर्तमान० कृदंत। २. स्वकपरिणामं—द्वि० एक० पु०-अपने विचारों को।

११—१. उत्पद्यते-प्र० पु० एक० वर्तमान० २. पुद्गलकर्मफलमनंतं—द्वि० एक० नपुं०—सांसारिक कर्मों के अनेक फलों को।

१२—१. स्वकः—तृ० बहु० स्व-सर्वनाम। २. भावैः—तृ० बहु० पु०।

१३—जीवपरिणामहेदुं कम्मत्तं पुग्गला[1] परिणमं...
पुग्गल कम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदि ॥८६॥

१४—णवि कुव्वदि कम्मगुणे[2] जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे
अण्णोण्ण णिमितेण दु परिणामं जाण[2] दोण्हं पि ॥८७॥

१५—एदेण कारणेण दु कत्ता आदा सएण भावेण
पुग्गलकम्मकदाणं[1] ण दु कत्ता सव्वभावाणं[2] ॥८८॥

१६—णिच्छयणयस्स एवं आदा अप्पाणमेव हि करेदि
वेदयदि[1] पुणो तं चेव जाण अत्ता दु अत्ताणं ॥८९॥

१७—ववहारस्स दु आदा पुग्गलकम्मं करेदि अणेय विहं
तं चेव य वेदयदे पुग्गलकम्मं अणेय विहं ॥९०॥

१८—जदि पुग्गलकम्ममिणं कुव्वदि तं चेव वेदयदि आदा
दोकिरियावादित्तं[1][2] पसजदि[1][3] सम्मं जिणावमदं ॥९१॥

१९—जह्मा[1] दु अत्तभावं च दोवि कुव्वंति
तेण दु मिच्छादिट्ठी[1] दोकिरियावादिणो[3] होंति ॥९२॥

१३—१. पुद्गलाः—प्र० पु० पु०, सांसारिक वस्तुएँ ।
१४—१. कर्मगुणान्—द्वि०बहु०पु० २. जानीहि—आ-म०पु०एक०वर्तमान०।
१५—१. पुद्गलकर्मकृतानां—प० बहु० पु०, सांसारिक कृत्यों को करनेवाले पु०। २. सर्वभावानां—प० बहु० पु०, सब भावों (परिवर्तनों) का ।
१६—१. वेदयते √विद् प्र० पु० एक० वर्तमान०—जानता है ।
१८—१. द्विक्रियावादित्वं—प्र०एक०नपुं०,विरोधी क्रिया को बताने का भाव । २.प्रसजति—प्र+√सृज—प्र० पु० एक० वर्तमान०-उत्पन्न करता है ।
१९—१. यस्मात्— -स्म > -ह्म -ध्वनिविपर्याय, पं० एक० नपुं०, यद् सर्वनाम । २. मिथ्यादृष्टयोः—प० बहु० पु०, मिथ्या दृष्टि का । ३. द्विक्रियावादिनो— प्र० बहु० पु०, विरोधी विचारवाले ।

२०—पोग्गलकम्मणिमित्तं[1] जह आदा कुणदि[2] अप्पणो भावं
पोग्गलकम्मणिमित्त तह वेदेदि अप्पणो भावं ॥६३॥
२१—मिच्छत्तं पुण दुविहं जीवमजीवं तहेव अण्णाणं
अविरदि जोगो मोहो कोधादीया इमे[1] भावा[2] ॥६४॥
२२—पोग्गलकम्मं मिच्छं जोगो अविरदि अण्णाणमज्जीवं
उवओगो[1] अण्णाणं अविरदि मिच्छत्त जीवो दु ॥६५॥
२३—उवओगस्स अणाइ[1] परिणामा तिण्णमोहजुत्तस्स
मिच्छत्तं अण्णाणं अविरदि भावो य। णादव्वो[2] ॥६६॥
२४—एदेसु य उवओगो तिविहो[1] सुद्धो णिरंजणो भावो
जं सो करेदि भावं उवओगो तस्स सो कत्ता ॥६७॥
२५—जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स
कम्मत्तं परिणमदे तह्मि सयं पोग्गलं दव्वं ॥६८॥
२६—परमप्पाणं कुव्वदि अप्पाणं पि य परं करंतो सो
अण्णाणमओ जीवो कम्माणं[1] कारगो[2] होदि ॥६९॥
२७—परमप्पाणमकुव्वी अप्पाणं पि य परं अकुव्वंतो[1]
सो णाणमओ जीवो कम्माणमकारगो[2] होदि ॥१००॥

२०—१. पुद्गलकर्म निमित्तं—सांसारिक कर्म की सहायता से। २. करोति-प्र० पु०एक० वर्तमान०।
२१—१. इमे—प्र० बहु० पु०। २. भावा:-प्र० बहु० पु०।
२२—१. उपयोग:—निरंतर बोध।
२३—१. अनादय:—पंचमी एक० पु०-अनादि समय से। २. ज्ञातव्य—तव्यान्त प्रत्यय, भविष्यकालिक कृदन्त।
२४—१. त्रिविध:—तीन विधियाँ—(मिथ्या-विश्वास, मिथ्या-ज्ञान और मिथ्या-कर्म)।
२६—कर्मणां—ष० बहु० नपुं०। २. कारक:—करने वाला -क > -ग,-य अर्धमागधी की विशेषता।
२७—१. अकुर्वन्—वर्तमानकालिक कृदन्त—न करते हुए। २. कर्मणाम-कारको—काम को न करनेवाला।

संस्कृत-छाया

१—यावन्न वेत्ति विशेषांतरं त्वात्मास्रवयोर्द्वयोरपि
अज्ञानी तावत्स क्रोधादिषु वर्त्तते जीवः ॥

२—क्रोधादिषु वर्त्तमानस्य तस्य कर्मणः संचयो भवति
जीवस्यैवं बंधो भणितः खलु सर्व दर्शिभिः ॥

३—यदानेन जीवेनात्मनः आस्रवाणां च तथैव
ज्ञातं भवति विशेषांतरं तु तदा न बंधस्तस्य ॥

४—ज्ञात्वा आस्रवाणामशुचित्वं च विपरीत भावं च
दुःखस्य कारणानीति च ततो निवृत्तिं करोति जीवः ॥

५—अहमेकः खलु शुद्धश्च निर्ममतः ज्ञानदर्शन समग्रः
तस्मिन् स्थितस्तच्चित्तः सर्वानेतान् क्षयं नयामि ॥

६—जीवनिबद्धा एते अध्रुवा अनित्यास्तथा अशरणाश्च
दुःखानि दुःखफलानि च ज्ञात्वा निवर्तते तेषु (विषयेषु) ॥

७—कर्मणश्च परिणामं नो कर्मणश्च तथैव परिणामं
न करोत्येनमात्मा यो जानाति स भवति ज्ञानी ॥

८—कर्त्ता आत्मा भणितः ण च केन स उपायेन
धर्मादीन् परिणामान् यो जानाति स भवति ज्ञानी ॥

९—नापि परिणमति न गृह्णात्युत्पद्यते न परद्रव्यपर्याये
ज्ञानी जानन्नपि खलु पुद्गलकर्मानेकविधम् ॥

१०—नापि परिणमति न गृह्णात्मुत्पद्यते न परद्रव्यपर्याये
ज्ञानी जानन्नपि खलुस्वकपरिणाममनेकविधम् ॥

११—नापि परिणमति न गृह्णात्युपद्यते न परद्रव्यपर्याये
ज्ञानी जानन्नपि खलुपुद्गलकर्म फलमनंतम् ॥

१२—नापि परिणमति न गृह्णात्युत्पद्यते न परद्रव्यपर्यायेण
पुद्गल द्रव्यमपि तथा परिणमति स्वकैर्भावैः ॥

१३—जीवपरिणामहेतुं कर्मत्वं पुद्गलाः परिणमन्ति
पुद्गलकर्मनिमित्तं तथैव जीवोऽपि परिणमति ॥

१४—नापि करोति कर्मगुणान् जीवः कर्म तथैव जीवगुणान्
अन्योन्य निमित्तन तु परिणामं जानीहि द्वयोरपि ॥

१५—एतेन कारणेन तु कर्त्ता आत्मा स्वकेन भावेन
पुद्गलकर्मकृतानां न तु कर्त्ता सर्वभावानाम ॥

१६—निश्चय नयस्यैवमात्मानमेव हि करोति
वेदयते पुनरतं चैव जानीहि आत्मा त्वात्मानम ॥

१७—व्यवहारस्य त्वात्मा पुद्गलकर्म करोति नैकविधम्
तच्चैव पुनर्वेदयते पुद्गलकर्म नैक विधम् ॥

१८—यदि पुद्गलकर्मेदं करोति तच्चैव वेदयते आत्मा
द्विक्रिया वादित्व प्रसजति सम्यक् जिनावमतम् ॥

१९—यस्माच्चात्मभावं पुद्गलभावं च द्वावपि कुर्वंति
तेन तु मिथ्या दृष्टयो द्विक्रियावादिनो भवन्ति ॥

२०—पुद्गलकर्म निमित्तं यथात्मा करोति आत्मनः भावम्
पुद्गलकर्म निमित्त तथा वेदयति आत्मनो भावम ॥

२१—मिथ्यात्वं पुनर्द्विविधं जीवोऽजीवस्तथैव ज्ञानम
अविरतियोगो मोह क्रोधाद्या इमे भावाः ॥

२२—पुद्गलकर्म मिथ्यात्वं योगोऽविरति ज्ञानमजीवः
उपयोगोऽज्ञानमविरति मिथ्यात्वं च जीवस्तु ॥

२३—उपयोगस्यानादयः परिणामास्त्रयो मोहयुक्तस्य
मिथ्यात्वमज्ञानमविरति भावश्चेति ज्ञातव्यः ॥

२४—एतेषु चोपयोगस्त्रिविधः शुद्धो निरंजनोभावः
यं स करोति भावमुपयोगस्तस्य स कर्त्ता ॥

२५—यं करोति भावभावमा कर्त्ता स भवति तस्य भावस्य
कर्मत्वं परिणमते तस्मिन् स्वयं पुद्‌गल द्रव्यम् ॥

२६—परमात्मनं कुर्वन्नात्मानमपि च पर कुर्वन् सः
अज्ञानमयो जीवः कर्मणां कारको भवति ॥

२७—परमात्मानमकुर्वन्नात्मानमपि च परम कुर्वन्
स ज्ञानमयो जीवः कर्मणामकारको भवति ॥

उद्धरण सं०-१५

मागधी (शाकारी) मृच्छकटिक

शकार (सहर्षम्)

मंशेण[1] तिक्खाविलकेण भत्ते[2] शाकेण शूपेण शमच्छकेण
भुत्तं मए अत्तणा अश्श गेहे शालिश्श कूलेण गुलोदणेण ॥

(कर्णं दत्त्वा) भिण्ण कंशखङ्खणाए चाण्डाल वाआए[3] लशजोए ।[4] जधा अ एशे उरकालिदे वज्झडिण्डिमशद्दे पेडहाणं अ शुणीअदि[5] तधा तक्केमि दलिद्दचालुदत्ताके वज्झट्ठाणं[6] णीअदि त्ति । ता पेक्खिश्शं ।[7] शत्तु विणाशे णाम महन्ते हलकश्श[8] पलिदोशे होदि । शुदं अ मए

---

१. मांसेन—तृतीया० एक० नपुं० । २. भक्तः—प्रथमा० एक० पु०- स>श, अः > -ए मागधी प्राकृत की मुख्य विशेषताएँ हैं । ३. वाचाया: √वच् -स० एक० स्त्री० । ४. स्वरसंयोगः । ५. श्रूयते—√श्रु- प्रथम पु० एक०, वर्तमान० कर्मवाच्य । ६. वध्यस्थानं—द्वितीया० एक० नपुं० । ७. प्रेक्षिष्यामि—प्र+√ईश्- उत्तम पु० एक० भविष्य० । ८. हृदयस्य—षष्ठी० एक० नपुं० ।

जे वि किल शत्तु वावादअन्तं[1] पेक्खदि[2] तश्श अण्णिशिं जमन्तले अक्खिलोगे[3] ण होदि। मए क्खु विशागण्ठिगब्भपविश्टेण विअ कीडएण किं पि अन्तलं मग्गमाणेण उप्पाडिदे[4] ताह दलिद्द-चालुदत्ताह विणाशे। शम्पदं अत्तण केलिकाए पाशाद वालग्ग-पदोलिकाए अहिलुहिअ अत्तणो पलक्कमं[5] पेक्खामि। (तथा कृत्वा दृष्ट्वा च)। ही ही एदाह दलिद्दचालुदत्ताह वज्झं णीअमाणाह[6] एशे वड्ढे जणशम्मद्दे। जं वेलं अम्हालिशे पवले वलमणुश्शे वज्झं णीअदि तं वेलं कीदिशं भवे।[7] (निरीक्ष्य) कधं एशे शे णववलद्दके विअ मण्डिदे दक्खिणं दिशं णीअदि। अध किं णिमित्तं ममकेलिकाए पाशादवालग्गपदोलिकाए शमीवे घोशणा णिवडिदा[8] णिवालिदा अ।

(विलोक्य) कधं[9] थावलके, चेडे वि णत्थि इध। मा णाम तेण इदो गदुअ मन्तभेदे कडे[10] भविश्शदि। ता जाव णं अण्णेशामि।[11]

चेटः (दृष्ट्वा)—भश्टालका, एशे शे आगडे।[12]

चाण्डालौ—ओशलध देध मग्गं दालं[13] ढक्केध होध तुण्हीआ[14] अविण अतिक्ख विशाणे दुट्टबइल्ले इदो एदि।

---

१. व्यापाद्यमानं—व्या + √पादय्- वर्तमानकालिक कृदन्त, मारे जाते हुए। २. प्रेक्षते—प्र० पु० एक० वर्तमान०। ३. अक्षिरोगः—प्र० एक० नपुं०। ४. उत्पादितः—उत् + √पादय्- क्त-प्रत्यय भूत० कृदन्त। ५. पराक्रमं—र-> -ल-द्वि० एक० पु०। ६. नीयमानस्य—ष० एक० नपुं०। ७. भवेत्—√भू प्र० पु० एक० वर्तमान०। ८. निपतिता—नि+√पत् भूत० कृदन्त स्त्री०। ९. कथं—अव्यय। १०. कृतो—क्त प्रत्यय, भूतकालिक कृदन्त। ११. अन्वेषयामि—अनु+√ईष् -खोजना, उत्तम० पु० एक० भविष्य०। १२. आगत्—क्त प्रत्यय, वर्तमान० कृदन्त। १३. मार्गद्वारं—द्वितीया० एक० नपुं०। १४. तुष्णीकाः—प्र० बहु० पु० तूष्णीम्, मौन।

शकारः—अले अले, अन्तलं अन्तलं देध । (उपसृत्य) । पुश्थका थावलका[1] चेडा, एहि गच्छम्ह ।[2]

चेटः-ही अणज्ज, वशन्तशेणिअं मालिअ ण पलितुश्टेशि ।[3] शम्पदं पणइजणकप्पपादवं अज्ज चालुदत्तं मालइदुं ववशिदेशि ।[4]

शकारः—ण हि लअणकुम्भशालिशे॑हग्गे इश्थिअं वावादेमि ।

सर्वे—अहो, तुए मारिदा, ण अज्ज चारुदत्तेण ।

शकारः—के एव्वं भणादि ।

सर्वे—(चेटमुद्दिश्य)-णं एसो साहू ।

शकारः—(अपवार्यसभयम्)-अविदमादिके ।[5] कधं थावलके चेडे शुश्ठु ण मए शङ्कदे । एशे क्खु मम अकज्जश्श शक्खी । (विचिन्त्य)। एव्वं दाव कलइश्शं ।[6] (प्रकाशम) अलिअं भश्टालका हो एशे चेडे शुवण्ण चोलिआए मए गहिदे, पिश्टिदे, मालिदे, वद्धे अ ता किदवेले एशे जं भणादि किं शव्वं शच्चं । (अपवारितकेन चेटस्य कटकं प्रयच्छति) स्वरैकम् पुश्थका थावलका चेडा, एदं गेण्हिअ अण्णधा[7] भणाहि ।[8]

चेटः (गृहीत्वा)-पेक्खध पेक्खध भश्टालका ! हो, शुवण्णेण मं पलोभेदि ।

शकारः (कटकमाच्छिद्य)—एशे शे शुवण्णके जश्श[9] काल णादो[10] मए वद्धे ।[11](सक्रोधम्) । हंहो[12]चाण्डाला, मए क्खु एशे

---

१. पुत्रक स्थावरक—सम्बोधन । २. गच्छावः—मध्यम पु० बहु० वर्तमान० । ३. परितुष्टोसि-परि+√तुष्-मध्यम० पु० एक० वर्तमान० । ४. यवसितोसि—√अ्- कहना, मध्यम पु० एक० वर्तमान० । ५. विषाद-सूचक—अव्यय । ६. करिष्यामि—√कृ-उत्तम पु० एक० भविष्य० । ७. अन्यथा—अव्यय । ८. भण—मध्यम पु० एक० वर्तमान० आज्ञा० । ९. यस्य—ष० एक० पु० । १०. कारणात्-पंचमी एक० पु० । ११. बद्धः—√बन्ध् प्र० पु० एक० पु० । १२. सन्मानपूर्ण संबोधनसूचक अव्यय ।

शुवण्णभण्डाले णिउत्ते शुवण्णं चोलअन्ते मालिदे, पिश्टिदे[1] ता जदि ण पत्तिआअध ता पिश्टिं दाव पेक्खध ।

चाण्डालो (दृष्ट्वा)-शोहणं भणादि । विउत्ते[2] चेडे किं ण प्पडवदि ।[3]

चेटः—ही मादिके ईदिशे दाशभावे जं शच्चं कंपि[4] ण पत्तिआअदि ।[5] (करुणम्)-अज्ज चालुदत्त, एत्तिके मे विहवे ।

(इति पादयोः पतति) ।

संस्कृत-छाया

श०—मांसेन तिक्ताम्लेन (भक्तमोदनः) शाकेन सूपेन समत्स्यकेन भुक्तं मयात्मनो गेहे शाले कूलेण गुडोदनेन । चांडलवाचायाः स्वर-संयोगः । यथा चैष उर कालिंद (उद्गीतो) वध्यडिण्डिम शब्द पट-हानां च श्रवणे तथा तर्कयामि दरिद्र चारुदत्तको वध्यस्थानं नीयत इति । तस्मिन्निश्चये शत्रुविनाशो नाम महान् हृदयस्य परितोषो भवति । श्रुतं च मया योपि किल शत्रुं व्यापाद्यमानं पश्यति । तस्यान्यस्मिञ्ज न्मान्तरे त्रिरोगो न भवति । मया खलु विषग्रन्थि. गर्भप्रविष्टेनेव कीटकेन किमभ्यन्तरं मार्गं मार्गेणोत्पादितः तस्य दरिद्र चारुदत्तस्य विनाशः । (नाम्रनम)। आत्मीयायाम् । प्रासादबालाग्र प्रतोलिकायामधिरु ह्यात्मनः पराक्रमं पश्यामि । ही वितर्के । एततस्य दरिद्र चारुदत्तस्य वधं नीयमानस्यैव वृद्धो । जनसंमर्दः । केवलं यस्यां वेलायामस्मादृशः प्रवरो पुरुषानुपो वध्यं नीयते तस्यां वेलायां कीदृशं भवेत् । कथमेष स

१. पिष्टितः-सं०-ताडितः-√पिट्ट्-पीटना, क्त प्रत्यय, वर्तमान० कृदन्त । २. विततः—वि+√तप्, तपा हुआ, विशेषण । ३. प्रतपति—प्र+√तप्-गरम होना, प्रथम पु० एक० वर्तमान० । ४. किम्+अपि । ५. प्रत्याय्यते—प्रथम पु० एक० वर्तमान० ।

नवबलीवर्द इव मण्डितो दक्षिणां दिशं नीयते। अथ किं निमित्त मदीयायाः प्रासाद बालाग्रप्रतोलिकायाः समीपे घोषणा निपतिता निवारिता च।

कथं स्थावरक चेटोपि नास्तीदं। मा नाम तेनेतो गत्वा मन्त्रभेदः कृतो भविष्यति। तद्यावदेनमन्वेषयामि।

चे०—भट्टारकाः, एष स आगतः।

चाण्डा०—अपसरत ददत मार्गं द्वारं पिदधत भवत तुष्णीकाः अविनयतीक्ष्ण विषाणो पुष्टबलीवर्द इत एति।

श०—अरे अरे, अन्तरमन्तरं ददत। पुत्रक स्थावरक चेट, एहि गच्छावः।

चे०—ही अनार्य, वसन्तसेनिकां मारयित्वा न परितुष्टोसि। साम्प्रतं प्रणयिजनकल्पपादपमार्यचारुदत्तं मारयितुं व्यवसितोसि।

श०—न हि रत्नकुम्भसदृशोहं स्त्रियं व्यापादयामि।

सर्वे—अहो, त्वया मारिता। नार्यचारुदत्तेन।

श०—क एवं भणति।

सर्वे—नन्वेष साधुः।

श०—अविदमादिके कथं स्थावरक चेटः सुष्ठु न मया संयतः। एष खलु ममाकार्यस्य साक्षी। एवं तावत्करिष्यामि। अलीकं मिथ्या। भट्टारकाः। हो अहो। एष चेटः सुवर्णचोरिकायाः। मया गृहीतस्ताडितो मारितो बद्धश्च। तत्कृत वैर एष यद्भणति किं सर्वं सत्यम्। स्वैरम्। पुत्रक स्थावरक चेट, एतद्गृहीत्वान्यथा भण।

चेटः—पश्यत भट्टारकाः अहो, सुवर्णेन मां प्रलोभयति।

श०—एतत्तत्सुवर्णकं यस्य कारणाय मया बद्धः। हंहो चाण्डाला, मया खल्वेष सुवर्णभाण्डारे नियुक्तः सुवर्णं चोरयन्मारितस्ताडितः। तद्यदि प्रत्ययध्वं तदा पृष्ठ तावत्पश्यत।

चाण्डा०—शोभनं भणति। वितप्तश्चेटः किं न प्रवपति।

चेटः—ही मादिके खेदे ईदृशो दासभावो यत्सत्यकर्मापि न प्रत्याय्यते । आर्य चारुदत्त, एतावान्मे विभवः ।

उद्धरण सं०—१६

मागधी अभिज्ञान शाकुन्तलम्

(अङ्कावतारः)—

रक्षिणौ (पुरुषं ताडयित्वा)—अले कुम्भिलआ ।[1] कधेहि[2] कहिं तुए[3] एशे महामणिभाशुले उक्किण्णणामक्खले[4] लाअकीए अङ्गुलीअए शमाशादिदे ।[5]

पुरुषः (भीतिनाटितकेन)—पशीदन्तु पशीदन्तु[6] मे भावमिश्शे । ण हग्गे[7] ईदिशश्श अकज्जश्श कालके ।

एकः—किण्णु क्खु शोहणे बम्हणे त्ति[8] कदुअ लण्णा परिग्गहे दिण्णे ।

पुरुषः—शुणुध दाव, हग्गे क्खु शक्कावदालवाशी धीवले ।

द्वितीयः—अले पाडच्चला ।[9] किं तुमं अम्हेहिं[10] वशदिं जादिं च पुच्छीअसि ।[11]

नागरकः श्यालः—सूअअ ! कधेदु सव्वं अणुक्कमेण, मा अन्तरा पडिवन्धेअ ।[१]

उभौ—जं आवुत्ते आणवेदि ![२] लवेहि[३] ले ।

धीव—शो हग्गे जाल वलिश-प्पहुदिहिं मच्छवन्धणो वाएहिं[४] कुडुम्वभलणं कलेमि ।[५]

नाग० (विहस्य)—विसुद्धो दाणिं[६] से आजीवो ।

धीव०—भट्टके ! मा एव्वं भण ।

शहजे किल जे विणिन्दिदे ण हु शे कम्म विवज्जणीअए[७]
पशु मालणकम्मदालुणे अणुकम्पामिदु केवि[८] शोत्तिए[९] ॥

नाग० —तदो तदो ।

धीव०—एक्कश्शि[१०] दि अशे मए लोहिदमच्छके पाविदे[११] तदो खण्डशो कप्पिदे[१२] । जाव तश्श उदलब्भन्तले पेक्खामि दाव एशे महालअणमाशुले अङ्गुलीअए पेक्खिदे,[१३] पच्चा इध विक्कअत्थ दंशअन्ते[१४] ज्जेव गहिदे भाविमिश्शेहिं । एत्तिके दाव एदश्श आगमे । अध मं मालेध कुट्टेध वा ।

नाग० (अङ्गुरीयकमाघ्राय)—जालुअ ! मच्छो उदलमन्तलग-

---

१. प्रतिवधान—प्रति+√वाध्-रोकना- मध्यम पु० वहु० आज्ञा० । :. आज्ञापयति-आ+√ज्ञपय्-आदेश देना, प्रथम० पु० एक० वर्तमान० रणा० ३. लप-√लप्-कहना-मध्यम पु० एक० वर्तमान० । ४. उपायैः—ृतीया० एक० पु० । ५. करोमि-उत्तम पु०एक०, वर्तमान० । ६. इदानीम्-ग्रव्यय ७. विवर्जनीय वि + √वर्जय्-परित्याग करना-कृदंत । ८. कोऽपि-कोई- । ९. श्रोत्रियः-प्र० एक० पुलिंग । १०. एकस्मिन्-सप्तमी० एक० संख्या० । ११. प्राप्तः-भूत० कृदन्त । १२. कल्पितः-√कप्-काटना त-प्रत्यय भूत० कृदन्त । १३. प्रेक्षितः-क्त-प्रत्यय-भूत० कृदंत । १४. दर्शयन् √दर्शय्-दिखाना, वर्तमान० कृदंत ।

दोत्तिणत्थि सन्देहो, जदो अअं आमिसगन्धो वाआदि । आगमो दाणिं एदस्स एसो विमरिसिदव्वो[1] ता एध लाअउलंज्जेव गच्छह्म ।

रक्षिणौ (धीवरं प्रति)—

गच्छ ले गण्डिच्छेदअ ! गच्छ । (इति परिक्रामन्ति) ।

नाग०—सूअअ ! इध गोउलदुआले अप्प मत्ता पडिपालेध मं,[2] जाव लाअउलं पवेसिअं णिक्कमामि ।[3]

उभौ०—पविशदु आवुत्ते[4] शामिप्पशादत्थं । (नाग०-परिक्रम्य निष्क्रान्तः) ।

सूच०—जालुअ ! चिलाअदि[5] क्खु आवुत्ते ।

जालु०—णं अवशलोवशप्पणीआ लाआणो होन्ति ।

सूच०—फुल्लन्ति[6] मे अग्गहत्था इमं गण्ठिच्छेदअं वावादिदुं ।

धीव—णालिहदि[7] भावे अआलणमालके भविदुं ।

जालु० (विलोक्य)—एशे अह्माणं इश्शले पत्ते गेह्णिअ लाअशाशणं आअच्छदि । शम्पदं एशे शउलाणं[8] मुहं पेक्खदु, अहवा गिद्धशिआलणं वली होदु ।

नाग०—(प्रविश्य)-सिग्घं सिग्घं एदं ।

धीव०—हा हदोह्मि । (इति विषादं नाटयति) ।

---

१. विमर्ष्टव्यः—वि+√मृश्- विचारना, भविष्यकालिक कृदंत । २. माम्-द्वि० एक०-पुं०, अस्मद् सर्वनाम ३. निष्क्रमामि -नि+√क्रम्-उत्तम पु० एक० वर्तमान० । ४. देशीशब्द—भगिनीपति (बहनोई) । ५. चिरयति-√ चिरय् विलम्ब करना, प्रथम पु० एक० वर्तमान०, शौरसेनी-चिरअदि । ६. स्फुरतः √स्फुर्-फरकना-प्रथम पु० बहु० वर्तमान० संस्कृत द्विवचन रूप का प्राकृत में बहु० के सदृश प्रयोग होता है। ७. अर्हति—√अर्ह—प्रकट, विशेषण । ८. स्वकुलानां—षष्ठी बहु० पु०, अपने वंश वालों का ।

नाग०—मुञ्चध जालोवजीविणं । उववण्णे से अङ्गुलिअस्स आगमे अह्मशामिणा जाव कधिदं ।

सूच०—जहा आणवेदि आवुत्ते । जमवशदिं गदुअ पडिणिउत्ते[1] क्खु एशे ।

(इति धीवरं वन्धनान्मोचयति) ।

धीव०—भट्टके ! शम्पदं तुह् केलके[2] मे जीविदे । (इति पादयोः पतति) ।

नाग०—उट्ठेहि, एसे भट्टिणा अङ्गुलीअमुल्लसम्मिदे,पारिदोसिए दे प्पसादीकिदे, ता गेह्म एदं ।

(इति धीवराय करकं ददाति)।

धीव० (सहर्षं सप्रणामश्च प्रतिगृह्य)—अणुग्गहीदोह्मि ।[3]

जालु०—एशे क्खु रण्णा[4] तधा अणुग्गहीदे, जधा शुलादो ओदालिअ[5] हत्थिक्खन्धे शमालोविदे ।

सूच०—आवुत्ते ! पालितोशिएण जाणामि महालिह्लदणे अङ्गुलीअएण शामिणो वहुमदेण होदव्वं ।[6]

नाग०—ण तस्सिं भट्टिणो महालिह्लदणं त्ति कदुअ परिदोसो । एत्ति उण तक्केमि ।

उभौ०—किं उण ।

नाग०—तस्स दंसणेण भट्टिणा कोवि अहिमदो[7] जनो सुमरिदोत्ति जदो मुहुत्तअं पइदि[8] गम्भीरोवि पज्जुस्सुअमणा आसी ।

---

१ प्रतिनिवृत्तः—प्रति+नि-√वृत्-पीछे लौटना-क्त प्रत्यय-वर्तमान कृदन्त । २. केरकः—क्रीतिकं-संवन्धसूचक विशेषण । ३. अनुगृहीतोऽस्मि-अस्मि > अम्हि-√अस् उत्तम पु० एक० वर्तमान० । ४. राज्ञा—तृ० एक० पु० । ५. अवतार्य्य—(अवतारित)-उतारा हुआ- विशेषण । ६. भवितव्यम्—√भू-होना-भविष्य० कृदन्त । ७. अभिमता—इष्ट (वांछित), विशेषण । ८. प्रकृति-प्र० एक० स्त्री० ।

सूच०—दोसिदे शोहदे अदाणिं भट्टा आवुत्ते ण।

जालु०—णं भणेमि इमश्श मच्छशत्तुणो किदे। (इति धीवरमसूयया पश्यति)।

जालु०—धीवल! महत्तले शम्पदं अह्माणं पिअवअश्शके शंवुत्ते शि कादम्बलीशक्खिके क्खु पठमं शोहिदे[1] इच्छीअदि। [2]ता एहि[3], शुण्डिअ आलअं ज्जेव गच्छह्म।[4]

(इति निष्क्रान्ताःसर्वे)।

संस्कृत-छाया

रक्षिणौ—अरे कुम्भिलक! कथय कुत्र त्वया एतन्महामणिभासुर-मुत्कीर्णनामाक्षरं राजकीयमङ्गुरीयकं समासादितम्।

पुरुषः—प्रसीदन्तु प्रसीदन्तु मे भावमिश्रा। नाहमीदृशस्य अकार्यस्य कारकः।

एक—किन्तु खलु शोभनो ब्राह्मणोऽसीति कृत्वा राज्ञा ते परिगृहो दत्तः।

पुरुषः—शृणुत, तावत्, अहं खलु शक्रावतारवासी धीवरः।

द्वि०—अरे पाटच्चरं, किं त्वमस्माभिर्वसतिं जातिञ्च पृच्छयसे।

नाग०—सूचक, कथयतु सर्वमनुक्रमेण, मा अन्तरा प्रतिबधान।

उभौ—यदावुत्त आज्ञापयति, लप रे।

धीव०—सोऽहं जाल वडिशप्रभृतिभिर्मत्स्यबन्धनोपायैः कुटुम्बभरणं करोमि।

---

१. सौहृदम्-द्वि० एक० पु०—मित्रता। २. इष्यते- √इष्-इच्छा करना प्रथम पु० एक० वर्तमान० कर्मवाच्य। ३ एहि—आ+ √इ-आना—मध्यम पु० एक० आज्ञा०। ४. गच्छामः- √गम्-उ० पु० बहु०, वर्तमान०।

नाग०—विशुद्ध इदानीमस्य आजीवकः।

धीव०—भर्त्ताः। मा एवं भण—

सहजं किल यद्विनिन्दितं न तु तत् कर्म्म विवर्जनीयकम्
पशुमारण-कर्म्मदारुणः अनुकम्पामृदुकोऽपि श्रोत्रियः॥

नाग०—ततस्ततः।

धीव०—एकस्मिन् दिवसे मया रोहितमत्स्यकः प्राप्तः ततः खण्डशः कल्पितः। यावत् तस्य उदराभ्यन्तरे प्रेक्षे, तावदेतन्महारत्नभासुरम् अङ्गुरीयकं प्रेक्षितम्, पश्चादिह विक्रयार्थं दर्शयन्नेव गृहीतो भावमिश्रैः। एतावान् तावदेतस्य आगमः। अथ मां मारयत कुट्टयत वा।

नाग०—जालुक! मत्स्योदराभ्यन्तरगतमिति नास्ति सन्देहः, यतः अयमामिष गन्धो वाति। आगम इदानीमेयस्यैष विमर्श्यः, तदेत राजकुलमेव गच्छामः।

रक्षिणौ—गच्छ रे ग्रन्थिच्छेदक! गच्छ।

नाग—सूचक! इहगोपुरद्वारे अप्रमत्तो प्रतिपालयत माम्, यावत् राजकुलं प्रविश्य निष्क्रमामि।

उभौ—प्रविशतु आवुत्तः स्वामिप्रासादार्थम्।

सूच०—जालुक! चिरयति खल्वावुत्तः।

जालु०—ननु अवसरोपसर्पणीया राजानो भवन्ति।

सूच०—स्फुरतो मे अग्रहस्तौ इमं ग्रन्थिच्छेदकं व्यापादयितुम्।

धीव०—नार्हति भावः अकारणमारको भवितुम्।

जालु०—एषः अस्माकमीश्वरः। पत्रं गृहीत्वा राजशासनमागच्छति साम्प्रतमेष स्वकुल्यानां मुखं प्रेक्षताम्, अथवा गृध्रशृगालानां बलिर्भवतु।

नाग०—शीघ्रं शीघ्रमेतम्।

धीव०—हा हतोस्मि ।

नाग०—मुञ्चत जालोपजीविनम् । उत्पन्नः अस्य अङ्गुलीयकस्य आगमः अस्मत्स्वामिना यावत् कथितम् ।

सूत्र०—यथा आज्ञापयति आवुत्तः । यमवसतिं गत्वा प्रतिनिवृत्तः खल्वेषः ।

धीव०—भर्त्तः साम्प्रतं तव क्रीतकं मे जीवितम् ।

नाग०—उत्तिष्ठ, एतत् भर्त्ता अङ्गुरीयमूल्यसम्मितं पारितोषिकेन प्रसादीकृतं, तत् गृहाण इदम् ।

धीव०—अनुगृहीतोऽस्मि

जालु०—एष खलु राज्ञा तथा अनुगृहीतः, यथा शूलादवतार्य्य हस्तिस्कन्धे समारोपितः ।

सूच०—आवुत्त ! परितोषिकेण जानामि महार्हरत्नेन अङ्गुरीयकेण स्वामिनो बहुमतेन भवितव्यम् ।

नाग०—न तस्मिन् भर्त्तु र्महार्हरत्नमिति कृत्वा परितोषः । एतत् पुनस्तर्कयामि ।

उभौ—किं पुनः।

नाग०—तस्य दर्शनेन भर्त्ता कोऽप्यभिमतो जनः स्मृत इति, यतो मुहूर्तं प्रकृति गम्भीरोऽपि पर्य्युत्सुकमना आसीत् ।

सूच०—तोषितः शोचितश्चेदानीं भर्त्ता आवुत्तेन ।

जालु०—ननु भणामि अस्य मत्स्यशत्रोः कृते ।

धीव०—भट्टारक ! इतः अर्धं युष्माकमपि सुरामूल्यं भवतु ।

जालु०—धीवर ! महत्तरः साम्प्रतमस्माकं प्रियवादस्यः संवृत्तोऽसि । कादम्बरीसाक्षिकं खलु प्रथम सौहृदमिष्यते, तदेहि शौण्डिकालयमेव गच्छामः ।

उद्धरण सं०—१७

(मागधी-ढक्की) मृच्छकटिक

(द्वितीयोङ्क)—

(नेपथ्ये)—अले भट्टा दश सुवण्णाह[1] लुद्ध जूदकरु पपलीणु. पपलीणु ।[2] ता गेह् ण गेह् ण चिट्ठ चिट्ठ, दूलात् पदिट्टोसि।

(प्रतिश्यापटीक्षेपेण संभ्रान्तः) ।

संवाहकः—कश्टे एशे जूदिअलभावे । हीमाणहे[3]—

णववन्धणमुक्कापुए विअ गद्दहीए हा ताडिदोह्मि गद्दहे ए
अङ्गलाअमुक्काए विअ शत्तीए घुड्ढको विअ घादि दोह्मि शत्तीए ॥ १ ॥
लेखअवावडहि अअं शहिअं दश्टूण झत्ति पव्भश्टे
एण्हिं मग्गणिवडिदे कं णु हु शलणं पवज्जामि ॥ २ ॥

ता जाव एदे शहिअजूदिअला अण्णदो मं अण्णेशन्ति[4] ताव इदो विप्पडीवेहिं[5] पादेहिं[6] एदं शुण्णदेउलं पविशिअ देवीहुविश्शं। (वहुविधं नाट्यं कृत्वा तथा स्थितः । ततः प्रविशति माथुरो द्यूतकरश्च) ।

माथुरः—अले भट्टा दशसुवण्णाह लद्ध जूदिकरु पपलीणु पपलीणु। गे ह्राण गे ह्राण चिट्ठ चिट्ठ दूलात् पदिट्ठोसि ।

द्यूतकरः– जइ वज्जसि[6] पाआलं इन्दं सलणं च सम्पदं जासि
सहिअं वज्जिअं एकं रुद्दो वि ण रक्खिदुं तरइ[7] ॥ ३ ॥

---

१. सुवर्णस्य-प० एक० पु० । २. प्रपलायितः प्रपलायितः—भूत० कृदन्त० । ३. संबोधन । ४. अन्विष्यतः—अनु+√ इष् -प्र० पु० द्वि० वर्तमान० । ५. विपरीताभ्यां—तृ० द्वि० पु० । पादाभ्याम्-तृ० द्वि० पु० यह पहले कहा ही जा चुका है कि संस्कृत द्वि० प्राकृत में वहु० हो जाता है । ६. व्रजसि-√व्रज्-म० पु० एक० वर्तमान० । ७. शक्नोति-√शक्-प्र० पु० एक० वर्तमान० ।

धीव०—हा हतोस्मि ।

नाग०—मुञ्चत जालोपजीविनम् । उत्पन्नः अस्य अङ्गुलीयकस्य आगमः अस्मत्स्वामिना यावत् कथितम् ।

सूत्र०—यथा आज्ञापयति आवुत्तः । यमवसतिं गत्वा प्रतिनिवृत्तः खल्वेषः ।

धीव०—भर्त्तः साम्प्रतं तव क्रीतकं मे जीवितम् ।

नाग०—उत्तिष्ठ, एतत् भर्त्ता अङ्गुरीयमूल्यसम्मितं पारितोषिकेन प्रसादीकृतं, तत् गृहाण इदम् ।

धीव०—अनुगृहीतोऽस्मि

जालु०—एष खलु राज्ञा तथा अनुगृहीतः, यथा शूलादवतार्य्य हस्तिस्कन्धे समारोपितः ।

सूच०—आवुत्त ! परितोषिकेण जानामि महार्हरत्नेन अङ्गुरीयकेण स्वामिनो बहुमतेन भवितव्यम् ।

नाग०—न तस्मिन् भर्त्तु र्महार्हरत्नमिति कृत्वा परितोषः । एतत् पुनस्तर्कयामि ।

उभौ—किं पुनः।

नाग०—तस्य दर्शनेन भर्त्ता कोऽप्यभिमतो जनः स्मृत इति, यतो मुहूर्तं प्रकृति गम्भीरोऽपि पर्य्युत्सुकमना आसीत् ।

सूच०—तोषितः शोचितश्चेदानीं भर्त्ता आवुत्तेन ।

जालु०—ननु भणामि अस्य मत्स्यशत्रोः कृते ।

धीव०—भट्टारक ! इतः अर्धं युष्माकमपि सुरामूल्यं भवतु ।

जालु०—धीवर ! महत्तरः साम्प्रतमस्माकं प्रियवादस्यः संवृत्तोऽसि । कादम्बरीसाक्षिकं खलु प्रथम सौहृदमिष्यते, तदेहि शौण्डिकालयमेव गच्छामः ।

उद्धरण सं०—१७

(मागधी-ढक्की) मृच्छकटिक

(द्वितीयोङ्क)—

(नेपथ्ये)—अले भट्टा दश सुवण्णाह[1] लुद्ध जूदकरु पपलीणु पपलीणु ।[2] ता गेह् ण गेह् ण चिट्ठ चिट्ठ, दूलात् पदिट्टोसि ।

(प्रतिश्यापटीक्षेपेण संभ्रान्तः) ।

संवाहकः—कश्टे एशे जूदिअलभावे । हीमाणहे[3]—

णवबन्धणमुक्कापुए विअ गद्दहीए हा ताडिदोह्मि गद्दह् ए
अङ्गलाअमुक्काए विअ शत्तीए घुड्ढुको विअ घादि दोह्मि शत्तीए ॥ १ ॥
लेखअवावडहि अअं शहिअं दश्टूण भत्ति पब्भश्टे
एण्हि मग्गणिवडिदे कं णु हु शलणं पवज्जामि ॥ २ ॥

ता जाव एदे शहिअजूदिअला अण्णदो मं अण्णेशन्ति[4] ताव इदो विप्पडीवेहिं[5] पादेहिं[6] एदं शुण्णदेउलं पविशिअ देवीहुविश्शं । (बहुविधं नाट्यं कृत्वा तथा स्थितः । ततः प्रविशति माथुरो द्यूतकरश्च) ।

माथुरः—अले भट्टा दशसुवण्णाह लद्धु जूदिकरु पपलीणु पपलीणु । गे ह्णण गे ह्णण चिट्ठ चिट्ठ दूलात् पदिट्ठोसि ।

द्यूतकरः– जइ वज्जसि[6] पाआलं इन्दं सलणं च सम्पदं जासि
सहिअं वज्जिअं एक्कं रुद्दो वि ण रक्खिदुं तरइ[7] ॥ ३ ॥

---

१. सुवर्णस्य-ष० एक० पु० । २. प्रपलायितः प्रपलायितः—भूत० कृदन्त० । ३. संबोधन । ४. अन्विष्यतः—अनु+√ इष् -प्र० पु० द्वि० वर्तमान० । ५. विपरीताभ्यां—तृ० द्वि० पु० । पादाभ्याम्-तृ० द्वि० पु० यह पहले कहा ही जा चुका है कि संस्कृत द्वि० प्राकृत में बहु० हो जाता है । ६. व्रजसि-√व्रज्-म० पु० एक० वर्तमान० । ७. शक्नोति-√शक्-प्र० पु० एक० वर्तमान० ।

माथुरः—कहिं कहिं सुसहिअविप्पलम्भआ[1] पलासि ले भअपलि-
वेविदङ्गआ।
पदे पदे समविसमं खलन्तआ कुलं जसं अइकसणं कलेन्तआ[2] ॥४॥

द्यूतकरः—(पदं वीक्ष्य) एसो वज्जदि । इअं पणट्टा पदवी ।

माथुरः—(आलोक्य, सवितर्कम्) अले विप्पदीवु पादू । पडिमा-शुण्णु देउलु । (विचिन्त्य) धुत्तु जुदिअरु विप्पदीवेहिं पादेहिं देउलं पविट्ठु ।

द्यूतकरः—ता अणुसरेम्ह ।[3]

माथुरः—एव्वं भोदु । (उभौ देवकुलप्रवेशं निरूपयतः । दृष्ट्वा-न्योन्यं संज्ञाप्य) ।

द्यूतकरः—कधं कट्ठमयी पडिमा ।

माथुरः—अले ण हु ण हु शेलप्पडिमा । (इति बहुविध चालयति) । संज्ञाप्य च एव्वं भोदु । एहि जूदं किलेम्ह । (वहुविधं द्यूतं क्रीडतः) ।

संवाहकः (द्यूतेच्छाविकारसंवरणं वहुविधं कृत्वा)—(स्वगतम् अले-कत्ताशद्दे णिण्णाणअश्श हलइ हडकं मणुश्शश्श
ढक्काशद्दव्व णडाधिपश्शं पब्भट्टलज्जश्श[4] ॥ ५ ॥
जाणामि ण कीलिश्शं शुमेलुशिहलपडणशण्णिहं जूअं
तह विहु कोइलमहुले कत्ताशद्दे मणं हलदि[5] ॥ ६ ॥

द्यूतकरः—मम पाठे मम पाठे ।

---

१. सुसभिकविप्रलंभक । २. कुर्वन्—वर्तमान० कृदन्त । ३. अनुसरावः—उत्तम पु० द्वि० वर्तमान० । परन्तु संस्कृत रूप अनुसरामः होगा । क्योंकि प्राकृत द्वि० संस्कृत वहु० में वदल जाता है । ४. प्रभ्रष्ट राज्यस्य—प० एक० पु० । ५. हरति—√हृ-प्र० पु० एक० वर्तमान० ।

मथुरः—ण हु[1] मम पाठे मम पाठे।

संवाहकः (अन्यतः सहसोप्सृत्य)—ण मम पाठे।

द्यूतकरः-लद्धे गोहे।

माथुरः (गृहीत्वा)—अले पेदण्डा गहीदोसि।[2] पअच्छ[3] तं दश सुवण्णं।

संवाहकः—अज्ज दइश्शं।[4]

मथुरः—अहुणा पअच्छ।

संवाहक—दइश्शं पशादं कलेहि।

माथुरः—अले णं संपदं पअच्छ।

संवाहकः—शिलु[5] पडदि।[6] (इति भूमौ पतति। उभौ बहुविधं ताडयतः)।

माथुरः—एसु तुमं हु जूदिअस्समण्डलीए[7] बद्धोसि।

संवाहकः (उत्थाय सविषादम्)—कधं जूदिअलमण्डलीए बद्धोम्हि। ही एहो अम्हाणं जूदिअलाणं अलङ्घणीए[8] शामए। ता कुदो दइश्शं।

माथुरः—अले गन्थु[9] कुलु कुलु।[10]

संवाहकः—एव्वं कलेमि। (द्यूतकरमुपस्पृश्य) अद्धं ते देमि। अद्धं मे मुञ्चदु।

द्यूतकरः—एव्वं भोदु।

---

१. खलु-अव्यय। २. ग्रहीतोसि–गृहीतः√ग्रह-क्त प्रत्यय-वर्तमान० कृदन्त, असि- √अस् मध्यम पु० एक० वर्तमान० ३. प्रयच्छ-म० पु० एक० आज्ञा०। ४. दास्यामि√दा—उत्तम पु० एक० वर्तमान० ५. शिरः—प्र० पु० एक० पु०। ६. पतति√ पत्—प्र० पु० एक० वर्तमान०। ७. द्यूतकरमण्डल्या—तृ० एक० पु०। ८. अलङ्घनीयः-अनीयर् प्रत्यय। ९. गण्डः—प्र० एक० पु०। १०. कृतः कृतः भूत० कृदन्त। -ओ>-उ इनकी की विशेषता है—

संवाहक:—(सभिकमुपसृत्य)-अद्धश्शं गन्थु कलेमि। अद्धं पि मे अज्जो मुञ्चदु।

माथुर:—को दोसु[1] एव्वं भोदु।

संवाहक: (प्रकाशम्)—अज्ज अद्धं तुए मुक्के।[2]

माथुर:—मुक्के।

संवाहत: (द्यूतकरं प्रति)—अत्ते तुए वि मुक्के।

द्यतकर:—मुक्के।

संवाहक:—सम्पदं गमिश्शं।

माथुर:—पअच्छ तं दशसुवण्णं। कहिं गच्छसि।

संवाहक—पेक्खध पेक्खध[3] भश्टालआ हा सम्पदं ज्जेव्व एक्काह अद्धे गन्थु कडे। अवलाह[4] अद्धे मुके। तहवि मं अवलं शस्पदं ज्जेव्व मग्गइ।

माथुर: (गृहीत्वा)—धुत्तु माथुरु[5] अहं णिउणु।[6] एहिं ण अहं धुत्ति ज्जामि। ता पअच्छ तं पेदण्डआ सव्वं सुवण्णं सम्पदं।

संवाहक—कुदो दइश्शं।

माथुर:—पिदरं, विक्किणिअ[7] पअच्छ।

संवाहक:—कुदो मे पिदा।

माथुर:—मादरं विक्किणिअ पअच्छ।

संवाहक—कुदो मे मादा।

माधुर—अप्पाणं विक्किणिअ पअच्छ।

---

१. दोष:—प्र० एक० पु०। २. मुक्तम्—क्त प्रत्यय, भूत० कृदन्त। ३. प्रेक्षध्वं प्रेक्षध्वं-मध्यम पु० एक० वर्तमान०। ३. अपरस्य-प्र० एक० पु०। ५. धूर्तो माथुर:-प्र० एक० पु०। ६. निपुण:—प्र० एक० पु०, ओ >-उ ढक्की की मुख्य विशेषता है। यह परिवर्तन अपभ्रंश भाषाओं में व्यापक हो जाता है। ७. विक्रिय—वर्तमान० कृदन्त।

वाहक—कलेध पशादं । णेध[1] मं लाजमग्गं ।

माथुर—पशरु पशरु ।[2]

संवाहक—एव्वं भोदु । (परिक्रामति)-अज्जा किणेध मं इमश्श शहिअश्श हत्थादो दशेहिं सुवण्णकेहि । (दृष्ट्वा आकाशे)-किं भणाध ।[3] किं कलइस्ससि त्ति । गेहे दे कम्मकले हुविश्शं । कधं अदइअ पडिवअणं गदे । भोदु एव्वं । इमं अण्णं भणइश्शं ।[4] (पुनस्तदेव-पठति)-कधं एशे वि मं अवधीलीअ[5] गदे । आः[6] अज्ज चालुदत्तश्श विहवे विहडिदे एशे वट्टामि मन्दभाए ।

माथुरः—णं देहि ।

संवाहक—कुदो दइश्शं । (इति पतति) माथुरः कर्षति ।

· संवाहक—अज्जा पलित्ताअध ।[7]

संस्कृत-छाया

अरे भट्टा दशसुवर्णस्य रुद्धः द्यूतकरः प्रपलायितः प्रपलायितः । तत् गृहाण गृहाण तिष्ठ तिष्ठ । दूरात् प्रदृष्टोसि ।

संवाहकः—कष्टं एव द्यूतकरभावः । हीमाणहे—

नवबन्धनमुक्तयेव गर्दभ्या हा ताडितोस्मि गर्दभ्या
अङ्गराजमुक्तयेव शक्त्या घटोत्कच इव घातितोस्मि शक्त्या ॥१॥
लेखकव्यापृतहृदयं सभिकं दृष्ट्वा झटिति प्रभ्रष्टः
इदानीं मार्गनिपतितः कं णु खलु शरणं प्रव्रजामि ॥२॥

---

१. नयतं √नी -म० पु० एक० वर्तमान० । २. प्रसर्प प्रसर्प—म० पु० एक० वर्तमान० आज्ञा० । ३. भणत—मध्यम पु० एक० वर्तमान० । ४ भविष्यामि—उत्तम पु० एक० भविष्य० । ५. अवधीर्य—वर्तमान० कृदन्द । ६. आः—खेद-सूचक अव्यय । ७. परित्रायतध्वं—म० पु० एक० र्तमान० ।

तत् यावत्एतौ समिकद्यतकरावम्यतो मामन्विष्यतः। तावदितो विपरीताभ्यां पादाभ्यामेतच्छून्यं देवकुलं प्रविश्य देवी भविष्यामि।

माथुरः—अरे भट्टा दशसुवर्णस्य रुद्धो द्यूतकरः प्रपलायितः। गृहाण गृहाण तिष्ठ तिष्ठ। दूरात्प्रदृष्टोसि।

द्यूतकरः—यदि व्रजसि पातालामिन्द्रं शरणं च सांप्रतं यासि
सभिकं वर्जयित्वैकं रुद्रोपि न रक्षितुं तरइ (शक्नोति) ॥३॥

माथुरः—कुत्र कुत्र ससभिकविविप्रलम्भक पलायसे रे भयपरिवेपिताङ्गक
पदे पदे समविषमं खलन्तश्रा स्खलन् कुलं यशोतिकृष्णं कुर्वन् ॥४॥

द्यूतकरः—एव व्रजति। इयं प्रनष्टा पदवी।

माथुरः—अरे विप्रतीपौ पादौ। प्रतिमाशून्य देवकुलम्! धूर्तो धूतकरो विप्रतीपपादाभ्यां देवकुलं प्रविष्टः।

द्यूतकरः—ततोनुसरावः।

माथुरः—एवं भवतु।

द्यूत०—कथं कष्टमयी प्रतिमा।

माथुरः—अरे न खलु शैलप्रतिमा एवं भवतु। एहि द्यूत क्रीडावः।

संवा०—अरे-कत्ताशब्दो निर्नाणकस्य हरति हृदयं मनुष्यस्य
ढक्काशब्द इव नराधिपस्य प्रभ्रष्टराज्यस्य ॥ ५ ॥
जानामि न कीडिष्यामि सुमेरुशिखर पतनसंनिभं द्यूतम्
तथापि खलु कोकिलमधुरः कत्ताशब्दो मनोहरति ॥ ६ ॥

द्यूत०—मम पाठः मम पाठः।

माथु०—न खलु मम पाठः मम पाठः।

संवा०—ननु मम पाठः।

द्यूत०—लब्धः गोहः (पुरुषः)।

माथु०—अरे प्रेदण्डा लुप्तदण्डक गृहीतोसि। प्रयच्छ तद्दशसुवर्णम्।

संवा०—अद्य दास्यामि।

माथु०—अधुना प्रयच्छ।

संवा०—दास्यामि प्रसादं कुरु ।

माथु०—अरे ननु सांप्रतं प्रयच्छ ।

संवा०—शिरः पतति ।

माथु०—एष त्वं खलु द्यूतकरमण्डल्या बद्धोसि ।

संवा०—कथं द्यूतकरमण्डल्या बद्धोस्मि । एषोस्माकं द्यूतकराण्यंमलङ्घनीयः समयः । तत्कुतो दास्यामि ।

माथु०—अरे गण्थु (गण्डः) । कृतः कृतः ।

संवा०—एवं करोमि । अर्धं ते ददामि । अर्धं मे मुञ्चतु ।

द्यूत०—एवं भवतु ।

संवा०—अर्धस्य गन्थु (गण्डं लग्नकम्) करोमि । अर्धमपि महामार्यो मुञ्चतु ।

माथु०—को दोषः । एवं भवतु ।

संवा०—आर्य अर्धं त्वया मुक्तम् ।

माथ०—मुक्तम् ।

संवा—अर्धं त्वयापि मुक्तम् ।

द्यूत०—मुक्तम् ।

संवा०—सांप्रतं गमिष्यामि ।

माथु०—प्रयच्छ तद्दशसुवर्णम् । कुत्र गच्छसि ।

संवा०—प्रेक्षध्वं प्रेक्षध्वं भट्टारकाः । हा सांप्रतमेव एकस्य अर्धं गण्डः कृतः अपरस्य अर्धं मुक्तम् । तथापि माम् अपरं सांप्रतम् एवं याचत ।

माथु०—धूर्तो माथुरोहं निपुणः । अत्र नाहं धूर्तयामि । ततः प्रयच्छ तत्प्रेदण्डश्रा लुप्तदण्डकं सर्वं सुवर्णं सांप्रतम् ।

संवा०—कुतो दास्यामि ।

माथु०—पितरं विक्रीय प्रयच्छ ।

संवा०—कुतो मे पिता ।

माथु०—मातरं विक्रीय प्रयच्छ ।

संवा०—कुतो मे माता ।

माथु०—आत्मानं विक्रीय प्रयच्छ ।

संवा०—कुरुतं प्रसादम् । नयतं मां राजमार्गम् ।

माथु०—प्रसर्प प्रसर्प ।

संवा०—एव भवतु । आर्याः क्रीणीध्वं मामस्य सभिकस्य हस्ताद्दशभिः सुवर्णकैः किं भणत । किं करिष्यसि इति । गेहे ते कर्मकरो भविष्यामि । कथम् अदत्त्वा प्रतिवचनं गतः । भवतु एवं । इमम् अन्यं भविष्यामि । कथम् एषो अपि माम् अवधीर्य गतः । आः आर्य चारुदत्तस्य विभवे विघटित एष वर्धे मन्दभाग्यः ।

माथु०—ननु देहि ।

संवा०—कुतो दास्यामि । आर्याः परित्रायतध्वं ।

उद्धरण सं०—१८

अर्धमागधी उवासगदसाओ

(सातवें अध्याय से)—

पोलासपुरे नामं नयरे,[1] सहस्सम्बवणे[2] उज्जणे[3] जियसत्तूराया । तत्थ णं[4] पोलासपुरे नयरे सद्दालपुत्ते नामं कुम्भकारे आजीविओवासए[5] परिवसइ । अजीविय-समयंसि[6] लद्धट्ठे[7] गहियट्ठे[8] पुच्छियट्ठे[9] विणिच्छियट्ठे[10] अभिगयट्ठे[11] अट्ठि-मिजंपेमाणुरागरत्ते

---

१. नगरे—स० एक० पु० । २. सहस्राम्रवने—स० एक० नपुं० । ३. उद्याने—स० एक० पु० । ४. नूनं—निश्चयबोधक अव्यय । ५. आजीविकोपासकः—प्र० एक० पु०, आजीविकों का उपासक । ६. आजिविक-समये—समय-मत, सिद्धांत-सप्तमी एक० पु० । ७. लब्धार्थः√लब्ध—प्राप्त करना । ८. गृहीतार्थः—ग्रहण कर । ९. पृष्टार्थः—पूछ कर । १०. विनिश्चत्यार्थः—अर्थ का निश्चय कर । ११. अभिगतार्थः -पारंगत होकर ।

य अयम् आउसो, आजीविय-समए अट्ठे[1] अयं परमट्ठे,[2] सेसे अणट्ठे।[3] त्ति आजिविय-समएणं-अप्पाणं भावेमाणे[4] विहरइ।

तस्स णं सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स एक्का हिरण्ण-कोडी,[5] निहाण-पउत्ता,[6] एक्का वड्ढि[7] पउत्ता, एक्का पवित्थर[8] पउत्ता एक्के वए दस-गो-साहस्सिएणं वएणं।[9] तस्स णं सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स अग्गिमित्ता नामं भारिया होत्था।

तस्स णं सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स पोलासपुरस्स नयरस्स वहिया पञ्चकुम्भकारावणसया[10] होत्था। तत्थ णं वहवे[11] पुरिसा दिण्णभइ[12] भत्त[13] वेयणा[14] कल्लाकल्लिं[15] वहवे करए[16] य वारए[17] य पिहडए[18] य घडए यं अद्ध-घडए य कलसए य अलिञ्जरए[19] य जम्वूलए य उट्ठियायो[20] य करेन्ति, अन्ने य से वहवे पुरिसा दिण्ण-भइभत्त वेयणाकल्लाकल्लिं तेहिं वहूहिं करएहिं य जाव उट्ठियाहि य रायमग्गंसि वित्तिं कप्पेमाणा[21] विहरन्ति।

---

१. अर्थः-सत्य। २. परमार्थः। ३. अनर्थः-असत्य। ४. √भावय्-चिन्तन करना—वर्तमानकालिक कृदन्त। ५. कोटि-करोड़। ६. निधान-प्रयुक्ता—स्थापना में लगाना। ७. √वर्धिन्—वढ़नेवाला-व्याज। ८. प्रविस्तर—जागीर। ९. व्रजाणाम्-प० वहु० पु०—समूह। १०. आपण—दुकान। ११. वहु—अनेक। १२. भृतिः—भाड़ा। १३. भक्त—भोजन। १४. वेतन। १५. कल्यं कल्यम्—प्रत्येक प्रातः। १६. करकान्-द्वि० वहु० पु०—गड्डुवा। १७. करकान्—द्वि० वहु० पु०—वर्तन। १८. पिठरकान्—द्वि० वहु० पु०, थाली। १९. अलिञ्जाण—द्वि० वहु० पु०, पानी रखने का झझ्झर। २०. जम्वूलकान्, उष्ट्रिकान्—द्वि० वहु० पु०, वड़े-वड़े मटके। २१. क्रियमाणः—शानच् प्रत्यय, वर्तमानकालिक कृदन्त।

तए[1] णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए अन्नया[2] कयाइ[3] पुव्वावरण्हकाल[4] समयंसि जेणेव असोग-वणिया तेणेव उवागच्छइ,-त्ता[5] गोसालस्स मङ्खलिपुत्तस्स अन्तियं धम्म-पण्णत्तिं उवसपज्जिताणं[6] विहरइ। तए णं तस्स सद्दालपुत्तस्स आजीविओवागस्स एगे देवे अन्तियं पाउब्भवित्था।[7] तए णं से देवे अन्तलिक्ख-पडिवण्णे[8] सोखङ्खिणियाइं जाव परिहिए सद्दालपुत्तं आजीविओ-वासयं एवं वयासी[9]—एहिइ णं, देवाणुप्पिया-कल्लं इहं महामाहणे उप्पन्न-णाण-दंसणधरे तीय[10] पच्चुपन्नम्[11] अणागत-जाणए अरहा जिणे केवली सव्वण्णू सव्वदरिसी तेलोक्क-वहिय[12]-महिय[13] पूइए, सदेवमणुयासुरस्स लोगस्स अच्चणिज्जे वन्दणिज्जे सक्कारणिज्जे सम्माणणिज्जे कल्लाणं मङ्गलं देवयं चेइयं जाव[14] पज्जुवासणिज्जे[15] तच्चकम्मसम्पया[16] सम्पउत्ते। तं णं तुमं वन्देज्जाहि जाव पज्जुवासेज्जाहि, पाडिहारिएणं[17] पीढफलगसिज्जासंथारएणं[18] उवनिमन्तेज्जाहि। दोच्चं[19] पि तच्चं[20] पि एवं वयइ, -त्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए इमीसे कहाए लद्धट्ठे

---

१. ततः—अव्यय, बाद में। २. अन्यदा—अव्यय, किसी समय में। ३. कदाचित्—अव्यय। ४. पूर्वापराह्णकाल। ५. उपागच्छति—उप+आ+√गम्—प्रथम पु० एक० वर्तमान०, गत्वा, त्ता-(क्त्वा-पूर्वकालिक कृदन्त-जाकर। ६. उपसंपादयित्वा—संबंधसूचक कृदन्त, प्राप्त करके। ७. प्रादुर्+भू—प्र० पु० एक० भूत० कृदंत। ८. प्रतिपन्नः—आश्रित-विशेषण। ९. √वच्-कहना—प्र० पु० एक० भूत०। १०. अतीत—आदिस्वर लोप, त>-अ,-य (अमा०)। ११. प्रत्युत्पन्नः-वर्तमान० कृदंत। १२. विलोकित—देखा हुआ-विशेषण। १३. देशी० महित- संस्कृत-विशेषण। १४. पवित्र। १५. पर्युपासन, उपासना। १६. तथ्य (तत्व)। १७. प्रातिहारिक—हमेशा तय्यार। १८. संस्तार—साधु का वासस्थान। १९. द्वितीयं। २०. तृतीयं।

समाणे एवं खलु समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ, तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वन्दामि जाव पज्जुवासामि, एवं संपेहेइ,[1] -त्ता ण्हाए जाव पायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं[2] जाव अप्पमहग्घाभरणालंकिय सरीरे मणुस्स वग्गुरा[3] परिगए साओ[4] गिहाओ पडिणिक्खमइ, -त्ता पोलासपुरं नयरं मज्झं मज्झेणं निग्गच्छइ,-त्ता जेणेव सहस्सम्बवणे उज्जाणे जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ,-त्ता तिक्खुत्तो[5] आयाहिणं पयाहिणं[6] करेइ, -त्ता वन्दइ नमंसइ,-त्ता जाव पज्जुवासइ ।

तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए अन्नया कयाइ वायाहययं[7] कोलालभण्डं अन्तोसालाहितो[8] वहिया णीणेइ,-त्ता आयवंसि[9] दलयइ ।[10] तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तं आजीविओवासयं एवं वयासी - 'सद्दालपुत्ता एस णं कोलाल-भण्डे कओ ?" तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए समणं भगवं महावीरं एवं वयासी-'एस णं भन्ते पुव्विं मट्टिया आसी तओ पच्छा उदएणं निमिज्जइ,-त्ता छारेण य करिसेण[11] एगयओ मीसिज्जइ,[12] -त्ता चक्के आरो-

---

१. संप्रेक्षते—सम्+प्र√-ईक्ष्-प्र० पु० एक० वर्तमान०, देखता है, दृष्ट्वा, त्ता-पूर्वकालिक कृदन्त—देखकर। २. शुद्धात्मा-वैषिकाणि—पवित्र शरीर को सजाने योग्य वस्त्र। ३. वागुरः, प्र०एक० पु०, समुदाय। ४. स्वकः,स्व सर्वनाम। ५. त्रिःकृत्वः (त्रिष्कृत्वः-वैदिक)—तिगुना। ६. आदक्षिणं-प्रदक्षिणम्—द्वि० एक० नपुं०, दक्षिण पार्श्व से प्रदक्षिणा। ७. वात्+आतपम्—धूप और हवा में सुखाये हुए। ८. शालाभिः, पं० बहु० स्त्री०, शाला-घर से। ९. आतपे—स० एक० पु०, सूर्य की गर्मी में। १०. ददाति-√दा—प्रथम पु० एक० वर्तमान०, देता है। ११. करीषेण-तृ० एक०नपुं०, सूखे गोबर से। १२. नि+√मृज्-निमज्जन करना—प्र० पु० एक० वर्तमान० कर्मवाच्य।

हिज्जइ, तत्रो बहवे करगा च जाव उद्दियात्रो य कज्जन्ति। तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तं आजीविओवासयं एवं वयासी—सद्दालपुत्ता, एस णं कोलालभण्डे किं उट्ठाणेणं जाव पुरिसक्कारपरक्कमेण[1] कज्जन्ति, उदाहु[2] अणुट्ठाणेणं[3] जाव अपुरिसक्कारपरक्कमेणं कज्जन्ति।[4]

तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए समणं भगवं महावीरं एवं वयासी - भन्ते अणुट्ठाणेणं जाव अपुरिसक्कारपरक्कमेणं, नत्थि उट्ठाणे इ[5] वा जाव परक्कमे इ वा, नियया[6] सव्वभावा।

तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तं आजीविओवासयं एवं वयासी—सद्दालपुत्ता, जइ णं तुब्भं केइ[7] पुरिसे वायाहयं वा पक्केल्लयं[8] वा कोलालभण्डं अवहरेज्जा[9] वा विक्खिरेज्जा[10] वा अग्गिमित्ताए वा भारियाए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुञ्जमाणे विहरेज्जा, तस्स णं तुमं पुरिसस्स किं दण्डं वत्तेज्जासि[11] ? भन्ते अहं णं तं पुरिसं आओसेज्जा[12] वा हणेज्जा[13] वन्धेज्जा[14] वा महेज्जा[15] वा

---

१. पुरुषात्कारपराक्रमेण—तृ० एक० पुरुषार्थ और प्रयत्न से। २. उताहो—अव्यय, अथवा। ३. अनुत्थानेन—तृ० एक० उत्पन्न होने से। ४. क्रियन्ते—प्र० पु० एक० वर्तमान०। ५. इति-अव्यय-जैन-माहाराष्ट्री की विशेषता—पूर्व अक्षर के लोप होने पर ति बच रहता है परन्तु कुछ उदाहरणों में शब्द में बाद के अक्षर का लोप हो जाता है और केवल पूर्व अक्षर इ- का प्रयोग मिलता है। ६. नियत्या-तृ० एक० पु०। ७. कदाचित्-अव्यय। ८. पक्व-क प्रत्यय। ९. अपहरेत्-√हृ-प्र० पु० एक० वर्तमान० विधि०। १०. विकिरेत्-प्र० पु० एक० वर्तमान० विधि०। ११. निवर्त्तयसि√वृत्-प्र० पु० एक० भूत०। १२. आक्रोशयामि√क्रुश् उ० पु० एक० वर्तमान०। १३. हन्मि-√हन्- उ० पु० एक० वर्तमान०। १४. बन्धामि-√बन्ध-उ० पु० एक० वर्तमान०। १५. मथ्नामि-√मन्थ्-उ० पु० एक० वर्तमान०।

तज्जेज्जा[1] वा तालेज्जा[2] वा निच्छोडेज्जा[3] वा निब्भच्छेज्जा[4] वा अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेज्जा।[5]

सद्दालपुत्ता, नो खलु तुब्भ केइ पुरिसे वायाहयं वा पक्केल्लयं वा कोलालभंडं अवहरइ वा जाव परिट्ठवेइ वा अग्गिमित्ताए वा भारियाए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुञ्जमाणे विहरइ। नो वा तुमं तं पुरिसं आओसेज्जसि वा हणेज्जसि वा जाव अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेज्जसि। जइ नत्थि उट्ठाणे इ वा जाव परक्कमे इ वा नियया-सव्वभावा। अहं णं, तुब्भ केइ पुरिसे वायाहयं जाव परिट्ठवेइ[6] वा अग्गिमित्ताए वा जाव विहरइ, तुमं वा तं पुरिसं आओसेसि वा जाव ववरोवेसि। तो जं वदसि नत्थि उट्ठाणे इ वा जाव नियया सव्वभावा, तं ते मिच्छा।

एत्थ णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए सम्बुद्धे॥

संस्कृत-छाया

पोलासपुरे नाम नगरे सहस्राम्रवने उद्याने जितशत्रु राजा। तत्र नूनं पोलासपुरे नगरे शब्दालपुत्रः नाम कुम्भकारः आजीविकोपासकः परिवसति। आजीविकसमये लब्धार्थः गृहीतार्थः पृष्टार्थः विनिश्चितार्थः अभिगतार्थः अस्थिमज्जाप्रेमानुरागरतः च अयं आयुष्मान्, आजीविकसमयार्थः अयं परमार्थः शेष अनर्थः इति। आजीविकसमयेन आत्मानं भावमानं विहरति। तस्य नूनं शब्दालपुत्रस्य आजीविकोपा-

१. तर्जयामि-√तर्ज- उ० पु० एक० वर्तमान०। २. ताडयामि-√ताड-उ० पु० एक० वर्तमान० ३. निश्छोटयामि—उ० पु० एक० वर्तमान०। ४. निर्भर्त्सयामि- उ० पु० एक० वर्तमान०। ५. व्यपरोपयामि—उ० पु० एक० वर्तमान०। ६. परिस्थापयति—√स्था-प्र० पु० एक० वर्तमान०।

सकस्य एक: हिरण्यकोटि: निधानप्रयुक्त: एक: वृद्धिं प्रयुक्त: एक: प्रविस्तर च प्रयुक्त: एक: व्रज: दशगोसहस्राणां व्रजाणां तस्य नूनं शब्दालपुत्रस्य आजीविकोपासकस्य अग्निमित्रा नाम्नीं भार्या आसीत्। तस्य नूनं शब्दालपुत्रस्य आजीविकोपासकस्य पोलासपुरस्य नगरस्य वहि: पञ्चकुम्भकारापणशता: आसन्। तत्र नूनं वहव: पुरुषा: दत्तभृत्तिभक्तवेतना: कल्यकल्यं वहव: करकान् च वारकान् च पिढरकान् च घटकान् च अर्धघटकान् च कलशान् च अलिञ्जरान् च जम्बूलयान् च उष्ट्रियान् करोति, अन्यदा च यस्य वहव: पुरुषा: दत्तभृत्तिभक्तवेतना: कल्यंकल्यं तै: वहूभि: करकेभि: च यावत् उष्ट्रिकाभि: च राजमार्गे वित्तिं क्रियमाण: विहरन्ति।

तत: नूनं स: शब्दालपुत्र: आजीविकोपासक: अन्यदा कदाचित् पूर्वापराह्नकालसमये यत्रैव अशोकवनिका तत्रैव उपागच्छति, गत्वा गोसालस्य मङ्खलिपुत्रस्य अन्तिकं धर्मप्रज्ञप्तिं उपसंपादयित्वा विहरति। तत: नूनं तस्य शब्दालपुत्रस्य आजीविकोपासकस्य एक: देव: अन्तिकं प्रादुर्भूत:। तदा नूनं स: देव: अन्तरिक्ष प्रतिपन्न: सकिङ्किणितानि यावत् परिधृत: शब्दालपुत्रं आजीविकोपासकं एवं अवादीत्—'एष्यति नूनं देवानुप्रिय, कल्यं इहं महामाहन: उत्पन्नज्ञानदर्शनधर अतीत प्रत्युत्पन्नम् अनागतज्ञान: अर्हाजिनकेवली सर्वज्ञ सर्वदर्शी त्रैलोक्यवहितमहित्त पूजित: सदेवमनुष्यासुरस्य लोकस्य अर्चनीय: वन्दनीय: सत्कारणीय: सन्माननीय: कल्याणं मगलं देवतं चैत्यं यावत् पर्युपासनीय:। तथ्यकर्मसंपत्ति सम्प्रयुक्त:। तं नूनं त्वं वन्दे: यावत् प्रत्युपासे: प्रातिहारिकेन पीढफलकशय्यासंस्तारेन उपनिमन्त्रे:। द्वितीयं अपि तृतीयं अपि एवं अवादीत्, वदित्वा याम् एव दिशं प्रादुर्भूत: ताम् एव दिशं प्रतिगत:।

तत: नूनं स: शब्दालपुत्र: आजीविकोपासक: इमां कथां लब्धार्थ: समान: ? एवं खलु, श्रमण भगवान् महावोर: यावत् विहरति, तं गच्छामि। नूनं श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दामि यावत् पर्युपासामि। एवं संप्रेक्षते, संप्रेक्ष्य स्नायित्वा यावत् प्रायश्चित्त शुद्धात्मावेपिकाणि

यावत् अल्पमहार्घाभरणालंकृतशरीरः मनुष्यवागुरापरिगतः स्वतः गृहातः प्रतिनिष्क्रमति, प्रतिनिष्क्रम्य पोलासपुरं नगरं मध्यं (प्राप्य) मध्येनं निर्गच्छति, गत्वा यत्रैव सहस्राम्रवने उद्याने यत्रैव श्रमण भगवान् महावीरः तत्रैव उपागच्छति, गत्वा त्रिःकृत्त्वः आदक्षिणप्रदक्षिणम् करोति, कृत्वा वन्दति नमस्यति, नत्त्वा यावत् पर्युपासते। ततः नूनं सः शब्दालपुत्रः आजीविकोपासकः अन्यदा कदाचित् वाताहतं इदं कौलालभाण्डं अन्तःशालायाः वहिः नयति, नीत्वा आतपे ददाति। ततः नूनं श्रमण भगवान् महावीरः शब्दालपुत्रं आजीविकोपासकं एवं अवादीत्-शब्दालपुत्र, एपः नूनं कौलालभाण्डः कुतः? ततः नूनं सः शब्दालपुत्रः आजीविकोपासकः श्रमण भगवन्तं एवं अवादीत्-एपः नूनं भदन्ते पूर्व मृत्तिका आसीत्, तत् पश्चात् उदकं निमिज्जति, निर्मयिजित्वा क्षारेण च करीषेण च एकतः मिश्रयति, मिश्रयित्वा चक्रे आरोहयति, ततः वहवः करकाः च यावत् उष्ट्रिकाः च क्रियन्ते।

ततः नूनं श्रमण भगवान् महावीरः शब्दालपुत्रं आजीविकोपासकं एवं अवादीत्-शब्दालपुत्र, एपः नूनं कौलालभाण्डः किं उत्थानेन यावत् पुरुषकार-पराक्रमेभिः क्रियन्ते, उताहो अनुत्थानेन यावत् अपुरुषकारपराक्रमेभिः क्रियन्ते।

ततः नूनं सः शब्दालपुत्रः आजीविकोपासकः श्रमण भगवन्तं महावीरं एव अवादीत्-भदन्ते अनुष्ठानेन यावत् अपुरुषाकारपराक्रमेन नास्तः उत्थाने इति वा यावत् पराक्रमे इति वा नियत्या सर्वभावाः।

ततः नूनं श्रमण भगवान् महावीरः शब्दालपुत्रं आजीविकोपासकं एवं अवादीत्—शब्दालपुत्र यदि नूनं तव कश्चित्पुरुषः वाताहतं वा पक्वं वा कौलालभाण्डं अपहरेत् वा विकिरेत् वा अग्निमित्रायै वा भार्यायै सार्धं विपुलानि भोगभोगान् भुञ्जमाणः विहरेत्। तस्य नूनं 'त्वं पुरुषस्य किं दण्डं निवर्त्तयसि ? भदन्ते, अहं नूनं तं पुरुषं आक्रोशयामि वा हन्मि।वा वन्धामि वा मथ्नामि

वा तर्जयामि वा ताडयामि वा निश्छोटयामि वा निर्भर्त्सयामि वा अकाले चैव जीवितात् वा व्यपरोपयामि ।

शब्दालपुत्र, न खलु तव कश्चित् पुरुषः वाताहतं वा पक्वं वा कौलाल-भाण्डं अपहरति वा यावत् परिस्थापयति अग्निमित्रायै वा भार्यायै सार्धं विपुलानि भोगभोगानि भुञ्जमाणः विहरति । नो वा त्वं तं पुरुषं आक्रोशयसि वा हन्सि वा यावत् अकाले चैव जीवितात् व्यपरोपयसि । यदि नास्ति उत्थानः इति वा यावत् पराक्रमं इति वा नियत्या सर्वभावा. अहं नूनं तव कश्चित् पुरुषः वाताहतं यावत् परिस्थापयति वा अग्नि-मित्रायै वा यावत् विहरति, त्वं वा तं पुरुषं आक्रोशयसि वा यावत् व्यप-रोपयसि । ततः यं वदसि नास्ति उत्थानः इतिं वा यावत् नियत्या सर्व-भावाः तं ते मिथ्या ।

यत्र नूनं तेन शब्दालपुत्रः आजीविकोपासकः सम्बुद्धः ।

उद्धरण सं०-१६

अर्ध-मागधी *श्रीज्ञाताधर्मकथाङ्गम् (अध्ययनम्-४)*

दुवे कुम्मा—

तेणं कालेणं तेणं समएणं[1] वाणारसी नामं नयरी होत्था ।[2] तीसे णं वाणारसीए नयरीए वहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसिभागे गंगाए महानदीए मयंगतीरदहे नामं दहे[3] होत्था, अणुपुव्वसुजायवप्प गंभीर-सीयलजले, अच्छविमलसलिलपलिच्छन्ने सछन्नपत्तपुप्फपलासे, वहु-उप्पल[4] पउमकुमुय-नलिण-सुभग सोगंधिय पुंडरीय-महापुंडरीय-

---

१. तेन कालेन तेन समयेन—तृतीया विभक्ति के द्वारा यहाँ पर सप्तमी का अर्थबोध कराया गया है । २. भवति-√ भू—प्र० पु० एक० वर्तमान० । ३. द्रहः—प्र० एक० पु०-बड़ा जलाशय । ४. वहूत्पल्ल—विशेषण ।

सयपत्त[1] सहसपत्त केसरपुप्फोवचिए, पासादीए[2] दरिसणिज्जे[3] अभिरूवे, पडिरूवे ।

तत्थ णं बहूणं मच्छाण[4] य कच्छभाण य गाहाण य मगराण य सुंसुमाराण य सइयाण य साहस्सियाण य सयसाहस्सियाण य जूहाइं निब्भयाइं निरुविग्गाइं[5] सुहंसुहेणं अभिरममाणगातिं[6] अभिरममाण-गातिं विहरंति । तस्स णं मयंगतीरद्दहस्स अदूरसामंते एत्थ णं महं एगे मालुयाकच्छए होत्था । तत्थ णं दुवे पावसियालगा[7] परिवसंति, पावा[8], चंडा, रोद्दा[9], तल्लिच्छा साहसिया, लोहितपाणी, आमिसत्थी,[10] आमिसाहारा, आमिसप्पिया, आमिसलोला, आमिसं गवेसमाणौ रत्तिंवियालचारिणो दिया पच्छन्नं चावि चिट्ठंति ।[11]

ततेणं ताओ मयंगतीरद्दहातो अन्नया कदाइ सूरियंसि चिरत्थ-मियंसि[12], लुलियाएसंझाए, पविरलमाणुसंसि णिसंतपडि-णिसंतंसि समाणंसि दुवे कुम्मगा आहारत्थी आहारं गवेसमाणा सणियं सणियं[13] उत्तरंति, तस्सेव मयंगतीरद्दहस्स परिपेरंतेणं सव्वतो समंता[14] परि-घोलेमाणा[15] परिघोलेमाणा वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति ।

तयणंतरं च णं ते पावसियालगा आहारत्थी आहारं गवेसमाण मालुयाकच्छयाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव मयंगतीरे द

---

१. शतपत्र । २. प्रासादित:—वर्तमान० कृदन्त । ३. दर्शनीय:—अनी प्रत्यय । अर्धमागधी में — अ: > -ए का प्रयोग मिलता है । ४. मत्स्यानां ष० बहु० पु० । ५. निरुद्विग्नानि—प्र० बहु० नपुं० । ६. अभिरमम कानि-खेलते हुए । ७. पापशृगालौ—प्र० द्वि० पुं०—शृगा सिआल-अमा० सियाल । ८. पापौ—प्र० द्वि० पु० । ९. तल्लि प्र० द्वि० पु० । १०. आमीषार्थिनौ—मांस आदि के लिये । तिष्ठत:√स्था - प्र० पु० द्वि० वर्त० । १२. चिरास्तमिते—स० नपुं० । १३. शनै: शनै—धीरे-धीरे । १४. समंतात्-पं० एक० १५. परिघूर्णमाण:— शानच् प्रत्यय, वर्तमान० कृदन्त, डरते-काँपते

तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तस्सेव मयंगतीरद्दहस्स परिपेरंतेणं परिघोलेमाणा परिघोलेमाणा वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति। तते णं ते पावसियाला ते कुम्मए पासंति[1], पासित्ता जेणेव ते कुम्मए तेणेव पहारेत्थ गमणाए।[2] तते णं ते कुम्मगा ते पावसियालए एज्जमाणे[3] पासंति, पासित्ता भीता, तत्था, तसिया, उव्विग्गा, संजातभया हत्थे य पादे य गीवाए य सएहिं सएहिं काएहिं साहरंति, साहरित्ता निच्चला, निप्फंदा तुसिणीया संचिट्ठंति[4]।

तते णं ते पावसियालया जेणेव ते कुम्मगा तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता ते कुम्मगा सव्वतो समंता उव्वत्तेंति,[5] परियत्तेंति, आसारेंति, संसारेंति, चालेंति, घट्टेंति, फंदेंति, खोभेंति, नहेहिं आलुंपंति, दंतेहिं य अक्खोडेंति,[6] नो चेव णं संचाएंति तेसिं कुम्मगाणं सरीरस्स आवाहं वा पवाहं वा वावाहं वा उप्पाएत्तए[7] छविच्छेयं वा करेत्तए।[8] तते णं ते पावसियालया एए कुम्मए दोच्चं पि तच्चं पि सव्वतो समंता उव्वत्तेंति....जाव नो चेव णं संचाएंति करित्तए। ताहे संता, तंता, परितंता, निव्विन्ना समाणा सणियं सणियं पच्चोसक्केंति, एगंतमवक्कमंति, निच्चला निप्फंदा तुसिणीया संचिट्ठंति।

तत्थ णं एगे कुमग्गे ते पावसियालए चिरंगते दूरंगए जाणित्ता सणियं सणियं एगं पायं निच्छुभति।[9] तते णं ते पावसियालया तेणं कुम्मएणं सणियं सणियं एगं पायं नीणियं पासंति, पासित्ता ताए उक्किट्ठाए गईए सिग्घं, चवलं,[10] तुरियं,[11] चंडं, वेगितं जेणेव से कुम्मए तेणेव

---

१. पश्यत:—प्र० पु० द्वि० वर्तमान०। २. गतौ—प्र० पु० द्वि० भूत०। ३. एष्यमाणौ—वर्तमान० कृदन्त। ४. संतिष्ठत:—प्र० पु० द्वि० वर्तमान०। ५. उपवर्तेते—प्र० पु० द्वि० वर्तमान०। ६. आच्छोदयत:—प्र० पु० द्वि० वर्तमान०। ७. उत्पाद्य—संबंधसूचक कृदन्त। ८. अकुरुताम्—प्र० पु० द्वि० भूत०। ९. निस्तोभति-√स्तुभ्—प्र० पु० एक० वर्तमान०। १०. चपलं। ११. त्वरितं।

उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तस्स णं कुम्मगस्स तं पायं नखेहिं आलुंपंति,[१] दंतेहिं अक्खोडेंति, ततो पच्छा मंसं च सोणियं च आहारेंति, आहंरित्ता तं कुम्मगं सव्वत्तो समंता उव्वतेंति—जाव नो चेव णं संचाएंति करेत्तए, ताहे दोच्चं पि अवक्कमंति। एवं चत्तारि वि पाया जाव सणियं सणियं गीवं णीणेंति।[२] तते णं ते पावसियालगा तेणं कुम्मएणं गीवं णीणियं पासंति, पासित्ता सिग्घं सिग्घं चवलं, तुरियं, चंडं नहेहिं दंतेहि कवालं विहाडेंति[३], विहाडित्ता तं कुम्मगं जीवियाओ[४] ववरोवेंति, ववरोवित्ता मंसं च सोणियं च आहारेंति।

एवामेव[५] समणाउसो[६] जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरियउवज्झायाणं अंतिए पव्वातिए समाणे[७] पंच य से इंदियाइं अगुत्ताइं भवंति, से णं इह भवे चेव वहूणं समणाणं वहूणं समणीणं सावगाणं होलणिज्जे,[८] पर लोगे विय णं आगच्छति वहूणं दंडणाणं, संसारकंतारं आणुपरियट्टति, जहा से कुम्मए अगुत्तिंदिए। तते णं ते पावसियालगा जेणेव से दोच्चए कुम्मए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तं कुम्मगं सव्वतो समंता उव्वतेंति.....जाव दंतेहि अक्खुडेंति""जाव नो चेव णं संचाएंति करेत्तए।

तते णं ते पावसियालगा पि तच्चं पि""जाव नो संचाएंति तस्स कुम्मगस्स किंचि आवाहं वा विवाहं वा""जाव छविच्छेयं वा करेत्तए, ताहे संता[९], तंता[१०] परितंता, निव्विन्ना समाणा जामेव दिसिं पाउब्भूआ तामेव दिसिं पडिगया। तते णं से कुम्मए ते पावसियालए चिरंगए दूरंगए जाणित्ता सणियं सणियं गीवं नेणेति, नेणेत्ता दिसावलोयं करेइ,

---

१. आलुपंतः—प्र० पु० द्वि० वर्तमान०। २. गच्छति—प्र० पु० एक० वर्तमान०। ३. विपाटयतः—प्र० पु० द्वि० वर्तमान०। ४. व्यपरोपयतः—प्र० पु० द्वि० वर्तमान०। ५. एवमेव-अव्यय। ६. श्रमणायुष्मन्—संवोधन। ७. समानः। ८. हेलया—निरादर करना। ६. श्रान्तौ—प्र० द्वि० पु०। १०. तान्तौ—प्र० द्वि० पु०।

करित्ता जमगसमगं[1] चत्तारि वि पादे नीणेति, नीणेत्ता ताए उक्किट्ठाए कुम्मगईए वीईवयमाणे वीईवयमाणे[2] जेणेव मयंगतीरद्दहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मित्तनातिनियगसयणसंबंधिपरियणेण सद्धिं[3] अभिसमन्नागए यावि होत्था।

एवामेव समणाउसो! जो अम्हं समणो वा समणी वा पंच से इंदियाति गुत्ताति भवंति से ण इह भवे अच्चणिज्जे[4] जहा उ से कुम्मा गुत्तिंदिए।

संस्कृत-छाया

तेन कालेन तेन समयेन वाणारसी नाम नगरी आसीत्। तस्याः नूनं वाणारस्याः नगरयाः वहिः उत्तरपूर्वे दिसिभागे गंगायां महानद्यां मतंगतीरद्रह नामद्रहः आसीत्—अनुपूर्वसुजातवप्रगंभीरसीतलजलः, अच्छविमलसलिलपरिच्छन्नः संछन्नपत्रपुष्पपलाशः वहूत्पल्लपद्मकुसुमनलिनसुभगसुगन्धितपुण्डरीकशतपत्रसहस्रपत्र केसरपुष्पोपचितः, प्रासादितः दर्शनीयः अभिरूपः प्रतिरूपः।

ततः नूनं वहूनां मत्स्यानां च कच्छपानां च ग्राहानां च मकराणां च शिशुमाराणां च शतिकाणां च सहस्राणां च शतसहस्राणां च यूथानि निर्भयानि निरुद्विग्नानि सुखं सुखेन अभिरममाणकानि-अभिरममाणकानि विहरतः। तस्य नूनं मतंगतीरद्रहस्य अदूरसामंते अत्र नूनं महा एकमालुकाकच्छकः आसीत्। ततः नूनं द्वौ पापशृगालौ परिवसतः पापौ, चण्डौ, रौद्रौ, तल्लिप्सौ, साहसिकौ, रोहितपाणी, आमिपार्थिनौ, आमिपाहारौ, आमिपप्रियौ, आमिपलोलौ, आमिपं गवेपमाणौ रात्रि-

---

१. यमग्रसमग्रं—देशी० अव्यय, एक साथ में। २. व्यतिव्रजमाणः—शानच् प्रत्यय, वर्त० कृदन्त। ३. सार्ध। ४. अर्चनीयः—अनीयर् प्रत्यय।

थिडालचारिणौ दिवाप्रच्छन्नं चापि तिष्ठतः, ततः नूनं तापः मतंग तीरद्रहातः अन्यदा कदाचित् सूर्ये चिरास्तमिते लुलितायांसन्ध्यां प्रविरल-मानुषे निशांतप्रतिनिशांते समाने द्वौ कूर्मकौ आहार्थिनौ आहारं गवेष-माणौ शनैः शनैः उत्तरतः तस्यैव मतंगतीरद्रहस्य परिपर्यन्तेन सर्वतः समन्तात् परिघूर्णमाणौ परिघूर्णमाणौ वृत्तिं क्रियमाणौ विहरतः।

तदनन्तरं च नूनं तौ पापश्रृगालौ आहर्थिनौ आहारं गवेपमाणौ मालुकाकच्छात: प्रतिनिष्क्रमन्तः, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव मतंगतीरद्रहः तत्रैव उपागच्छतः, उपागम्य तस्यैव मतंगतीरद्रहस्य परिपर्यन्तेन परि-घूर्णमाणौ परिघूर्णमाणौ वृतिं क्रियमाणौ विहरतः। ततः नूनं तौ पापश्रृगालौ तौ कूर्मकौ पश्यतः, दृष्ट्वा यत्रैव तौ कूर्मकौ तत्रैव प्रहारार्थं गतौ। ततः नूनं तौ कूर्मकौ तौ पापश्रृगालौ एष्यमाणौ पश्यतः, दृष्ट्वा भीतौ, त्रस्तौ, तसितौ, उद्विग्नौ संजातभयौ हस्तौ च पादौ ग्रीवौ च स्वकं स्वकं कायौ संहरतः, संहरित्य निश्चलौ, निःस्पन्दौ संतिष्ठतः।

ततः नूनं तौ पापश्रृगालौ यत्रैव तौ कूर्मकौ तत्रैव उपागच्छतः, उपागम्य तौ कूर्मकौ सर्वतः समन्तात् उपवर्तेते, परिवर्तेते आसारतः, संसरतः चलतः, घट्टते, स्फालेतेः, क्षोभयतः नखैः आलुपंतः दन्तैः च आक्षोदयतः, न चैव नूनं संशक्नुतः तस्मिन् कूर्मकौ शरीरस्य आवाधं वा व्यावाधं वा उत्पाद्य छविच्छेदं वा अकुरुताम्।

ततः नून तौ पापश्रृगालौ एनौ कूर्मकौ द्वितीयं अपि तृतीयं अपि सर्वतः समन्तात् उपवर्तेते.........यावत् नः चैव नूनं संशक्नुतः (तावत्) अकुरुताम्। तथैव श्रान्तौ परितान्तौ निर्विग्नौ समानौ शनैः शनैः प्रति-संशक्नुतः एकान्तमवक्रामतः निश्चलौ निस्पन्दौ तूष्णीं संतिष्ठतः।

ततः नून एकः कूर्मकः तौ पापश्रृगालकौ चिरंगतौ दूरंगतौ ज्ञात्वा शनैः शनैः एकं पादं निस्तोभति। ततः नूनं तौ पापश्रृगालौ तं कूर्मकम् शनैः शनैः एकेन पादेन नीतं पश्यतः, दृष्ट्वा तं उत्थित्वा गतः शीघ्रं, चपलं, त्वरितं, चंडं, वेगितं, यत्रैव सः कूर्मकः तत्रैव उपा-गच्छतः, उपागम्य तस्य नूनं कूर्मकस्य तं पादं नखैः आलुंपतः दंतैः

आत्तोदयतः, ततः पश्चात् मांसं च श्रोणितं च आहरतः, आहृत्य तं कूर्मकं सर्वतः समन्तात् उपवर्तेते.........यावत् न चैव नूनं संशक्नुतः (तावत्) अकुरुताम्, तथैव द्वितीयं अपि अपक्रामतः। एवं चत्वारः अपि पादौ यावत् शनैः शनैः ग्रीवां नयतः। ततः नूनं तौ पापश्रृगालौ तं कूर्मकं ग्रीवया नीतं पश्यतः, दृष्ट्वा शीघ्रं, चपलं, त्वरितं, चण्डं नखैः दंतैः कपालं विपाटयतः, विपाट्य कूर्मकं जीवितात् व्यपरोपयतः, व्यपरोपयित्वा मांसं च श्रोणितं च आहरतः।

एवमेव श्रमणायुष्मन्-यः अस्माकं निर्गन्थः वा निर्ग्रन्थी वा आचार्योपाध्यानाम् अंतिके प्रव्राजितः समानः पञ्च च तस्य इन्द्रियाणि अगुप्तानि भवन्ति, तस्य नूनं इह भवे चैव वहूनां श्रमणाणां वहूनां श्रमणीणां श्रावकानां श्राविकानां हेलया परलोके अपि च नूनं आगच्छति वहूनि दण्डनानि, संसारकान्तारं अनुपर्यटति तथा सः कूर्मकः अगुप्तेन्द्रियः ततः नूनं तौ पापश्रृगालौ यत्रैव तस्य द्वितीयः कूर्मकः तत्रैव उपागच्छतः, उपगम्य तं कूर्मकं सर्वतः समन्तात् उपवर्तेते....... यावत् दंतैः आत्तोदयतः यावत् नः चैव नूनं संशक्नुतः (तावत्) अकुरुताम् ततः नूनं तौ पापश्रृगालौ अपि तृतीयं अपि यावत् नः संशक्नुतः तस्य कूर्मकस्य किंचित् आवाधं वा विवाधं वा..............यावत् छविच्छेदं वा अकुरुताम्। तौ श्रान्तौ तान्तौ परितान्तौ निर्विग्नौ समानौ यामेव दिशं प्रादूर्भूतः तामेव दिशं प्रतिगतौ।

ततः नूनं सः कूर्मकः तौ पापश्रृगालौ चिरंगतौ दूरंगतौ ज्ञात्वा शनैः शनैः ग्रीवां नयतः, नीत्वा दिशावलोकं करोति, कृत्वा यमग्रसमग्रं चत्वारः अपि पादाः नयतः, नीत्वा उत्थाय कूर्मकः व्यतिव्रजमाणः व्यतिव्रजमाणः यत्रैव मतंगतीरद्रहः तत्रैव उपागच्छतः, उपागम्य मित्रज्ञातिनिजस्वजनपरिजनानां सार्धं अभिसमन्वागतौ यापि भवतः।

एवमेव श्रमणायुष्मान्—यः अस्माकं श्रमणः वा श्रमणी वा पञ्च अस्य इंद्रियाणि गुप्तानि भवन्ति सः नूनं इह भवे अर्चनीयः यथा तु सः कूर्मकः गुप्तेन्द्रियः।

उद्धरण सं-२०

प्राकृत-धम्मपद   मगवग्ग

१—(उ) जुओ[1] नमो[2] सो मगु[3] अभय[4] नमु स[5] दिश[6]
रधो[7] अकुयनो[8] नमु धमत्रकेहि[9] सहतो[10] ॥
२—हिरि[1] तस[2] अवरमु[3] स्मति[4] स परिवरन[5]
धमहु[6] सरधि[7] ब्रोमि[8] समेदिठि[9] पुरेजव[10] ॥

१—१. ऋजुकः > उजुको (पालि) प्र० एक० पु०—सीधा। २. नामो (पालि), धम्मपद की भाषा में दीर्घ स्वरों के प्रयोग का अभाव है इसलिये नामो > नमो मिलता है। ३. मार्गः > मग्गो (पालि) > मगु-प्र० एक० पु० में -ओ विभक्ति का प्रयोग होता है परन्तु-उ का वैकल्पिक प्रयोग मिलता है। ४. अभया (पालि), प्र० एक० स्त्री०, भयरहित। ५. सः > सो (पालि) प्र० एक० पु०-तद् सर्व०। ६. दिशा > दिसा (पालि) तालव्य श का प्रयोग संस्कृत और अशोकी प्राकृत-(शाहबाजगढ़ी, मनसेहरा) के सदृश सुरक्षित रहता है। ७. रथः > रथो (पालि)—प्र० एक० पु०-थ > -ध का प्रयोग द्रष्टव्य है। ८. अकुजनः > अकुजनो (पालि), (अकुयानो- पालि खराब रथ)—शब्दरहित। ९. धर्मचक्रैः > धम्मचक्केहि (पालि) (सं० धर्मतर्कैः > धम्मतक्केहि, पालि), -तर्क > तक्र-ध्वनिविपर्यय के अनुसार), तृ० बहु० पु०। १०. संयुक्तः > संयुत्तो (पालि), संहितो, सहितो, संहतो-जुड़ा हुआ।

२—१. ह्री > -हिरी-स्वरभक्ति का उदाहरण, लज्जा। २. तस्य > तस्स (पालि)। ३. अप + आलम्बः > अपालम्बो-(पालि)-ल > -र,-म्ब > -म का प्रयोग। ४. स्मृति। ५. परि + वारणं—ण मूर्धन्य ध्वनि का अभाव। ६. धर्मम् + अहं > धम्माहं (पालि)—धम्मपद की भाषा में संयुक्त व्यंजनों का अभाव मिलता है। सं० और पालि-अं > -उ का प्रयोग। ७. सार्थिम् > सार्थि। ८. ब्रवीमि > ब्रूमि—उ० पु०, एक० वर्तमान०, -अव > -ओ। ९. समयक दृष्टि > सम्मादिट्ठि (पालि), समे < समयक। १०. पुरेजातः > पुरे जवं (पालि)।

आच्चोदयतः, ततः पश्चात् मांसं च श्रोणितं च आहरतः, आहृत्य तं कूर्मकं सर्वतः समन्तात् उपवर्तेते.........यावत् न चैव नूनं संशक्नुतः (तावत्) अकुरुताम्, तथैव द्वितीयं अपि अपक्रामतः। एवं चत्वारः अपि पादौ यावत् शनैः शनैः ग्रीवां नयतः। ततः नूनं तौ पापश्रृगालौ तं कूर्मकं ग्रीवया नीतं पश्यतः, दृष्ट्वा शीघ्रं, चपलं, त्वरितं, चण्डं नखैः दंतैः कपालं विपाटयतः, विपाट्य कूर्मकं जीवितात् व्यपरोपयतः, व्यपरोपयित्वा मांसं च श्रोणितं च आहरतः।

एवमेव श्रमणायुष्मन्-यः अस्माकं निर्गन्थः वा निग्रन्थी वा आचार्योपाध्यानाम् अंतिके प्रव्राजितः समानः पञ्च च तस्य इन्द्रियाणि अगुप्तानि भवन्ति, तस्य नूनं इह भवे चैव बहूनां श्रमणाणां बहूनां श्रमणीणां श्रावकानां श्राविकानां हेलया परलोके अपि च नूनं आगच्छति बहूनि दण्डनानि, संसारकान्तारं अनुपर्यटति तथा सः कूर्मकः अगुप्तेन्द्रियः ततः नूनं तौ पापश्रृगालौ यत्रैव तस्य द्वितीयः कूर्मकः तत्रैव उपागच्छतः, उपगम्य तं कूर्मकं सर्वतः समन्तात् उपवर्तेते....... यावत् दंतैः आच्चोदयतः यावत् नः चैव नूनं संशक्नुतः (तावत्) ... । ततः नूनं तौ पापश्रृगालौ अपि तृतीयं अपि यावत् नः संशक्नुतः कूर्मकस्य किंचित् आवाधं वा विवाधं वा..............यावत् छ... वा अकुरुताम्। तौ श्रान्तौ तान्तौ परितान्तौ निर्विग्नौ समानौ दिशं प्रादूर्भूतः तामेव दिशं प्रतिगतौ।

ततः नूनं सः कूर्मकः तौ पापश्रृगालौ चिरंगतौ दूरंगतौ ... शनैः ग्रीवां नयतः, नीत्वा दिशावलोकं करोति, कृत्वा ... अपि पादाः नयतः, नीत्वा उत्थाय कूर्मकः ... व्यतिव्रजमाणः यत्रैव मतंगतीरद्रहः तत्रैव उपागच्छतः, ... निजस्वजनपरिजनानां सार्धं अभिसमन्वागतौ यापि भवतः

एवमेव श्रमणायुष्मान्—यः अस्माकं श्रमणः वा ... अस्य इंद्रियाणि गुप्तानि भवन्ति सः नूनं इह भवे अर्च... कूर्मकः गुप्तेन्द्रियः।

उद्धरण सं-२०

प्राकृत-धम्मपद   मगवग्ग

१—(उ) जुओ[१] नमो[२] सो मगु[३] अभय[४] नमु स[५] दिश[६]
रधो[७] अकुयनो[८] नमु धमत्रकेहि[९] सहतो[१०] ॥
२—हिरि[१] तस[२] अवरमु[३] स्मति[४] स परिवरन[५]
धमहु[६] सरधि[७] ब्रोमि[८] समेदिठि[९] पुरेजव[१०] ॥

१—१. ऋजुकः>उजुको (पालि) प्र० एक० पु०—सीधा। २. नामो (पालि), धम्मपद की भाषा में दीर्घ स्वरों के प्रयोग का अभाव है इसलिये नामो> नमो मिलता है। ३. मार्गः>मग्गो (पालि,>मगु-प्र० एक० पु० में -ओ विभक्ति का प्रयोग होता है परन्तु-उ का वैकल्पिक प्रयोग मिलता है। ४. अभया (पालि), प्र० एक०स्त्री०, भयरहित। ५. सः>सो (पालि) प्र० एक०पु०-तद् सर्व०। ६. दिशा>दिसा(पालि)तालव्य श का प्रयोग संस्कृत और अशोकी प्राकृत-(शाहबाजगढ़ी, मनसेहरा) के सदृश सुरक्षित रहता है। ७. रथः>रथो (पालि)—प्र० एक० पु०-थ>-ध का प्रयोग द्रष्टव्य है। ८. अकुजनः>अकुजनो (पालि), (अकुयानो- पालि खराब रथ)—शब्दरहित। ९. धर्मचक्रैः>धम्मचक्केहि (पालि) (सं० धर्मतर्कैः> धम्मतक्केहि, पालि), -तर्क>तक्र-ध्वनिविपर्यय के अनुसार), तृ० बहु० पु०। १०. संयुक्तः>संयुत्तो (पालि), संहितो, सहितो, संहतो-जुड़ा हुआ।
२—१. ह्री>-हिरी-स्वरभक्ति का उदाहरण, लज्जा। २. तस्य>तस्स (पालि)। ३. अप+आलम्बः>अपालम्बो-(पालि)-ल>-र,-म्ब>-म का प्रयोग। ४. स्मृति। ५. परि+वारणं—ण मूर्धन्य ध्वनि का अभाव। ६. धर्मम्+अहं>धम्माहं (पालि)—धम्मपद की भाषा में संयुक्त व्यंजनों का अभाव मिलता है। सं० और पालि-अं>-उ का प्रयोग। ७. सार्थिम्>सार्थि। ८. ब्रवीमि>ब्रूमि—उ० पु०, एक० वर्तमान०, -अव>-ओ। ९. समयक दृष्टि>सम्मादिट्ठि (पालि), समे<समयक। १०. पुरेजातः>पुरे जवं (पालि)।

जौ० अठं पटिवेदयतु म। ति सवत च जनस ... .कं।
शा० " पटि्वेदेतु मे। .. सव्रत्र च जनस अठ करो.. ... ।
मा० " पटिवेदेतु मे। .. सत्रत्र च जनस अथ्र करोमि अहं।

गि० य .. च किंचि मुखतो आञपयामि[1] स्वयं दापकं[2] वा
का० यं पि चा किछि मुखते आनपयामि हकं दापकं वा
धौ० अं पि च किंछि मुखते आनपयामि ... दापकं वा
जौ० अं पि च किंछि मुखते आनपयामि .... दापकं वा
शा० यं पि च किंचि मुखतो अणपयामि अहं दपकं व
मा० यं पि .. किंचि मुखति अणपेमि अहं दपकं व

गि० स्रावापकं[3] वा य व पुन महामात्रे सु आचायिके[4]
का० सावकं वा ये वा पुना महामातेहि अतियायिके
धौ० सावकं वा ए वा .... महामा(तेहि) अतियायिके
जौ० सावकं वा ए वा .... महामातेहि अतियायिके
शा० श्रवक[5] व य व पुन महमत्रनं अचयिकं
मा० श्रवकं व यं व पुन महमेत्रहि अचयिके

गि० आरोपितं[6] भवति ताय अथाय[7] विवादो निभती[8] व संतो
का० आ....पितं होति ताये ठाये " विवादे निभति वा संतं
धौ० आलोपितं होति तसि अठसि विवादे निभती वा संतं
जौ० आलोपिते होति तसि अठसि विवादे ....
शा० आरोपितं भोति तये अठये विवदे .... .. संतं

---

१. आज्ञापयामि-उ० पु० एक० वर्तमान०, प्रेरणार्थक०। २. दापकं-द्वि० एक० पु०। ३. श्रावकं-द्वि० एक० पु०- ४. आत्ययिकं-द्वि० एक० पु०। ५. श्रावकं-द्वि० एक० पु०। पहले कहा जा चुका है कि शाह० मान० के लेखों में लिपिदोष के कारण दीर्घ स्वर का प्रयोग नहीं मिलता। ६. आरोपितं-क्त प्रत्यय-भूत० कृदन्त। ७. अर्थाय-च० एक० पु०-अर्थ के लिये। ८. निक्षिप्तो—उपस्थित हो।

मा० आरोपित भोति तये अथये विवदे निभति व संत

गि० परिसायं[1] आनंतरं[2] पटिवेदेत[3] " मे " सर्वत्र सर्वे काले।
का० पलिसाये अनंतलियेना पटि··· वियेमे " सवता सवं कालं।
धौ० पलिसाय आनंतलियं पटिवेदेत विये मे ति सवतं सवं कालं।
जौ० ' लिसाय अनंतलियं पटिवेदेत विये मे ति सवत सवं कालं
शा० परिषये अनंतरियेन पटिवेदेत वो मे " सवत्र सत्र कालं
मा० परिषये अनंतलियेन पटिवेदित विये मे " सत्रत्र सत्र कल।

गि० एवं मया आञपितं[4] । नास्ति हि मे तोसो
का० हेवं आनपयिते ममया। नथि[5] हि मे दोसे[6]
ध० हेवं मे अनुसथे । नथि (हि मे) (तो)से
जौ० 'वं मे अनुसथे । नथि हि मे तोसे
शा० एवं अणपितं मय । नस्ति हि मे तोषो
मा० एवं अणपित मय । नस्ति हि मे तोषे

गि० उस्टानम्हि[7] अथसंतीरणाय[8] च । कतटवमते[9] हि मे
का० व उठानसा अठसंतिलनाये चा। कटवियमुते हि मे
धौ० उ(ठान)सि अठसंतीलनाय च। कटवियमते हि मे
जौ० उठानसि अठसंतीलनाय च। ······ " मे
शा० उठनसि अठसंतिरणये च। कटवमत हि मे
मा० उठनसि अथसंतिरणये च। कटवियमते हि मे

---

१. परिषदां। २. आनन्तर्येण—तृ० एक० नपुं०। ३. प्रतिवेदयितव्यं-भविष्यकालिक कृदन्त। ४. आज्ञापितं- भूत० कृदन्त। ५. नास्ति-न+अस्ति-√अस प्र० पु० एक० वर्तमान०। ६. तोषः-प्र० एक० पु०, अः>-ए-पूर्वी रूपों की विशेषता है। ७. उत्थाने- स० एक० नपुं०-परिश्रम में। ८. अर्थसंतरणाय-तृ० एक० नपुं-राजकाज से। ९. कर्तव्यमतं।

गि०	सर्वलोकहितं ।	तस[1]	च	पुन	एस[2]	मूले[3]	उस्टानं[4]
का०	सवलोकहिते ।	तसा	....	पुना	एसे	मुले	उठाने
धौ०	सवलोकहिते ।	तस	च	पन	इयं	मूले	उठाने
जौ०	सवलोकहिते ।	तस	च	पन	इयं	मूले	उठाने
शा०	सव्रलोकहितं ।	तस	च	....		मुलं एत्र	उथनं
मा०	सव्रलोकहिते ।	तस	चु	पुन	एपे	मुले	उठने

गि०	च	अथसंतीरणा[5]	च	नास्ति	हि	कमंतरं[6]	सर्वलोक
का०	...	अठसतिलना	चा	नथि	हि	कंमतला	सवलोक
धौ०	च	अंठसंतीलना	च	नथि	हि	कंमत	सवलो(क)
जौ०	च	अठसंतीलना	च	नथि	हि	कंमतला	सवलोक
शा०	...	अठसंतिरण	च	नस्ति	हि	क्रमतरं	सव्रलोक
मा०	...	अथ्रसतिरण	च	नस्ति	हि	क्रमतर	सव्रलोक

गि०	हितत्या[7] ।	य च	किंचि	पराक्रमामि[8]	अहं	किंति,	भूतानं[9]
का०	हितेना ।	यं च	किंचि	पलकमामि	हकं[10]	किंति	भूतानं
धौ०	हितेन ।	अं च	" छि	पलकमामि	हकं	किंति	भूतानं
जौ०	हितेन ।	अं च	किचि	पलकमामि	हकं	...	....
शा०	हितेन ।	यं च	किंचि	परक्रमामि	...	किति	भुतनं
मा०	हितेन ।	यं च	किंचि	पराक्रममि	अहं	किंति	भुतनं

---

१. तस्य-ष० एक० नपुं०, उसका। २. एतत् । ३. मूल:-प्र० एक० पु० । ४. उत्थानं-ल्युट् प्रत्यय । ५. अर्थसंतरणं-ल्युट्-प्रत्यय । ६. कर्मानन्तरं । ७. हितात्-(हितेन) । ८. पराक्रमे-उ० पु० एक० वर्तमान० । ९. भूतानां—ष० बहु० पुलिंग । १०. अहं—उ० पु० एक० पु० अस्मद् सर्वनाम—पूर्वी भाषा रूपों में हकं> हउं (आधुनिक पूर्वी हिन्दी में) मिलता है।

गि०	आनंणं[1]	गछेयं[2]	.. इध	च	नानि[3]	सुखापयामि[4]
का०	अननियं	येहं[5]	ति हिद	च	कानि	सुखायामि
धौ०	आ(न)नियं	येहं	ति हिद	च	कानि	सुखयामि
जौ०	.. नानियं	येहं	ति हिद	च	कानि	सुखयामि
शा०	अनणियं	व्रछेयं[6]	.. इअ	च	प ..	सुखयमि
मा०	अनणियं	येहं	.. इअ	च	प ..	सुखयमि

गि०	परत्रा	च	स्वगं	आराधयंतु[7]	..	।	त[8]	एताय	अथाय
का०	पलत	चा	स्वगं	आलाधयितु	..	।	से	एताये	ठाये
धौ०	परत्ता	च	स्वगं	(आ)लाधयंतु	ति	।	..	एताये	....
जौ०	पलत	च	स्वगं	आलाधयंतु	ति	।	..	एताये	अठाये
शा०	परत्र	च	स्यगं	अरधेतु	..	।	..	एतये	अठये
मा०	परत्र	च	स्यग्रं	अरधेतु	ति	।	से	एतये	अथ्रये

गि०	अयं	धंमलिपि	लेखापिता[9]	किंति	चिरं	तिस्टेय[10]	होतु
का०	इयं	धमलिपि	लेखिता	....	चिल	ठितिक्या	होतु
धौ०	यं	धंमलिपी	लिखिता	....	चिल	ठितीका	होतु
जौ०	इयं	धंमलिपी	लिखिता	....	चिल	ठितिक्या	होतु
शा०	अयि	ध्रम	दिपिस्त	...	चिर	थितिक	भोतु
मा०	इयं	ध्रमदिपि	लिखित	....	चिर	ठितिकं	होतु

---

१. आनृण्यं—उऋण होना । २. गच्छेयं । ३. कांश्चित् । ४. सुखयामि—उ० पु० एक० वर्तमान० प्रेरणार्थक० । ५. गच्छेयं । ६. प्रजेयं । ७. आराधयन्तु—उ० पु० एक० वर्तमान० विधि० । ८. ततः । ९. लेखिता—प्र० पु० एक० भूत०, प्रेरणार्थक० । १०. स्थितिका ।

अनुक्रमणिका

रचनाएँ	पृष्ठ

सहायक-ग्रन्थ सूची

अंग्रेजी—

१. ऑरिजिन ऐन्ड डेवलेपमेन्ट आव् बंगाली लैंग्वेज-डॉ सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या
२. इन्ट्राडक्शन टु प्राकृत-डॉ० ए० सी० वूल्नर, १९३९
३. इन्डो आर्यन ऐन्ड हिन्दी-डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या
४. ऐन इन्ट्राडक्शन टु प्राकृत ग्रामर-डॉ० दिनेशचन्द्रसेन
५. ऐन इन्ट्राडक्शन टु अर्धमागधी-डॉ० ए० एम्० घटगे, १९४१
६. ओल्ड परशियन इन्स्क्रिप्शंस, डॉ० सुकुमारसेन १९४१
७. कम्परेटिव ग्रामर आव् दि मिडिल इन्डो आर्यन-डॉ० सुकुमारसेन, १९५१
८. पालि लिट्रेचर ऐन्ड लैंग्वेज- (विल्हेल्म गाइगर) -अनु० डॉ० वटकृष्णघोष, १९४३
९. प्राकृत लैंग्वेजेज़ एन्ड देयर कन्ट्रीब्युशन टु इन्डियन कल्चर-डॉ० एस्० एम्० कत्रे, १९४५
१०. प्राकृत धम्मपद-संपादक-डॉ० वेनीमाधव वरुआ, शैलेन्द्रनाथ मित्रा, १९२१
११. हिस्ट्री आव् इन्डियन लिट्रेचर-मॉरिस विन्टरनित्स, भाग २, १९३३

जर्मन—

१. ग्रमटिक डेर प्राकृत स्प्राख़ेन-डॉ० रिचार्ड पिशेल

प्राकृत—

१. कंसवहो-(रामपाणिवाद) -डॉ० ए० एन्० उपाध्ये, १९४०
२. गउडवहो (वाक्पतिराज)-पांडुरंग पण्डित-१९२७
३. गाहासत्तसई (हाल)-गंगाधर भट्ट, १९११

४. देशीनाममाला (हेमचन्द्र)-आर० पिशेल, १९३२
५. भविसयत्त कहा-(धनपाल)-गायकवाड़ ऑरियन्टल सिरीज़, २०-सं० सी० डी० दलाल, पांडुरंग दामोदर गुणे, १९२३
६. पाइअलच्छी नाममाला-(धनपाल)
७. प्राकृत-प्रकाश-(वररुचि)-डॉ० पी० एल० वैद्य, १९३१
८. प्राकृत-लक्षण (चण्ड), हार्नली, १८८०
९. प्राकृत व्याकरण-(शब्दानुशासन-हेमचंद्र), बाम्बे संस्कृत ऐन्ड प्राकृत सिरीज़, ६०, १९३६
१०. रावणवहो (प्रवरसेन)-रामदास भूपति, १८९५
११. वज्जालग्गं (जयवल्लभ)-सं० जूलियस लेबर, १९४४
१२. समराइच्चकहा (हरिभद्र)-डॉ० हर्मन जकोबी, १९२६

संस्कृत—

१. अभिज्ञान शाकुंतलम्- (कालिदास), सं० नारायण बालकृष्ण गोडबोले, १९१६
२. कर्पूरमंजरी-(राजशेखर), सं० वासुदेव, १९२७ ई०
३. मृच्छकटिकम् (शूद्रक)-नारायण बालकृष्ण गोडबोले, १८९६
४. रत्नावली-श्रीहर्ष देव, १९१८
५. स्वप्नवासवदत्तम् (भास), श्री जगन्नाथ शास्त्री, सं० २००२

हिन्दी—

१. अशोक के धर्मलेख, जनार्दन भट्ट, संवत् १९८०
२. जिनागम कथा संग्रह, अध्यापक बेचरदास दोशी, १९४०
३. पाइअ सद्द महण्णव, भाग १-४, गोविन्ददास सेठ
४. पालि महाव्याकरण-भिक्षु जगदीश काश्यप, १९४०
५. पालि-प्रबोध-प्रो० आद्यादत्त ठाकुर
६. प्राकृत प्रवेशिका (अनु०)-डा० बनारसीदास जैन
७. हिन्दी में अपभ्रंश का योग-श्री नामवरसिंह, १९५२

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	१६	नेसार्गिक	नैसर्गिक
३	६	प्राकृती	प्राकृतीति
७	१३	माहाराष्ट्र-श्रयां	महाराष्ट्राश्रयां
८	२०	तुयच्च्	तु यश्च्
१०	२४	के द्वारा	को
१४	२३	ब्राह्मी	ब्राह्मी
१६	५	भाष्य	भाषा
१८	४	को	×
,,	८	भाषा प्राचीन और शौरसेनी	प्राचीन भाषा
१९	४	चंन्दनक	चन्दनक
२३	४	ने	×
२५	१६	जिसमें	×
,,	२०	सूत्र	सूत्र में
२८	१३	धम	धर्म
२९	१०	अश	अंश
३३	१७	ने	×
३६	२	के	में
,,	१७	के	से
३७	२५	वेत्रर	वेवर
३८	२६	वर्धनाचार्य	वर्धनाचार्य
४०	१५	यद्यपि	×
,,	२३	का	की
४१	६	प्रयोग बराबर	बराबर प्रयोग
४४	१४	प्राकृतों	प्राकृतों में
,,	,,	उसमे	×
,,	१५	उसके	अर्धमागधी के
४५	१२	मिनिन्दिये	विनिन्दिये
४६	६	इसे	×
५२	१५	भाषों	भाषाओं
५५	७	अर्	अर
५६	१०	ध्वनियों	व्यंजन
,,	२२	लाप	लोप
५७	७	व्यंजनान्त	व्यंजनान्त
५८	२६	कत्रे	कत्रे ने
५९	५	< कुठ	>कुठ
,,	,,	ऋ<	ऋ>
,,	७	मृत<	मृत>
,,	,,	कृत<	कृत>
६०	१६	सहिता	संहिता
,,	१७	सदश	सदृश
,,	,,	रूप	रूप
६१	१६	Skeldi-deti	Skeldeti

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६२	२०	द्वितीया	द्विवचन
६३	४	काविभ्याम्	कविभ्याम्
,,	११	प्रयत्नलाघव	प्रयत्नलाघव
६४	५	तत्तल्य	तत्तुल्य
,,	९	दण्डी	दण्डी और
६५	६	का	का रूप
,,	१६	व्युत्पति	व्युत्पत्ति
६६	१४	अपने	अपना
,,	१६	एक	×
६७	१	की	का
,,	४	होती	होता
,,	१०	किया	दिया
,,	१५	में	की
६८	२५	पुंज	पुंज
,,	,,	आनं	ज्ञानं
७०	१७	देवदसिक्यि	देवदासिक्यी
,,	२०	उसका	उसके
७१	८	सोहगोरा	सोहगौरा
,,	१६	कल्यान	कल्याण
,,	१५	कि	×
७३	१५	दुइ	दुह
७४	९	अवक	आवक
,,	८	संभ्रय	संभ्रम
७५	२०	भरइ	भरह
७७	९	वेकल्पिक	वैकल्पिक
,,	१५	गत्वा	कृत्वा
,,	फुट० १	व्यातृते	व्यापृते
७८	७१	भोइण	भोदूण
,,	२	गदुग्र	कदुग्र
७९	५	सान्त	सन्ति
८०	२	हे	है
८६	७	उस	इस
८७	९	अङ्गऽम	अङ्ग अङ्ग
९९	७	देङ्डुभो	डुङ्गडुभो
,,	१४	ओष्ठ	ओट्ठ
१०८	१६	का	के
,,	१७	संबंध	के संबंध
११०	३	भी	की
११२	२२	द्यति	द्युति
११५	५	धर्य	धैर्य
,,	फुट० १,४	इया०	न्या० व्या०
११९	११	अथवा	और
१२०	५	अध्धो	अद्धो
१२२	१०	ङस्	ङस
१२३	१	तुम्हहि	तुम्हेहिं
,,	१४	वैकल्प	विकल्प
१२४	४	मिलाता	मिलता
१२५	२	अंस्	अंसु
,,	६	किया	×
१२६	१३	-ल	-ल का
,,	,,	लिखता	मिलता

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२९	५	चउरों	चउरो
,,	८	उ	उदा०
१२९	१५	ओ>औ	औ> अउ
१३२	१	शब्दों	पदों
१३३	२३	का	शब्द का
,,	२४	शब्द	×
१३८	४	ग्रंथ	अनेक ग्रंथ
,,	फुट० १	चतुर्थ्यो:	चतुर्थ्या:
१४२	१९	अहि>	अहि<
१४४	१३	अ०	अका०
१४६	२	म	में
,,	५	रजिनि	राजिनि
१४९	७	(सु	(सु)
,,	,,	(ही	(हि)
१५४	५	(ङ) सि	(ङसि)
१५५	१४	वच्छ>	वच्छ<
,,	फुट० १	प्र०	प्रा०
१५९	१४	। ६	है । ६
१६७	३	अम्ह	में अम्ह
,,	१०	त्त> त्व)	-त्व, तस्सि
१७०	१	(तद्)	(एतद्)
१७३	१०	तोषां	तेषां
१७४	१	जड़	जुड़
१७५	७	विकाप्र	विकास
१८५	१०	मभाहि	ममाहि
१९२	१	सत्तिरिं	सत्तिरि
,,	११	प्रयोग	×
१९२	१२	व्यापक	व्यापक प्रयोग:
,,	२०	अर्धतुर्थ	अर्ध चतुर्थ
,,	२१	अद्वछट्ठ	अद्ध छट्ठ
१९५	१५	चन्दिमएँ	चन्दिमएँ
,,	१६	मरगय-कन्तिएँ	मरगय-कन्तिएँ
१९६	६	अलिउलइं	अलिउलहं
,,	,,	करिगण्डाइं	करिगण्डाहं
२००	२	ङेसि	ङसि
२०३	१	आर	और
२०७	१२	अनुभोदित्वा	अनुमोदित्व
२०९	फुट० ६	,,	व्या०
२१०	फुट० ४	प्र०	व्या०
२१२	८	अभवतभव	अभवत, भव
२१९	२२	पइण्णा>	पइण्णा<
२२०	३	वुक्त्चइ	वुच्चइ
२२१	१६	वुत्ते (प्पिणु)	वुत्तेप्पिणु
२२३	१३	पच्यलिउ	पच्चलिउ

चयनिका

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	फुट० ३	नपुं०	पु०
,,	,, ७	,,	,,
२	,, १३	,,	,,
३	,, ५	,,	,,
,,	,, ६	एक०	×
,,	,, ८	नपुं०	पु०
,,	,, ११	,,	,,
,,	,, १३	,,	,,
४	,, २	,,	,,

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५	११	त्यगिनो	त्यागिनो
६	१	अन्नण	अन्नाण
,, फुट०	२	नपुं	पु०
,, ,,	८	,,	,,
,, ,,	१०	,,	,,
,, ,,	११	,,	,,
७ ,,	४	,,	,,
८	१५	शक्य	शक्यते
९	४	दिवसा	दिवसा:
,,	१९	सन्मान:	सन्माना:
,,	२८	जनसङ्कलापि	जनसङ्कुलापि
१०	५	√त्वप्	√त्विप्
,, फुट०	१६	नपुं०	×
११ ,,	१	नपुं०	पु०
१३	१५	विशुद्धाम्	विशुद्धम्
१४ फुट०	७	नपुं०	पु०
१६	८	तस्य	एतस्य
१९	६	दिष्ट्या	दृष्ट्या
२० फुट०	५	अमुयो:	तेषु
,, ,,	६	अदस्	तद्
२१ ,,	१	द्वि०	बहु०
,,	१६	एन्ति जन्ति	एन्ती जन्ती
२३	२	तावत् अमुयो:	तेषु तावत्
२४	१	नन्ददु	नन्दतु

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
,,	१	मण्डल	मण्डलं
,,	२	पत्तम्मि	एतम्मि
,,	५	हारजटठ	हारलट्ठि
,,	२०	लोयाणो	लोयणो
२५	६	सहस्सं	सहस्स
,, फुट०	९	नपुं०	पु०
२६	१	दसियाए	दासियाए
,,	३	महाणान्दो	महाणन्दो
,, फुट०	२	प्र०	पु०
२७	५	लाइल	लाङ्ल
२८	५	सग्गायवग्ग	सग्गापवग्ग
,,	१२	तणाओ	तणओ
२९	३	भजिअं	भणिअं
,,	७	दुत्थ	दुत्था
,,	,,	सौक्खेण	सोक्खेण
,, फुट०	१४	नपुं०	पु०
३०	८	णिच्यं	णिच्चं
३०	१०	गुणथुई	गुणथुइं
,,	३	नि:स्थापनमो	नि:स्थापनम्
३१	१४	सुहंजयायं	सुहजणयं
,, फुट०	४	नपुं०	स्त्री०
३२	७	तेव	तैव
,, फुट०	१	नपुं०	पु०
,,	,,	,,	स्त्री०
३४ फुट०	२	,,	,,

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३८	८	आत्मानो	आत्मनो
,,	३	वान	वा न
,,	१८	-फुलाया	-फुल्लया
३९	६	निवर्तिष्यत	निवर्तिष्यति
४२	६	विस्तरेण	विस्तारेण
,,	१७	प्रत्यक्षेः	प्रत्यक्षः
४३	७	उपसप्पमि	उपसप्पामि
,,फुट०	२	द्द	त
४४	१	अंत में	भोदि
,,	२	अभिस्मदि	अभिश्मति
,,	१७	विएणाविस्सं	विएणविस्सं
,फुट०	३	√नि	√नी
,, ,,	४	अनुप्रेतिः	अनुप्रेषितः
४५	५	अद्यः	आर्या
४६	६	पिज्ञापयि-	-विज्ञापयि
,,	१०	….अ	मात्रा
४७	४	वड्ढु	वड्ढ
,,	१०	सुठढु	सुट्ठु
४८फुट०	५	है	होते हैं
४९	६	अलिङ्ग	आलिङ्ग
,,	८	चारु	चारुदत्तो
,,	१७	समाश्र-	सभाश्र-
,,फुट०	६	नपुं०	स्त्री०
५०	४	प्रारंभ में	दारक-
..	.	...	रदिणिए,

अलिअं तुमं भणसिजइ अम्हाणं

अब्भ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५१	२३	०-	चेटी०
५३	१४	पिआव	पिअव
५४	१६	विणोदेसि	विणोदेमि
५५	८	भवणदो	भवणादो
५७फुट०	३	क्त प्रत्यय	
		भूत० कृदन्त	×
५८	१२	भणंतं	अणंतं
५९फुट०	८	विपर्याय	विपर्यय
,,	९	पु०	स्त्री०
६१	१६	च	च कर्ता
६२	१	पयायेण	पर्यायेण
,,	५	कम	कर्म
,,	६	निमित्तन	निमित्तेन
,,	,,	जीनीहि	जानीहि
,,	१६	दृष्टयो	दृष्टयोः
,,	१९	ज्ञानम्	अज्ञानम्
,,	२१	ज्ञानम्	अज्ञानम्
६३	७	परम कुर्वंन्	परमकुर्वन्
,,फुट०	१	नपुं०	पु०
६५ ,,	३	यवसितोसि	व्यवसितोसि
६६	१०	मुक्तं	भुक्तं
,,	११	चांडल	चांडाल
,,	१२	घ	च

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
,,	१५	तस्यान्य	तस्यान्य
,,	१६	त्विरोगो	अत्विरोगों
,,	१८	आत्मीयायानम्	आत्मीयायानम्
,,	१९	एततस्य	एतस्य
६७	१२	त्चारुददत्तं	चारुदत्तं
,,	,,	मारचितु	मारयितु
,,	२०	स्वैरम्	स्वरैकम्
६९	१३	माशुले	भाशुले
,,फुट०	५	विवर्जनीय	विवर्जनीयक:
७१	९	गेह्ल	गेह्ल
७३	२२	स्वकुल्यानां	स्वकुलानां
७५	८	गट्टहए	गद्दहीए
,,	९	घुड्डुको	घुड्डुको
७६	७	पविट्ठ	पवि
७६	१६	णाडाधिपश्शं	णाडाधिवश्शं
,,	१८	विहु	वि हु
७७	१४	एहो	एशे
,,	,,	शामए	शमए
७९	८	वड्ढामि	वड्ढामि
,,	१८	समिक	सभिकं
,,	११	मह्यामार्यो	मह्यमार्यो
८२	३	प्रसर्य प्रसर्य	प्रसर्प प्रसर्प
,,	४	समिकस्य	सभिकस्य
,,	६	भविष्यामि	भणिष्यामि
,,	७	आदि	अपि
,,	१७	अभिगयढ	अभिगयट्ठे
८४	६	सीखङ्खिणि	सखिङ्खिणि
८५	४	रारेस	सरीरे
८८	१, २	प्रयुत्त:	प्रयुक्त:
,,	१५	सकिङ्कणि	सकिङ्किणि
८९	२०	नास्त:	नास्ति
९१	१०	-माणौ	-माणा
९३	१२	आणु	अणु
९८	८	इति	रति
९९	७	दुख	दुख ति
,,	९	धमअनत्स	×
१००	१	अठगिसो	अठगिओ
,,	२	शोठो	शेठो
१०२	७	कलं	कालं
१०३	११	(सिच)	(सि च)